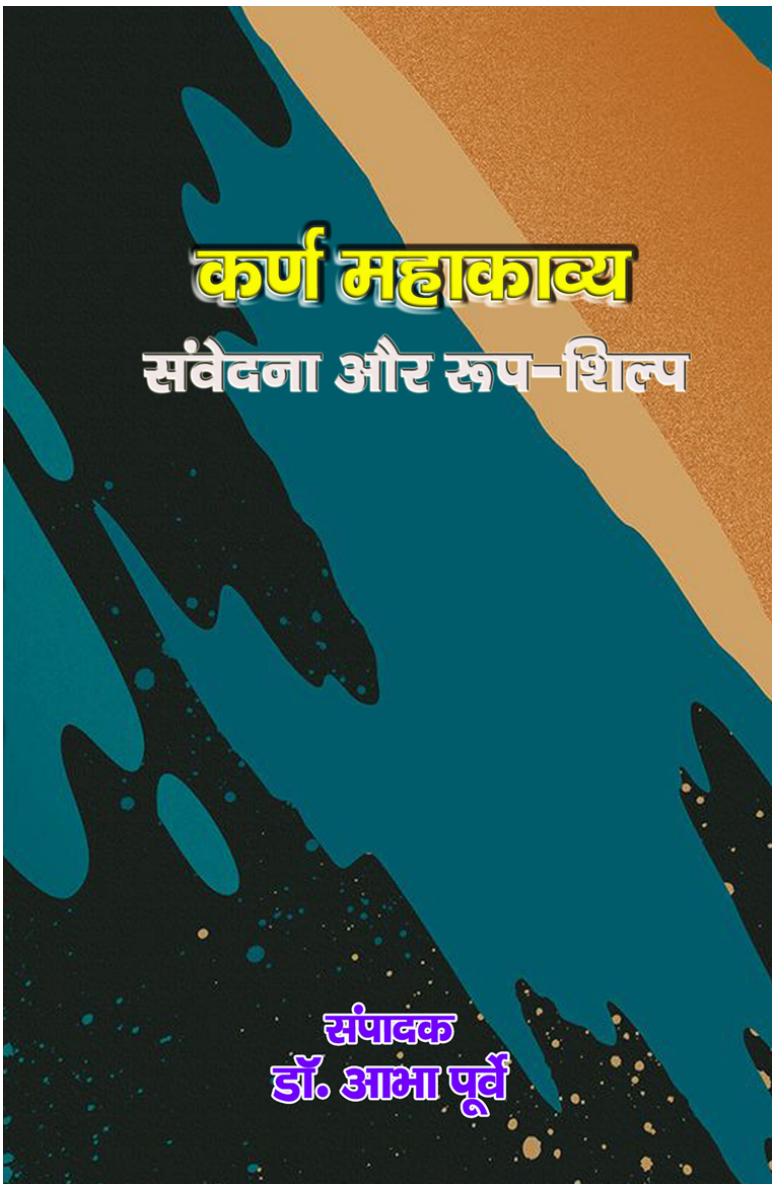
कर्ण महाकाव्य
संवेदना और रूप-शिल्प
संपादक
डॉ. आभा पूर्वे

कर्ण महाकाव्य : संवेदना और रूप-शिल्प

कर्ण महाकाव्य

संवेदना और रूप-शिल्प

सम्पादक

डॉ. आभा पूर्वे

समीक्षा प्रकाशन

दिल्ली/मुजफ्फरपुर

ISBN : ९७८.८१.८७८५५.६३.७

प्रथम संस्करण
२०२०

सर्वाधिकार ©
लेखकाधीन

प्रकाशक
समीक्षा प्रकाशन
जे. के. मार्केट, छोटी कल्याणी
मुजफ्फरपुर (बिहार)-८४२ ००१
फोन : ०९३४२७९९५७, ०९९०५२९२८०१
E-mail : samikshaprakashan@yahoo.com
www. samikshaprakashan.blogspot.com

दिल्ली कार्यालय
आर-२७, रीता ब्लॉक
विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली-९२
फोन : ०९९११४७८६६८

शब्द-संयोजन
सतीश कुमार

आवरण
www. in.pinterest.com से साभार

मुद्रक
बी.के. ऑफसेट,
शाहदरा, दिल्ली।

मूल्य
५००.०० (पाँच सौ रुपये)

Karn Mahakavya : Samvedna Aur Roop-Shilpa
Edited by Dr. Abha Purvey Rs. 500/-

fuonu

डॉ. अमरेन्द्र विरचित 'कर्ण' महाकाव्य की जितनी प्रशंसाएं, जितने वाद-विवाद, संवाद मुझे 'फेसबुक', पत्र-पत्रिकाओं में देखने को मिले, पिछले दो-एक दशकों में शायद ही किसी हिन्दी काव्य पर हिन्दी आलोचकों का इतना ध्यान गया हो । उन संवादों को संकलन करने का मोह मुझमें तब हुआ, जब फेसबुक पर मैंने डॉ. अमरेन्द्र का यह पोस्ट पढ़ा । यह पोस्ट तारीख २४/०८/१८ का है ।

''हिंदी में बहुत वर्षों के बाद एक सार्थक और सही पात्र पर लिखा गया महाकाव्य आया है''—डॉ. रमेश कुंतल मेघ

''२३/८/१८, दोपहर लगभग पौने तीन का समय। एक अनचिन्हा नम्बर मेरे मोबाइल पर गूंजता है । विनम्रता में 'हेलो' कहता हूँ, तो उधर से आवाज आती है, ''मैं पंचकुला से रमेश कुंतल मेघ बोल रहा हूँ ।'' प्रणाम कहता ही हूँ कि वह आगे बोल पड़ते हैं, ''आपका 'कर्ण' काव्य मिल गया है, इसे देखने के बाद मैं कुछ बातें कहना चाह रहा हूँ, इसे सुनिए ! हिंदी में बहुत वर्षों के बाद एक सार्थक और सही पात्र पर लिखा गया महाकाव्य आया है । इस प्रबन्ध में कृष्ण की बातें नहीं हैं, अर्जुन की बातें नहीं हैं, भीष्म की बातें नहीं हैं, सिर्फ कर्ण की बातें हैं, और यह बहुत ही उल्लेखनीय बात है । फिर मुझे यह कहते हुए बहुत अच्छा लग रहा है कि कर्ण काव्य की भाषा बहुत सधी हुई है, जो इस काव्य की गरिमा को और भी स्थिर करती है ।''

इतना कहने के बाद डॉ. मेघ एक पल को रुके और फिर कहा, ''हिंदी में आज अच्छी से अच्छी कृतियों की उपेक्षा प्रचलित है, लेकिन आप इसकी अनदेखी कर, अच्छे लेखकों के पास कर्ण काव्य को भेजते चले जाइये । आज न कल वे इस कृति पर विचार करने के लिए विवश होंगे ।''

आगे डॉ. मेघ ने फिर कहा, ''आप उस मिट्टी से आते हैं, जहां के दीपंकर श्रीज्ञान थे, जिन्होंने दुनिया को रौशनी दी । ज्ञान की भूमि है भागलपुर। मैं तो अपने को बिहारी ही कहता हूँ । चार वर्षों तक आरा में रह कर साहित्य-साधना की है । अद्‌भुत है बिहार की भूमि, जहाँ विक्रमशिला और नालंदा जैसे विश्वविद्यालय थे ।''

आगे डॉ. मेघ ने कर्ण काव्य के आवरण और आवरण पर प्रकाशित संक्षित परिचय पर भी राय रखी । वह कहते गए थे, और मैं जैसे सुनता भर रहा था । चुप हुए तो यह कहते हुए—कुछ महत्वपूर्ण कार्य को पूर्ण करने में लगा हूँ, समाप्त होते ही कर्ण काव्य को फिर पढ़ूंगा और लिखूंगा ।

और इतना कहने के बाद उन्होंने टेलीफोन पर संवाद रोक लिया था । यह कल की बात है, लेकिन आज भी बहुत ताजा, जैसे अभी-अभी उनसे बातें हुई हो। रुक न सका, अपने मित्रों तक, प्रख्यात आलोचक रमेश कुंतल मेघ की सूत्रबद्ध बातें पोस्ट कर रहा हूँ ।''

फिर तो कर्ण काव्य पर आने वाली छोटी-से-छोटी समीक्षाओं-प्रतिक्रियाओं को मै गंभीरता से पढ़ने लगी । आश्चर्यचकित हुई, जब आलोचक अविनाश कुमार सिंह की एक संक्षिप्त टिप्पणी फेसबुक पर ही पढ़ी, जो निम्नांकित है,

''डॉ. अमरेन्द्र विरचित महाकाव्य 'कर्ण' का आद्योपांत अध्ययन पूरा हुआ। आज रामधारी सिंह 'दिनकर' होते, तो कहते, 'अमरेन्द्र! यदि मैं दोबारा 'रश्मिरथी' लिखता तो कदाचित् ऐसा ही लिखता।' और राष्ट्रकवि की इस टिप्पणी पर अमरेन्द्र उन्हीं के शब्दों में उन्हें प्रणाम करते—

मैं घोर चिन्तना में धंसकर
पहुँचा भाषा के तट पर ।
था जहाँ काव्य यह धरा हुआ
सब लिखा-लिखाया पड़ा हुआ ।''

—अविनाश

राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शिव कुमार शिव, रंजन कुमार, दयानंद जायसवाल, प्रसून लतांत, अनिरुद्ध प्रसाद विमल की प्रतिक्रियाओं, जो मेरे फेसबुक वाल पर आती रहीं, ने मुझे कर्ण काव्य को पढ़ने के लिए विवश किया, और पढ़ भी गई। अद्‌भुत ! प्रख्यात आलोचक रमेश कुंतल मेघ का कथन फिर याद आ गया ।

और याद आया, डॉ. अमर सिंह वधान का वह कथन कि 'कर्ण' को बाइबिल की तरह अपने सिरहाने में रखे हुआ हूँ । यह उन्होंने कर्ण काव्य के महाकवि से कहा था, जिसे डॉ. अमरेन्द्र ने अपने वाल पर पोस्ट किया था ।

तभी डॉ. कल्पना दीक्षित के दो पोस्टों पर मेरी दृष्टि पड़ीं । एक तो डॉ. अमरेन्द्र के नाम लिखा पत्र है और दूसरा 'कर्ण' काव्य पर उनकी अपनी प्रतिक्रिया। ये दोनों ही पोस्ट निम्नांकित हैं,

डॉ. अमरेंद्र सर के लिए चिट्ठी.....

आदरणीय अमरेंद्र सर....

सादर चरणस्पर्श....!

सर,

अभी..... महाभारत पढ़ते हुए..... वार्ता हेतु मन उत्सुक हुआ.....! व्यक्तिगत सम्पर्क समाज से विलग कर देते हैं..... संवेदना को....! अतः पत्र के माध्यम से ही सम्वाद उपयुक्त प्रतीत हुआ.....! सर, 'कर्ण' में 'कविता' प्रबंधित है अथवा महनीयता में प्रस्तुत है..... अथवा महनीय काव्य आकारित हुआ है 'कर्ण' के आश्रय में.....! अभी आत्म-सन्देह अंकुरित हुआ है कि मैं कितना भी प्रयास कर लूँ.....यह समीक्षा-पुस्तक पूर्ण न हो सकेगी.....! बस कृति का किंचित् परिचय ही मुखरित कर सकूँगी मैं.....! उपजीव्य महाकाव्य महाभारत के सूत्रात्मक प्रसंगों की सहज भाषा में भाष्य और टीका है यह 'कर्ण' काव्य.....! महाभारत के एक महत्त्वपूर्ण चरित्र पर महाभाष्य लिख दिया है आपने.....! कर्ण के चरित्र में असंख्य पुरुष दिग्दर्शित हैं मुझे.....! प्रकृति का सुरम्य दृश्य सहेजे है.....चम्पा नगरी..... मंदार पर्वत.... अंगप्रदेश.....! खांडव वन हेतु प्रतिशोध में जलता कर्ण. .... प्रकृति का उपासक है.....! चीरहरण के समय चुप रह जाने का पश्चाताप घुन की तरह छलनी करता रहता है कर्ण की नैतिकता को.....! हर विषम परिस्थिति का दायित्व स्वयं लेता है कर्ण..... किसी-न-किसी प्रारब्ध से जोड़ देता जीवन की विसंगतियों को....., बस सहनशीलता चक्रवृद्धि व्याज सदृश बढ़ती जाती है.....!

सर! पुनः पी-एचडी न सही..... पोस्ट डॉक्टरेट अवश्य करना चाहूँगी आपकी कृतियों पर...! आशीर्वाद दीजिए विद्याव्यसन बस बढ़ता ही जाए..... मन कभी अघाए ही न...! विचार और चिंतन की ऊर्जा आयु बढ़ाती जाएगी...! हाँ. ..... एक बात और.....पिछले सप्ताह.. 'सिंहासन का सन्यास' रेडियो रूपक-संग्रह की पुस्तक-चर्चा लिखना आरम्भ किया था..... भगजोगनी...., भर्तृहरि...., कायस्थों की उत्पत्ति विषयक....., फुलवा-कटोरवा..... सम्बन्धी रूपकों पर परिचर्चा लिखे तभी.... बच्चे हल्ला कर दिए....तो पूरा न हो सका.....! अब पुनः लिखेंगे..... शीघ्र ही.....! यही अध्ययन..... चिंतन..... और समय मिल जाए तो लेखन ही आत्मा हेतु भोज्य है.....! शरीर संचालन के निमित्त तो प्रकृति ने सर्वस्व अर्पित ही

किया है..... हम मानवीय इकाइयों के निमित्त.....!

खैर...,यह तो मेरी राम कहानी रही...! आपका स्वास्थ्य कैसा है सर.? मन और बुद्धि शारीरिक आयु सीमा से इतर हैं..... उम्मीद करती हूँ..... कुछ नया लिख रहे होंगे आप.....! आशीष दीजिए.... 'कर्ण' पर मेरी समझ समय से आकारित हो जाए.....!

स्नेहाकांक्षी....
डॉ. कल्पना दीक्षित

(२)

उनके हाथों में जो ग्रन्थि से ग्रसित न हों—डॉ. अमरेंद्र

तेईस सर्ग में निबद्ध कर्ण काव्य एक मुक्त-अनुशासन है पुरुष प्रवृत्ति का...! डॉ. अमरेंद्र ने समर्पण पृष्ठ में ही ग्रन्थ के अधिकारी की योग्यता संकेतित की है। कर्ण काव्य के सम्यक् अवबोध हेतु महाभारत की जकड़ से मुक्त होना ही पाठक की प्राथमिक योग्यता है। शोरगुल से घिरे परिवेश में कवि ने कर्ण के आश्रय में अंधेरे में विलोका....! कवि की अंतर्दृष्टि में जो दिखा, वह नया इतिहास है...! अंगप्रदेश का प्राकृतिक वैभव... मंदार पर्वत की मादकता.... और सुरम्य चम्पानगरी की वीथिकाओं का सौंदर्य है यहाँ...! मातृभूमि के प्रति निष्ठा है.....! लोकव्यवहार है....! राधा के समक्ष सूर्य अपने पितृत्व का दायित्व निवर्हन का अनुनय करते हैं... कुंती के चरित्र को प्रतिष्ठापित करते हुए लोकनिंदा का भार स्वयं पर लेते हैं...! कर्ण के हस्तिनापुर जाने पर वृषाली-पुनर्नवी अंग का प्रशासन संभालती हैं...अतः महिला सशक्तिकरण भी है यहाँ...! परशुराम जाति से इतर गुणों को महत्त्व देते हैं....नई गुरु-शिष्य परम्परा का सन्धान है यहाँ....! प्रकृति का विलास भी है और मानवीकरण भी.... कर्ण अपनी पत्नियों को चीर और चानन कहते हैं.. जो अंग की नदियां थीं...! संस्कृति गूँथी हुई है करीने से... इस काव्य में...! इतने सलीके से मन की परतें संयोजित हैं कि भाव-सौंदर्य गझिन नहीं होने पाता....!

खैर....!

अब हम इस 'कर्ण' पर समीक्षा-पुस्तक का फाइनल-ड्राफ्ट लिख रहे हैं....! यह समीक्षा कोई प्रशस्ति नहीं रहेगी डॉ. अमरेंद्र की... अपितु एक नवइतिहास की गद्य-गाथा के रूप में लोकार्पित होगी...!

००

और फिर देखा डॉ. कल्पना दीक्षित के पत्र मेरे फेसबुक वॉल पर आने

लगे हैं, जिनमें कर्ण काव्य के प्रत्येक सर्ग के सौन्दर्य का मूल्यांकन है, तो मन ने यह ठान लिया कि सभी प्रमुख संवादों का संकलन-संपादन किया जाए, सारी सामाग्रियों को तो पाँच सौ पृष्ठों में भी नहीं समेटा जा सकता, दो खंडों में सामग्रियों का प्रकाशन संभव है। इस खंड में डॉ. किशोर सिन्हा, अविनाश कुमार सिंह 'अमेय', डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा की तथा अन्य की आलोचनाएं तो हैं ही, लेकिन प्रमुखता है डॉ. कल्पना दीक्षित के पत्रों की ।

लेकिन अपनी परेशानियों और पारिवारिक व्यस्तताओं के कारण डॉ. दीक्षित के पत्रों का पोस्ट मिलना बिल्कुल रुक गया, तो सोचा, जो पत्र है, उन्हें ही प्रथम खंड में शामिल कर लिया जाए, शेष दूसरे खंड में होंगे।

प्रथम खंड आप विद्वानों के हाथों में रख रही हूँ, इस निवेदन के साथ कि इसमें प्रूफ की अशुद्धियाँ भी होंगी । कारण कि पोस्ट के फॉण्ट बदलाव में अक्षरों का बिगड़ना असामान्य नहीं । चाहती थी सम्पूर्ण को फिर से पढ़ लूँ, तब प्रकाशक को भेजूँ, लेकिन माँ की तबीयत ऐसी है, कि आज शरीर छोड़े या कल। बिछावन पर सिलवट की तरह हो गई है । प्रूफ की चिंता करूँ कि माँ की । मन ने कहा, माँ की, और प्रूफ की अशुद्धियाँ जैसी की तैसी रह गईं । क्षमा चाहूंगी। प्रकाशन को रोक भी सकती थी, लेकिन, समय भी सावधान कर रहा है ।

बस इतना भर कह सकती हूँ कि इस खंड का भी नया संस्करण आयेगा, अगर आपने कमियों को बताया ।

—आभा पूर्वे

१५ दिसम्बर २०१९

सम्पर्क : शरतचंद पथ, मशाकचक,
भागलपुर-८१२००१ (बिहार)

आलेख-क्रम

■ **निवेदन/५**

- 'कर्ण' महाकाव्य की मूल संवेदना/डॉ. कल्पना दीक्षित/११
- 'कर्ण' की महाकाव्यात्मकता/अविनाश कुमार सिंह 'अमेय'/२०
- हिन्दी साहित्य में 'कर्ण' महाकाव्य का स्थान/अविनाश कुमार सिंह 'अमेय'/३६
- 'कर्ण' : प्रत्यंचा चढ़ा सूर्य/डॉ. किशोर सिन्हा/४५
- डॉ. कल्पना दीक्षित के पत्रों में 'कर्ण' :
    - ♦ चंचला पाठक दीदी के लिए चिट्ठी.../६६
    - ♦ शत्रुसूदन श्रीवास्तव भइया के लिए चिट्ठी.../७२
    - ♦ शशिरंजन शुक्ल भइया के लिए चिट्ठी.../७६
    - ♦ डॉ. आभा पूर्वे के लिए चिट्ठी.../८२
    - ♦ अनिरुद्ध प्रसाद विमल के नाम पाती.../८८
    - ♦ रथेन्द्र नन्हें जी के लिए चिट्ठी.../१०१
    - ♦ सखी सुशीला ओझा जी के लिए चिट्ठी.../१०८
    - ♦ सखी मिसराइन के लिए चिट्ठी.../११६
- विदूषी बहन कल्पना पांडेय को.../१३३
- डॉ. अमरेन्द्र का महाकाव्य 'कर्ण'/अनिरुद्ध प्रसाद विमल/१३५
- 'कर्ण' काव्य है कि कैनवास पर इन्द्रधनुष ?/रंजन कुमार/१३६
- महाकाव्य 'कर्ण' की कालसापेक्षता/डॉ. मृदुला शुक्ला/१३७
- 'कर्ण' को पढ़ते हुए.../डॉ. सुशीला ओझा/१४२
- 'कर्ण' प्रबंध काव्य और हिंदी साहित्य/डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा/१४४
- दशकों बाद हिंदी में 'कर्ण' पर प्रबंधकाव्य/कुमार कृष्णन/१४६
- 'कर्ण' काव्य को पढ़ने के बाद/अनिल कुमार झा/१४८
- 'कर्ण' महाकाव्य : डॉ. अमरेन्द्र/मुकेश दुबे/१४६
- डॉ. अमरेन्द्र का 'कर्ण'/अमन सिन्हा/१५३
- डॉ. अमरेन्द्र और मैं/शम्भुनाथ मिस्त्री/१५५
- राग-रंग-ऋतु के गायक : डॉ. अमरेन्द्र/डॉ. किशोर सिन्हा/१५७
- हिंदी गजल के बहाने हिंदी गजल पर बहस का एक अंश/ललन चौधरी/२००
- डॉ. अमरेन्द्र के जन्मदिवस के बहाने/अविनाश कुमार सिंह 'अमेय'/२०२

'कर्ण' महाकाव्य की मूल संवेदना

—डॉ. कल्पना दीक्षित

महान और पुष्ट विचारों को धारण करने में समर्थ कवि का ही भावावेग इतिहास में अनुसंधान हेतु प्रेरित हो सकता है। इस महाकाव्य में विचारालंकार इतिहास की भीतरी परतों से निःसृत हैं। कलापक्ष की दृष्टि से यह अभिजात्य महाकाव्य है, क्योंकि इसमें शब्द-चयन, बिंब-विधान तथा शब्द-समृद्धि अन्तर्भावित है। कवि हृदय गरिमामयी और सर्वोच्च है, तभी ऐसी कृति आकारित हुई है, जिसमें वर्तमान की आँखों ने इतिहास में विषयों-विचारों हेतु पुरातात्विक उत्खनन किया है।

साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ ही दिग्भ्रमित समाज को दिशा भी देता है। डॉ. अमरेंद्र ने महसूसा होगा कि उनके विचार समाज को सोद्देश्य कर्मशीलता का पाठ सिखा सकते हैं, तभी उन्होंने इतिहास के अंधेरे की यात्रा की होगी। मस्तिष्कीय प्रौढ़ता हेतु ऐतिहासिक चेतना आवश्यक है। कवि ने परम्परा के आश्रय में अपनी संवेदनाओं को विस्तार दिया इतिहास-ग्रन्थ महाभारत की आंतरिक-भित्ति के विस्तार में ही कवि को सूझा कि उसे क्या करना चाहिए, किस प्रकार अपनी विचार-संवेदना को नया रूप देना चाहिए। ऐतिहासिक पृष्ठों में ही संकेतित रहस्यों के तिमिर में, कवि-दृष्टि आलोकित हुई और यह कृति तभी अंकुरित हुई है। अतीत के अंधकार को वर्तमान में देख लेना कवि की मौलिकता है। कवि ने परम्परा को आत्मसात करके औचित्यसापेक्ष नवनवोन्मेष किया है, इसी उन्मेष में कवि-व्यक्तित्व समर्पित है। कवि ने स्वयं से (अपनी चेतना से) बातें करते हुए इतिहास की खोजी-यात्रा की। इसी यात्रा-अनुभव को पाठकों से बताते हुए वह स्वयं वक्ता न होकर पात्रों के माध्यम से बोलने लगा। इस महाकाव्य की विलक्षणता यह है कि इसमें स्रोत-ग्रन्थ महाभारत के विविध प्रसंगों को सूत्र रूप

में लिया गया है। इन्हीं सूत्रों की व्याख्या में यह कृति परिपुष्ट हुई है। व्याख्या-शैली में अवान्तर प्रसंगों का संयोजन करते हुए कवि एक कुशल शिल्पी दिखता है। पात्रों की मानवीय प्रबुद्धता को गढ़ा है कवि ने। कवि ने वर्तमान लघु-मानव को अतीत के महामानव का दिग्दर्शन करवाया है, जो कि सोद्देश्य है। मानवीय-प्रबुद्धता इस कृति में स्वतः स्फुरित है। यह एक ऐसा साहित्य है जो प्रत्येक व्यक्ति को स्पर्शित करते हुए उसे जीने की कला सिखा जाए...! यह कृति अप्रत्यक्ष रीति से ज्ञानराशि है, और इसका लक्ष्य आनन्द है। कवि भावक को प्रकृति की ओर उन्मुख करते हुए उसे कृत्रिमता से मुक्त करता है और जीवन की सरलतम व्याख्या करते हुए रूढ़-बेड़ियों से मुक्त भी करता है।

इस अमर कृति में बाह्य-जगत के उलझाव से जूझने हेतु अंर्तजगत के सुलझाव का रहस्य निहित है। प्रबोध-पर्व आत्मप्रबन्धन हेतु चेतना के स्तरों से साक्षात्कार करवाता है।

नहीं कुछ भी करेंगे कृष्ण, सब कुछ घट चलेगा,
पवन जैसे उठेगा व्योम-बादल छट चलेगा;
इसीसे कह रहा हूँ, धर्म के ही साथ रहना,
किसी भी हाल में रहना, नहीं अनुदात्त रहना।

-(प्रबोध पर्व, पृष्ठ-६८)

इन पंक्तियों में आदर्शवाद असंगतियों से मुक्त है। किसी भी हाल में धर्मानुकूल रह लेने का द्वंद व्यावहारिकता में सामंजस्य बनाना सिखा ही देता है। इन पंक्तियों में शास्त्रीयता से इतर लोक-जीवन हेतु सहज नियम निर्देशित हैं।

कर्ण द्वारा कवच-कुंडल दान करने के पश्चात धर्मपिता अधिरथ धन्वंतरि से उसकी चिकित्सा करवाते हैं। इतिहास अतीव व्यावहारिक दिखता है ऐसे प्रसंगों में, जो दुश्वारियों में यह सुझाता जाता है कि–"what next...?"

ले लिया जड़मूल, बूटी, जल कलश में,
चढ़ गए धनवंतरी रथ पर लिए सब साथ;

(पुनर्नव पर्व, पृष्ठ-१८७)

बौद्धिक विश्लेषण शक्ति से ही कर्मों का कुशलतापूर्वक सम्पादन सम्भव है। समझ के विस्तार में ही नई राह खुलती रहती है, तभी कर्ण अपनी मृत्यु के ठीक पहले तीर के माध्यम से पत्नी पुनरनवी के लिए पत्र भेजता है।

"पुनरनवी, क्यों मन करता है, पत्र लिखूँ मैं,
वैसा ही; हर शब्द-शब्द में साफ दिखूँ मैं;
नहीं चाहता, कुछ भी आज छिपाना तुमसे,

निश्चल मन का भाव-निवेदन जाना तुमसे।''

(प्रपंच पर्व, पृष्ठ-१६७)

इस काव्य की शिल्पकारी में बिना किसी टकराव के नित-नवीन सृजनात्मकता है। इतिहास के अंधेरे को उजागर करने में कवि ने किसी विध्वंस का सहारा नहीं लिया, अपितु दृढ़ और घने प्रसंगों की व्याख्या करते गए हैं और तमाम नए प्रसंग नवकिसलय की तरह स्वतः उजाले की राह पकड़कर पल्लवित हुए। मानवता के वाद में यह मानवीयता का विकास ही है, जिसमें अंतर्दृष्टि की विलक्षणता ने नवसन्धान किया है। अतीत का यह सन्धान मन-अन्तर्मन-बुद्धि की त्रिपुटी के लय होने पर उदित कवि-विवेक से ही सम्भव है।

परशुराम का बरस रहा है स्नेह कर्ण पर ऐसे;
चतुर्मास में मेघ बरसता नभ से भू पर, जैसे;
अब अलभ्य क्या दिव्य अस्त्र के संचालन की शैली,
बिखर रहे हैं रत्न मनोहर, खुली पड़ी है थैली।

(प्रज्ञा पर्व, पृष्ठ४७)

क्षमा अंतर्मन की वह शक्ति है जो स्वयं को प्रतिशोध से विलग करती है, कर्ण द्रोपदी को स्वयंबर वाली घटना के लिए क्षमा कर देता है। कर्ण की चिंतन यात्रा नारी-मन का वातायन झांक लेती है। कर्ण मान लेता है कि द्रौपदी को यह ज्ञात हो गया हो गया कि "मैं स्वयंवर में उसे विजित करके दुर्योधन को सौंप दूँगा। मेरे इसी दुराग्रही मनोभाव को भांपकर कर ही उसने मेरा अनादर किया होगा। शीघ्रता में द्रौपदी कुछ और नहीं सोच पाई होगी।'' कर्ण का यह अनुमानित बोध स्वयं उसे लघिमा की सिद्धी देता है, साथ ही नारी को शब्द-बाण प्रयोग के कारण लांछित होने से बचा भी लेता है। कुंती के सौर-गृह का स्वप्न प्रसंग कवि को महामानव बना देता है। इसमें किसी भी विसंगति के लिए कोई भी मनुष्य जिम्मेदार नहीं है अपितु Invisible Hand (एडम स्मिथ की अवधारणा) से ही समग्र संचालित है।

इस कृति के मर्म में कला का उद्देश्य मनोरंजन से ऊपर है। कला मनुष्य की वास्तविक विकास-यात्रा को गति देती है। सुविधाओं के लिए मिटाना/तोड़फोड़/विरोध आवश्यक नहीं है, व्यक्तिगत सुख के लिए एसी चलाकर पर्यावरण को और अधिक गरम करना मानवीयता की जय नहीं है। इतिहास का यह सन्धान किसी वाद या आंदोलन से प्रेरित नहीं है अपितु समष्टि-हित के लिए व्यष्टि-कवि ने अपना सर्वस्व अर्पित किया है। कवि की अंतर्दृष्टि में वन धरती की रोमावलियाँ हैं, कर्ण कहता है–

राजयसुखों की खातिर जब धरती के रोम जलेंगे,
वहाँ-वहाँ पर एक कर्ण क्या, सौ-सौ कर्ण मिलेंगे।

(मकर पर्व, पृष्ठ-२४४)

तनाव और अनहोनी के बीच चल रहे और पल रहे अंतर्द्वंद्व में बातें साझा कर लेना सहायक होता है, इसी प्रसंग में कर्ण और वृषाली की वार्ता स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के सौंदर्य को मुखरित करती है। पति-पत्नी परस्पर पूरक हैं, इस रिश्ते की सुंदरता का कारण ही सौंदर्यशास्त्र है। कवि ने इस प्रसंग में वृषाली द्वारा कर्ण के मनोभावों को भांप लेने का वर्णन करके रिश्तों का व्यापक सौंदर्यीकरण किया है। कर्ण मनोभावों, चिंताओं को अनावृत कर देता है.... पत्नी से सबकुछ साझा करता है। राजनीतिक दुश्चक्रों में पत्नी सुझाव देने वाली सचिव ही नहीं अपितु मन के भार को समो लेने वाली सहचरी भी है।

"पर वृषाली, आज भी न क्यों रहा यह ज्ञात,
सांझ की यह लालिमा है, यह नहीं है प्रात;
दे रहा देखो क्षितिज है, काल का संकेत,
और कुछ ही बाद गिरि येय ज्यों, दिखेंगे प्रेत।

(गिरिडीह पर्व, पृष्ठ-१४५)

डॉ. अमरेंद्र ने अतीत को वर्तमान की दृष्टि से देखा है, समस्याएं, संभावनाएं और सम्बन्धों के उलटफेर में कर्ण-काव्य एक शुचिदीप है। इस काव्य की अंतर्वस्तु में जीवन को जीने योग्य बनाए रखने के सूत्र निहित हैं। इतिहास के अंधेरे को दिव्यदृष्टि से देखना ही कवि की कवित्व-शक्ति है। इसी कवित्व-शक्ति में अपूर्व कथावस्तु की निर्मिति हेतु नवनवोन्मेष की अपार संभावनाएं हैं, तभी तो महाभारत के विविध प्रसंग नवीन अवान्तर कथाओं के साथ व्याख्यायित हुए हैं। भेदनीति की बारीकी में कृष्ण कर्ण के स्थाईभाव उत्साह को स्पंदित करते हुए कहते हैं कि—''भीष्म पितामह के नेतृत्व में जब तक युद्ध चलेगा, तब तक तुम युद्धभूमि में नहीं उतर सकोगे और वीरत्व उफनाता रहेगा। अतः भीष्म के नेतृत्व तक पाण्डवों की तरफ से लड़ो उसके बाद कौरवों में मिल जाना।'' यह घात वीर योद्धा के मनोविज्ञान की नैतिकता को जांचता है, कर्ण इस परीक्षा में विचलित नहीं होता। मित्र हेतु उसकी नैतिकता अडिग है। नवीन अवान्तर प्रसंगों की उद्भावना में इतिहास से मुक्ति का उद्देश्य नहीं है, अपितु इतिहास में मानवीयता के अस्त्र से कवि-विवेक विध्वंस पर काबू रखने की कोशिश की सफलतम कोशिश करता है।

"कहकर यह कि 'जब तक रण में होंगे भीष्म पितामह,

न जाने कितने दिन ठाने लम्बा युद्ध भयावह;
तब तक क्या वह बाहर ही बैठेगा लिए प्रतीक्षा ?
टुकुर-टुकुर ताकेगी उसकी रण-कौशल की दीक्षा ?

(मकर पर्व, पृष्ठ-२३४)

कर्ण के हस्तिनापुर जाने पर वृषाली अंगप्रदेश का प्रशासन सम्भालती है, यह सशक्तीकरण किसी वाद अथवा आंदोलन से प्रेरित नहीं है बल्कि स्त्री-शक्ति का सहजतम अनुप्रयोग है। कर्ण कहता है–

मेरे बिना वृषाली ने जो शासन-राज सँभाला,
प्रजाजनों को समझा संतति अपनों-सा पाला है।

(प्रत्युष पर्व, पृष्ठ-१३६)

काव्य-लेखन में जागृत कवि के अवचेतन मन में सजग कवि-विवेक मानवीयता से ही नवनिर्माण का सन्धान करता हुआ दिखता है। मानव के समझध अवबोध का सुलझा हुआ अपार विस्तार ही इस काव्य के उद्देश्य का मर्म है। इतिहास में समस्या दिखलाने से, शोर मचाने से जिए जाने की सरसता रिस जाती है। इस काव्य में इतिहास में जीवंतता पाकर वर्तमान को सहजतापूर्वक स्वीकार करते हुए बोझिल विसंगतियों से मुक्ति का मंत्र निहित जहाँ मूल महाभारत के मर्म में सब मिटा देने का भय है, वहीं कर्ण काव्य में रूढ़ शक्तियों में ही नवनिर्माण करते रहने का स्वप्न साकार हुआ है, अतः यह अर्वाचीन महाभारत है। अतीत की वर्तमानता में मनुष्य को अपनी ही क्षमताओं के विस्तार और सीमाओं का अतिरेक करते रहने की अद्‌भुत कला का विलास है इस कृति में। सकारात्मक चिंतन की व्यापकता निराशा अंकुरित ही नहीं होने देती। डॉ. अमरेंद्र ने इतिहास के पुनर्लेखन की नवीन पद्धति का सूत्रपात किया है। अपनी मातृभूमि-केंद्रित प्रेम और आत्मीयता के वर्णन में अंगप्रदेश की महिमा-गाथा कहते हुए राष्ट्रीयता का आह्वान है यहाँ–

"बराबर हो विभाजित हो सभी सुख, दुख तलक भी,
सभी का देश भारत हो, न शासक और शासित;
नहीं वह मर सका है भाव मेरा आज तक भी
नहीं मैं चाहता अपना ये भारत हो विभाजित।

(घटुत्कच पर्व, पृष्ठ-२२४)

परा-ऐतिहासिक अर्थात् इतिहास की तह में अवलोकन करते हुए इतिहास से परे जाने की क्षमता को कवि ने अपनी दिव्यदृष्टि के माध्यम से विकसित किया है। इतिहास अतीत और वर्तमान का ही लिखा जाता है, डॉ. अमरेंद्र ने ऐसा इतिहास लिखा है जिसमें भावी पीढ़ी में भी नवचेतना जगाने की औषधि है। कर्ण

मानवीयता का एक सशक्त प्रतिनिधि है। मन के ऊहापोह में सम्भावित परिस्थितियों को सामने लाकर उसे सुनिश्चित बनाकर स्वयं को संतुलित रखने की कला है इस महामानव में। इस महाकाव्य के आश्रय में सांस्कृतिक मूल्य और लोककथाएं जी उठी हैं।

कवि ने कर्ण के जीवन-दर्शन-रस में डूबकर अपने आसपास की वास्तविक दुनिया को समझते हुए स्वयं को अनेक रूपों में अभिव्यक्त किया है। मुक्तिधर्मी व्यक्तित्व के रूप में कर्ण को गढ़ने में कल्पना द्वारा एक ऐसी दुनिया का निर्माण किया है जो वास्तविक दुनिया(नियतिकृत नियम) की दुश्वारियों से मुक्ति की सुगम राह दर्शाता है। गुरु परशुराम कर्ण को समझाते हुए कहते हैं–

कर्ण, तुम्हारा क्षात्र कभी भी नहीं बुद्धि संग छोड़े,
शक्ति कभी भी मनन-बुद्धि की बाहें नहीं मरोड़े !

(प्रज्ञा पर्व, पृष्ठ-५४)

कर्ण महाकाव्य का उद्देश्य महाभारत के महत्त्वपूर्ण पात्र के जीवनधारा की काव्यमय प्रस्तुति(जनभाषा हिंदी में) मात्र नहीं अपितु वर्तमान पीढ़ी और भावी सन्तति को मानवीय व्यक्तित्व की व्यापकता का बोध कराते हुए मनुष्य के अंतर्मन की दृढ़ता और लचीलेपन के स्तरों को समझाना है। कहीं-कहीं कर्ण एक प्रतीक बन जाता है और इस प्रतीकात्मक चरित्र में आज के युवाओं के विविध चेहरे दिखने लगते हैं। पाठकों और सहृदयों हेतु कर्ण के व्यक्तित्व का सभी आयामों से बोध के उद्देश्य में ऐतिहासिकता के सम्बल के सहारे सामाजिकता की सतत रक्षा होती रहने की दृष्टि है।

महाभारत इतिहास ग्रन्थ है और डॉ. अमरेंद्र कवि हैं। महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों की यथास्थिति में ही कवि-दृष्टिकोण ने नव-इतिहास लिखा है। तथ्यों की विस्तृत व्याख्या ने कवि को साहित्यिक इतिहासकार की श्रेणी में प्रतिष्ठित किया है। ऐतिहासिक रहस्यों का उद्‌घाटन में कवि ने अपनी जीवन-दृष्टि को संयोजित किया है। कवि के लिए सूर्यपुत्र कर्ण मनुष्येतर नहीं है। ऐतिहासिक वाक्जाल से मुक्त यह काव्य मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षी होने से बचाता है और आत्मा को तेजोदीप्त करता है–

मैंने जो कुछ दिया, लोक के हित में हो संधान,
बलिवेदी का पाठ नहीं है यह, हविष्य का ज्ञान ।

(प्रज्ञा पर्व, पृष्ठ-५४)

इस काव्य में मनुष्य की संवेदनशीलता गतिशील दिखती है, हृदय परदुःखकातर और भावुक बन जाता है, बदले की भावना मनुष्य की जययात्रा में

बदल जाती है। कर्ण का अर्जुन से प्रतिशोध का मूलकारण खांडव-वन का दाह है। मनुष्य को प्रकृति-शोषित नहीं बनना चाहिए यह कर्ण का दर्शन है। एक तरफ अंगप्रदेश और चम्पा प्रान्त के प्रकृति चित्रण में कवि आज का कालिदास बन गया है तो दूसरी तरफ खांडव-वन के जलने का क्षोभ कवि को दग्ध किए जा रहा है। प्रकृति-पुरुष डॉ. अमरेंद्र मनुष्य को एक प्राकृतिक इकाई के रूप में ही स्वीकारते हैं, जिसमें उसे नैसर्गिक सौंदर्य को दूषित करने और विनष्ट करने का कोई अधिकार नहीं है। कर्ण में मानवेतर के प्रति लोकदृष्टि है–

लंबे, हरे-भरे, वृक्षों का वह संसार जला है,
जो धरती पर पुरुष-प्रकृति की अद्‌भुत एक कला है!
"जो धरती पर सुख की छाया, साँसें हैं वसुधा की,
वन की ममता अगर मिले, तो कहाँ रहा कुछ बाकी !
उसी विपिन को लील लिया है पांडव की इच्छा ने,
घेर लिया है मन-प्राणों को कैसी इस पृच्छा ने !"
"तब क्या नाग बचे ही होंगे, खग-कुल या फिर दानव,

(वृष पर्व, पृष्ठ-१०८)

कर्ण का जीवन महानता की त्रासदी नहीं अपितु मनुष्य की अप्रतिहत विजययात्रा है। मनुष्य का विकास उपलब्धियों का बटोर नहीं है, अपितु मानवीयता का उत्कर्ष अनवरत चलते रहना ही वास्तविक विकास है। कर्ण की दोनों पत्नियां वृषाली और पुनर्नवी चीर और चानन हैं। चीर और चानन अंगप्रदेश की प्राचीन जीवनदायिनी नदियां हैं, जिनसे जीवन अभिसिंचित है। ये दो स्त्रियां न तो गृह-कलह को जन्म देती हैं और न ही गृह-दासता तक सीमित रहती हैं। जटिल गृहस्थी की तरह ही अंगप्रदेश का प्रशासन सहजता और कुशलता से संभालते रहना ही इन महिलाओं का सशक्तीकरण है। कवित्व अनिवार्य रूप से सत्य का साक्षात्कार करवाता है। कर्ण महाकाव्य सभ्यता की परिधि तक विस्तारित है। यह काव्य जीवनयात्रा में मुक्ति हेतु प्रसाधन तुल्य सेवनीय है। साहित्य समाज का दर्पण होने के साथ ही दीपक भी है। इस कृति के माध्यम से मौन इतिहास में कवि-दृष्टि बोलती हुई दिखती है। इस कृति के सन्दर्भ में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियां सार्थक हो गई हैं–

है अंध सा अंतर्जगत कवि-रूप सविता के बिना।
सद्‌भाव जीवित रह नहीं सकते सु-कविता के बिना।।

- भारत भारती

कर्ण महाकाव्य की समग्रता में राष्ट्रवाद, सुधारवाद, आधुनिकीकरण

और समाजवादी सिद्धांत निहित हैं। मानव-विवेक धार्मिक-रूढ़ियों और लोक-आस्था से जुड़कर(प्रारब्ध को स्वीकार करके) वर्तमान को सहनशील बना लेता है। सहनशीलता जीवनव्यवस्था में विचलन नहीं आने देती। चिंतन प्राचीनता से संश्लिष्ट होकर जब गतिशील होता है तब अतीत प्रासंगिक बन जाता है, और आधुनिकीकरण की जड़ों को दृढ़ता मिलती है। अतीत की जड़ों का मजबूत विस्तार चिंतन को ऊंचा उठाते हुए सघन बनाता है।

समझ जब साम्राज्यवाद की नीतियों का अवबोध करती है, तब मातृभूमि का प्रेम जागता है जोकि राष्ट्रवाद का मूल हैं। त्रिकालदर्शी कवि का इतिहास में नवनवोन्मेष ऐतिहासिक उपलब्धी है। कवि-विवेक इस कृति में महनीय है, वैयक्तिक संघर्ष में विवेकबुद्धि (wisdom of Brain and wisdom of mind) ने इतिहास में लौटकर जीने की सुगम राह बनाई है। यह निर्मिति भावी पीढ़ी को जीवन जीवन्ततापूर्वक जिए जाने का सलीका सिखाने में समर्थ है। यहाँ कवि-विवेक में जो व्यापक सुधारवाद की शिल्पकारी है, राष्ट्रवाद का आह्वान है और आधुनिकीकरण की संस्थापना है उसमें कोई टकराव नहीं है। टकराहट और ध्वंस के बिना विकसित हुआ नवसिद्धान्त मानव-मेधा के उत्कर्ष का आधायक है। कवि-विवेक का यह नव-उन्मेष दुनिया में अब तक मान्य नवजागरण की सीमाओं का अतिरेक किया है। इस महाकाव्य के प्रणयन में कर्ण (स्वयं कवि) ध्वंस रहित वाद का नेतृत्व कर्ता वाहक है। नवजागरण की अंतर्धारा में मानवधर्म प्रतिष्ठापित है, इस विलक्षण नवजागरण में जनजातियों की स्वतंत्रता को स्वीकारा गया है। यहाँ किसी को मुक्ति दिलाने का ढोंगध्स्वांग नहीं है, अपितु स्वतंत्रतापूर्वक जीवनयापन में सबकी हिस्सेदारी है। आक्षेपों के जाल में उलझने की बचकानी बातों से मुक्त है यह काव्य। यहाँ आदिवासियों को आत्मपहचान के लिए संघर्ष/धरना/प्रदर्शन आदि प्रसंगों से हटकर उनकी स्वतंत्र, विलक्षण जीवनशैली और प्रकृतिप्रियता को स्वीकृति मिली है, जिससे टकराव-उलझाव और द्वंद्व में समय की वंचना नहीं होने पाती।

इस महाकाव्यात्मक नव-इतिहास में मानव-मूल्यों को सहेजते हुए काव्य-मूल्यों की व्यापक मूल्य प्रणाली स्थापित है। अपरिणीता कुंती का बक्से में बन्द करके नवजात शिशु को दहा देना जहाँ मातृत्व की महिमा को दूषित करता है वहीं कवि-दृष्टि में जाग्रत विवेक कुंती के मनोभावों में मातृत्व-दायित्व पूर्ण निर्वहन है।

सूतपुत्र राधेय कर्ण जातिहीन नहीं है, अपितु मानवीय इकाई की निम्नता की व्यापक महत्ता को विस्तार से बनाने और बताने के लिए है। जाति एक मनोवैज्ञानिक व्याधि है। सामाजिक व्यवस्था में जातीय-संरचना को परत-दर-परत

समझकर 'मानव-जाति ही सत्य है' यह मर्म समझ जाना ही इस व्याधि की औषधि है।

इस कृति में कवि ने प्रतिभा की परिभाषा को सार्थक बना दिया है। आचार्यों ने प्रतिभा को अपूर्व वस्तु निर्माण करने वाली प्रज्ञा और नवनवोन्मेषशालिनी कहा है, प्रतिभा के ये विशेषण काव्यजीवन की प्रयोगशाला सफलता पाते हुए दिखाई देते हैं। व्युत्पत्ति की निपुणता से कवि महाभारत में प्रविष्ट हुआ है और सतत अभ्यास से सूक्ष्मावलोकन किया है। परदे के पीछे, झीने काल में विस्तृत इतिहास देखते हुए कवि, परम्परा की चुनौतियों को जीतते हुए मन की दृष्टि नव-सृजन किया है। कवि की साधना में काव्य के हेतु चरितार्थ हो उठे हैं। मनुष्य जेता बन गया है। अर्नेस्ट हेमिंग्वे की की कहानी 'ए ओल्ड मैन इन द सी' की कथावस्तु इस काव्य के विश्लेषण में अतीव प्रासंगिक है। एक बूढ़ा मछुवारा सेंटियागो प्रतिदिन समंदर में मछलियां पकड़ने जाता है और खाली हाथ लौटता है। लोग उसका उपहास करते हैं, वह बेपरवाह होकर जाल लिए समंदर को टटोलता रहता है। चौरासवीं बार उसे पहली दफा सफलता मिलती है और एक बड़ी शार्क जाल में फंस जाती है। वह जैसे-तैसे धार से जाल को घसीटते हुए किनारे तक पहुँचने की कोशिश करता है। किनारे पर पहुंचते-पहुंचते बहुत सारी छोटी मछलियां शार्क को लगभग खा चुकी होती हैं। वह बूढ़ा मछुआरा समंदर किनारे ही मर जाता है। नियति/प्रारब्ध का तांडव तबाह कर सकता है, बर्बाद कर सकता है लेकिन मनुष्य को हरा नहीं सकता। कर्ण विजेता मनुष्य है, वह हारना नहीं जानता.... जूझकर जीने का स्वाद लेना बखूबी जानता है। इस काव्य में मुर्दों की भीड़ वाली जनसंख्या को जीवंत बना डालना ही ध्वनित है। इस कृति में मूल महाभारत की त्रासदी कवि-विवेक में विरेचित हुई है, साथ ही उदात्त मनुष्य को गढ़ने हेतु साँचा बन गई है। ■

अंगप्रदेश के अमृत-पुरुष डॉ. अमरेन्द्र की अनमोल कृति 'कर्ण' का अभिनंदन है । अंगराज पर बहुत-सी लिखी गई कृतियों में डॉ. अमरेन्द्र का 'कर्ण' इसलिए अहम है कि इसकी रचना अंगप्रदेश के वासियों की नजर और संवेदना के साथ की गई है ।

—प्रसून लतांत

'कर्ण' की महाकाव्यात्मकता

—अविनाश कुमार सिंह 'अमेय'

महाकाव्य दिक् और काल की दूरी पाटते हुए महान् संदेशों का प्रस्फुटन करते हैं। किसी भी कवि की साहित्य-साधना की चरम परिणति है—महाकाव्य का प्रणयन। महाकाव्य कवित्व और कविता का चरमोत्कर्ष है। साहित्य की सारस्वत-साधना, सभ्यता और संस्कृति की मर्मज्ञ व्याख्या और उच्चकोटि के कवित्व की त्रिवेणी की उपस्थिति होने पर ही महाकाव्य का उद्भव संभव हो पाता है। साहित्य के विविध रूपों में महाकाव्य के महत्व को समझना हो तो विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की इस व्यथा को समझना होगा जो महाकाव्य सृजन की अभिलाषा अपूर्ण रह जाने के कारण प्रकट हुई थी (हालाँकि इससे उनकी महत्ता में कोई कमी नहीं आ जाती)—

थी महाकाव्य रचने की मेरे मन में।
तब कंकण किंकिणि से सहसा टकराकर,
फट पड़ी कल्पना शत सहस्र गायन में।
उस दुर्घटना से महाकाव्य कण-कण हो,
चरणों के आगे बिखर पड़ा है क्षण में।
थी महाकाव्य रचने की मेरे मन में।
हा! कहाँ गई यह युद्ध कथा सपने सी।

महाकाव्य जीवन का एक विराट सन्धि-समास है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे एक 'विस्तृत वनस्थली' कहा है। 'महत्' और 'काव्य'—इन दो शब्दों के समास से व्युत्पन्न 'महाकाव्य' संज्ञा का सर्वप्रथम संकेत वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में प्राप्त होता है जब श्रीराम, लव-कुश द्वारा रामायण का पाठ समाप्त कर लेने के पश्चात उनसे पूछते हैं—

किंप्रमाणमिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः।
कर्ता काव्यस्य महतः क्व चासौ मुनिपुंगवः।।

(यह काव्य कितना बड़ा है? यह किस महात्मा की प्रतिष्ठा है? इस महत् काव्य के प्रणेता श्रेष्ठ मुनि कहाँ है?)

यहाँ 'काव्यस्य महतः' महाकाव्य विधा की ओर ही संकेत करता है।

महाकाव्य के स्वरूप का विवेचन पहली बार 'अग्निपुराण' में मिलता है, जबकि इसकी सर्वप्रथम विस्तृत व्याख्या का श्रेय आचार्य भामह को जाता है जिन्होंने 'अग्निपुराण' में निरूपित लक्षणों में कतिपय नवीन लक्षणों का समावेश अपने 'काव्यालंकार' में किया। दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में कतिपय नवीन लक्षण जोड़े। इसके बाद के सभी आचार्यों ने भामह द्वारा बताए गए लक्षणों का ही पिष्टपेषण किया। आचार्य विश्वनाथ ने अपने 'साहित्यदर्पण' में महाकाव्य के लक्षणों की लम्बी सूची प्रस्तुत की। इसमें सकल पूर्ववर्ती आचार्यों की मान्यताओं का समाहार करते हुए महाकाव्य के लक्षणों का विशद और सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत किया गया। आधुनिक काल में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. शम्भुनाथ सिंह, डॉ. प्रीतपाल सिंह, डॉ. नगेन्द्र प्रभृति विद्वानों ने महाकाव्य के लक्षणों पर आधुनिक दृष्टि से विचार किया। महाकाव्य पर विचार करनेवाले पाश्चात्य विद्वानों में अरस्तू, हॉब्स, केम्प, केर, एबरक्रॉम्बी प्रभृति प्रमुख हैं।

भारतीय (शास्त्रीय), पाश्चात्य एवं आधुनिक दृष्टिकोण का समाहार करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने महाकाव्य के देशकाल-निरपेक्ष पाँच विशेषताओं को रेखांकित किया है—

(१) उदात्त कथानक (२) उदात्त कार्य (३) उदात्त चरित्र (४) उदात्त भाव एवं (५) उदात्त शैली।

पर क्या महाकाव्य का पुरातन स्वरूप आधुनिक युगबोध को पूर्णरूपेण व्यक्त करने में समर्थ है? निस्संदेह नहीं। वास्तव में पुरातन स्वरूप के महाकाव्य में पात्र मुख्यतः एक महत्वपूर्ण से दूसरे महत्वपूर्ण तक यात्रा करते हैं, पर अपने विचारों से, अपने आत्मसंघर्ष से हर स्थल को गुरुत्वपूर्ण बना पाने में असमर्थ रहते हैं। एक तथ्य यह भी है कि महाकाव्य की घटनात्मकता, वर्णनात्मकता और विवरणात्मकता जैसी गद्य में लिखे उपन्यास में जँचती है, प्रभावशाली बनती है, वैसी पद्यबद्ध महाकाव्य में नहीं। इसीलिए प्रबन्धकाव्य या महाकाव्य लिखते समय आधुनिक कवियों ने स्वयं को किसी भाव/विचार विशेष की अभिव्यक्ति पर केंद्रित किया एवं घटनाओं, वर्णनों और विवरणों को बैसाखी की तरह प्रयुक्त किया या उनका संकेत मात्र कर दिया।

वर्तमान में महाकाव्य का सृजन आधुनिक शिल्प और भावबोध की मांग करता है जो सुदीर्घ घटनाचक्र, स्थूल कथानक, समग्र व्यक्तित्व और काल-प्रवाह की

शृंखला में गुँथा न होकर चिंतन के विविध आयामों, मानसिक अंतर्द्वंद्व की टकराहट, विघटित व्यक्तित्वों की छाया आदि उपादानों से गुम्फित होगा और ऐसा महाकाव्य आकार में छोटा भी होगा। यूँ भी महाकवि भारवि ने अपने किरातार्जुनीयम् में बताया है कि किसी शक्तिशाली औषधि की अल्प मात्रा भी परिणाम में बड़ी गुणकारी होती है। इसी प्रकार महाकाव्य यदि आकार में छोटा हो परन्तु प्रभाव की दृष्टि से बड़ा सशक्त हो तो उसकी उपेक्षा कथमपि नहीं की जानी चाहिए। साथ ही आधुनिक महाकाव्य में वर्तमान के जीवन-मूल्यों, संवेदनाओं, प्रश्नों और इच्छाओं के ताप की उपस्थिति भी अपेक्षित है। तो कथानक चाहे पुराण से, इतिहास से या वर्तमान से अवतरित हो, उसमें अतीत को अर्थवत्ता प्रदान करने के लिए वर्तमान का चित्रण अनिवार्य है।

महाकाव्य के इस सैद्धांतिक पक्ष पर विचार कर लेने के बाद अब हम प्रबुद्ध साहित्यकार डॉ. अमरेन्द्र विरचित प्रबन्धकाव्य 'कर्ण' की प्रबन्ध कल्पना और महाकाव्यात्मकता पर विचार करेंगे।

२५६ पृष्ठीय इस कृति का पूरा कथानक तेईस सर्गों में विभक्त है। कथा का प्रारंभ पारम्परिक रीति यथा आशीर्वाद, वन्दना, वस्तु-निर्देश आदि से नहीं होता और न ही कथा, कथावाचक शैली का अनुसरण करती है, अपितु यह कथा पृथा की इस चिंता से शुरू होती है–

क्या हुआ जो लौट कर आया न प्रहरी?
मन की शंका हो रही थी और गहरी
क्या हवा अनुकूल होकर बह न पायी?
क्या वरुण ने राह में बाधा उठायी?
क्या दिशा भटका गई संकेत-पथ को?
कौन रोके यह खड़ा है समय-रथ को?
क्या हुआ जो लौट कर आया न प्रहरी
मन की शंका और गहरी और गहरी

और कुन्ती की इस चिन्ता का शमन लौटकर आए प्रहरी के इस संदेश से होता है:–

जा लगी थी पेटी चंपा के किनारे
शांत अपने आप लहरों के सहारे।

और फिर देखा किनारे संत कोई,
श्रेष्ठकुल उत्पन्न हो, कुलवंत कोई;

गोद में लेकर खड़ा वसुषेण को था,
शिशु किलकारियों में था, जो रोता।

००

उस पुरुष के वाम में ही संगिनी थी,
अप्सरा ही सामनेय अर्द्धांगिनी थी !
ले लिया नवजात को था पुरुष-कर से
गोद में रख खिल पड़ी थी पाँव-सर से;

००

देवी, कुछ भी अब नहीं चिन्ता का कारण,
हो गया भवितव्य के दुख का निवारण।

इस प्रकार प्रथम सर्ग में कर्ण को नदी में बहाने, कुन्ती का पुत्रा के भविष्य को लेकर चिन्ता, प्रहरी द्वारा शिशु कर्ण को अधिरथ और राधा द्वारा अपनाए जाने की सूचना कुन्ती को प्रदान करना, कुन्ती का हर्ष-विषाद, मार्तंड द्वारा पृथा को परोक्ष रूप से सांत्वना देना चित्रित है। आदित्य की यह भविष्यवाणी और आशीर्वाद कुन्ती को हर्षित कर जाते हैंः—

जो तुम्हारी सृष्टि है, स्रष्टा बनेगा
तामरस होगा, ये इन्दीवर खिलेगा।
यह पिता-माता के व्रत का ही व्रती हो,
देवता के धर्मरथ का ही रथी हो।

द्वितीय सर्ग में सूर्य द्वारा अधिरथ की पत्नी राधा को कर्ण के कुन्तीपुत्रा होने का रहस्य बताना और कुन्ती की विवशता का चित्रण, सूर्य का पश्चाताप एवं सूर्य द्वारा कर्ण के पूर्वजन्म की कथा (सहस्रकवीच की पौराणिक कथा से पृथक्) वर्णित है। स्पष्ट है कि इस सर्ग का पूरा-का-पूरा कथानक नवीन है, यह कवि अमरेन्द्र द्वारा मूलकथा में अंगदेश के लोकविश्वास का मौलिक संयोजन है।

सूर्य का यह पश्चाताप विमर्श के नए आयाम खोलता है और सूर्य को इस कथा में एक पृथक् शिखर पर प्रतिष्ठित करता हैः—

देह का यह आचरण सचमुच बहुत कुत्सित पतित है,
देवता के इस भयावह कर्म से दानव चकित है;
तब कहाँ था सूर्य मैं ही, जो तमस को लील लेता,
भाव मन में दौड़ता था सृष्टि का मैं ही विजेता।

००

आज मुझको लग रहा पर, हूँ पृथा से हीन-नीचे,
वह पुरुष सचमुच अधम है जो त्रिया पर तम उलीचे;
देवता का भय दिखा कर, कीर्ति का गुणगान गाकर,
मैंने कुन्ती को किया था बस विवश एकान्त पाकर।

और कर्ण का गुरु बनने की चाह सूर्य को एक आदर्श जनक के रूप में स्थापित तो करती ही है, पितृत्व धर्म को भी मण्डित करती है–

गुरु बनूँ वसुषेण का मैं, अब यही बस चाहता हूँ,
क्यों न चाहूँगा भला मैं, जन्म मुझसे है, पिता हूँ।

oo

जो पिता का धर्म है, जो कर्म है, करना ही होगा,
रिक्त जो कुछ रह गया है, अब उसे भरना ही होगा।

साथ ही कर्ण के लिए सूर्य के इस उद्‌गार का अंगदेश आज तक आभारी है:–

इस समय से, इस क्रिया से अंग का उत्थान होगा,
कर्ण मेरा एक दिन इस अंग का भगवान होगा।

ध्यातव्य है कि पितृत्व ही नहीं, मातृत्व भी अपने पवित्रतम स्वरूप में यहाँ मुखरित है–

कर्ण मेरा वीर हो, योद्धा विकट हो श्रेष्ठतम यह,
रोक लूँ मैं मोह कारण, नीचता है नीचतम यह।

यह नहीं मेरा (राधा) ही सुत है, यह पृथा-गंगा का सुत है,
तब भला मैं न कहूँ क्यों, जो कि मंगल भावयुत है।
देवता हे रश्मियों के, आप का सुत आप जैसा,
यह तो सुख संचार करता, इसमें तब हो ताप कैसा?

तृतीय सर्ग में भी कवि की मौलिक उद्‌भावना है। इसमें सूर्य द्वारा कर्ण को शिक्षा प्रदान करने, सूर्य द्वारा कर्ण को उसके जन्म का रहस्य बताने, कर्ण का सोच-विचार, कर्ण की दुविधा, अधिरथ और राधा का पुत्र होने की बात सोचकर कर्ण का संशयमुक्त होने की कथा वर्णित है।

क्यों पड़ूँ मैं इस द्विधा में, इस कथा में,
कौन-सा आनन्द बसता इस व्यथा में?
मैं तो हूँ राधेय, अधिरथपुत्र हूँ मैं,
बस इसी पहचान से सर्वत्र हूँ मैं।

समग्र चतुर्थ सर्ग कवि का मूलकथा में मौलिक संयोजन है। इस सर्ग में अधिरथ-राधा वार्तालाप है जिसमें अधिरथ का कर्ण को अंग की गद्दी सौंपने की बात कहने, राधा का विरोध और कर्ण को ज्ञानप्राप्ति हेतु गुरु-आश्रम भेजने का सुझाव देना तथा अन्ततः अधिरथ द्वारा कर्ण को लेकर परशुराम के पास जाने की बात कहना वर्णित है।

पंचम सर्ग में अधिरथ का कर्ण को लेकर परशुराम के आश्रम पहुँच उनसे कर्ण को अस्त्र-शस्त्र-शास्त्र ज्ञान की शिक्षा देने हेतु निवेदन करना, कर्ण की शिक्षा प्राप्ति तथा परशुराम के आश्रम से कर्ण की विदाई के प्रसंग वर्णित हैं। इस कथा में परशुराम द्वारा कर्ण को दिए गए शाप का प्रसंग विलोपित है क्योंकि इस कथा में परशुराम कर्ण की वास्तविकता से पूर्व परिचित हैं।

षष्ठ सर्ग में अधिरथ के साथ कर्ण का हस्तिनापुर (रंगशाला) आगमन, द्रोणाचार्य-कृपाचार्य संवाद (कर्ण के विरुद्ध षड्यंत्र), भीम का कर्ण को सूतपुत्र कहना, कुन्ती का कर्ण को नेपथ्य से 'देव अंश' कहना और कर्ण के अंगप्रदेश लौट आने की कथा वर्णित है। यहाँ अर्जुन और कर्ण का द्वंद्व नहीं होता। इस सर्ग के कुछ प्रसंग (द्रोण-कृप को पहले से कर्ण के बारे में ज्ञात होना, कुन्ती का कर्ण को देव अंश कहना प्रभृति) भी कवि की मौलिक उद्‌भावना से प्रसूत हैं।

सातवें सर्ग में सूर्य-कर्ण संवाद है जिसके माध्यम से लाक्षागृह-प्रसंग और कर्ण-जरासंध युद्ध की कथा कही गई है। सूर्य कर्ण को वृषाली से विवाह करने को कहते हैं और दुर्योधन से सतर्क रहने का परामर्श देते हैं।

आठवें सर्ग में कर्ण-वृषाली संवाद है जिसमें वृषाली बताती है कि उसके शिवभक्त पिता भगदत्त ने कर्ण के जन्म का रहस्य उसे पहले ही बता दिया था। यह प्रसंग भी कवि की मौलिक उद्‌भावना है।

नवाँ सर्ग कर्ण-वृषाली संवाद को संजोए है जिसमें प्रकृति की अनुपम छटा का अनुपम चित्रण है। दसवें सर्ग में द्रौपदी-स्वयंवर का आयोजन, भरी सभा में द्रौपदी द्वारा कर्ण को सूत कहना, इस संबंध में कर्ण का आत्मचिंतन और द्रौपदी को मन-ही-मन दोषमुक्ति प्रदान करना चित्रित है। ग्यारहवें सर्ग में पाण्डवों द्वारा खाण्डववन-दहन और इस पर कर्ण के क्षोभ का चित्रण है।

बारहवें सर्ग में कर्ण-दुर्योधन संवाद है, द्यूतक्रीड़ा आयोजन की सूचना है, कर्ण द्वारा कुन्ती को पुनः वन जाने से रक्षण की अपनी इच्छा का दुर्योधन पर उद्‌घाटन है और इस संबंध में दुर्योधन की स्वीकृति का प्रकाशन है। तेरहवें सर्ग में कर्ण का आत्मचिंतन है, स्वयं से ही आलाप-संलाप है, द्यूतसभा के विविध पक्षों पर विचारण है।

चौदहवें सर्ग में भी कर्ण का आत्ममंथन है, स्वयं पर द्रौपदी को 'वेश्या' कहने के आरोप पर उसकी व्यथा की अभिव्यक्ति है, कर्ण-वृषाली संवाद है। यह प्रसंग भी कवि की मौलिक उद्‌भावना है। कर्ण की व्यथा को पहली बार इस कृति ने स्वर प्रदान किया है:—

कितनी पीड़ा, कितनी लज्जा एक निमिष में छलकी,
झंकृत हो जाता तन-मन है, सुधि आते उस पल की;
लगता है, यह शक्ति व्यर्थ है, और कवच-कुंडल भी,
दे न सका उस भरी सभा में कृष्णा को संबल भी।

चेत हुआ था, तब कृष्णा को कृष्ण बचा ले निकले,
इसका कुछ अवकाश नहीं था, बुद्धि जरा भी संभले।
समझेगा यह कौन भला किस मन से गुजर रहा था,
लग कर उल्कापातों से पर्वत ही बिखर रहा था।

सब देंगे बस दोष मुझे ही न; को बिना विचारे,
टूटी होगी नाव भंवर में, नाविक खड़ा किनारे।
कुछ भी हो, इसका तो दुख है, चूक हुई है मुझसे
साथ धर्म का दे न सका, धरती शोभित है जिससे।

मैं अपने ही मान हानि में उलझा रहा समय पर,
रुककर पल भर सोच न पाया लज्जा, शील, विनय पर;
यह भी भार हृदय पर अपने लेकर अब जीना है,
माहुर है, प्राणों का घातक, जिसको ही पीना है।

कैसे-कैसे लांछन मुझ पर सभी लगाते आए,
जिससे कि यह कर्ण धरा पर पतित सदा कहलाए।
मैंने कहा कहाँ कृष्णा को, वह है रूपाजीवा
जो कहता तो इसी तरह क्या सीधी होती ग्रीवा!

वैसे भी यह ज्ञात नहीं है कुंजरपुरवासी को,
अंगदेश में छूट नहीं है शासित या शासी को;
रूपाजीवा को छोटी आँखों से कोई हेरे,
तब ऐसे में कृष्णा के हित बोल उठेंगे मेरे?

अंगदेश में गणिका भी पूजित है देवी-सी ही,
वारस्त्री के बिना अधूरी कथा अंगऋषि की ही।
लेकिन क्या इससे भी लेना, इससे अलग कहूँ मैं,
कृष्णा का दुख मेरे जैसा जिसमें सतत बहूँ मैं।

पंद्रहवें सर्ग में कर्ण-वृषाली संवाद है जिसमें खाण्डव-दहन-प्रसंग को याद कर कर्ण का अमर्ष और उसकी पर्यावरण-संरक्षण-चेतना चित्रित है। सोलहवें सर्ग में कर्ण-पुनरनवी संवाद है जिसमें प्रकारांतर से कीचक-वध समेत कई प्रसंग हैं।

सत्रहवें सर्ग में कर्ण द्वारा अपनी दूसरी पत्नी 'पुनरनवी' को पत्र लिखने का प्रसंग है। इस पत्रा के माध्यम से शल्य-प्रसंग, कर्ण द्वारा भीष्म के छत्र तले युद्ध लड़ने से इनकार, कृष्ण का कौरव-सभा मे शान्तिदूत बनकर आना, कृष्ण-कर्ण संवाद और कृष्ण द्वारा कर्ण पर उसके जन्म का रहस्य प्रकट करने की कथा वर्णित है।

अठारहवाँ सर्ग इस महाकाव्य के कथानक का एक प्रमुख मोड़ है। इस सर्ग में सूर्य द्वारा कर्ण को इन्द्र के भावी छल से सावधान करना, कर्ण द्वारा इन्द्र को कवच-कुण्डल दान, इन्द्र द्वारा कर्ण को 'शक्ति' प्रदान, अधिरथ का कर्ण की चिकित्सा हेतु धन्वंतरि को लेकर आना, दुर्योधन का विचलित होना और 'शक्ति' की शक्ति समझ हर्षित होना प्रभृति प्रसंगों को एकसूत्र में पिरोया गया है। इस कथा में धन्वंतरि का प्रवेश कवि की मौलिक उद्‌भावना है।

उन्नीसवें सर्ग में कर्ण-कुन्ती संवाद और कर्ण द्वारा कुन्ती को उसके पाँचों पुत्रों के जीवित रहने के वचन देने का प्रसंग है।

बीसवें सर्ग में 'भीष्म-वध' का संकेत है, कृष्ण-अर्जुन-संवाद में कृष्ण द्वारा कर्ण-महिमा-वर्णन है और कर्ण द्वारा इन्द्र-प्रदत्त शक्ति का घटोत्कच पर व्यय कराने की कृष्ण की योजना का चित्रण है। इक्कीसवें सर्ग में कर्ण द्वारा घटोत्कच के वध का प्रसंग वर्णित है। इस क्रम में पांडवों द्वारा हिडिम्बा के अपमान का कर्ण द्वारा स्मरण कवि की मौलिक उद्‌भावना है।

बाइसवें सर्ग में कृष्ण-अर्जुन संवाद, अर्जुन-कर्ण युद्ध, कर्ण-कृष्ण संवाद और कर्ण-वध की कथा वर्णित है। कृष्ण-कर्ण के संवाद के क्रम में कर्ण का यह वचन काल के कपाल पर अंकित है—

मैं भी सबकुछ समझ रहा हूँ, क्यों अनीति पर केशव,
शिव के मन में जाग गया है, क्यों हठात यह भैरव!

मरना तो मरना ही सबको, सबको प्राण गँवाना,
उसी मृत्यु की खातिर क्यों ये छल का ताना-बाना!

००

सुनिए, रण में हार हुई जो आज धर्म की, तय है,
आने वाले भी भविष्य में धर्म-नीति का क्षय है।

तेइसवें सर्ग में दूत का वृषाली को कर्ण के अंतिम महादान (दाँतों का) का प्रसंग सुनाना, कर्णवध की सूचना देना, कृष्ण के अश्रु और वृषाली के दायित्व-बोध की कथा चित्रित है।

यहाँ 'कृष्ण के अश्रु' का संकेत अपने आप में शताधिक महाकाव्य का निचोड़ है–

घिर गए थे मेघ माधव के नयन में, क्या कहूँ,
बिजलियाँ चमकीं, उठे, उनके गगन में, क्या कहूँ!
क्या कहें देवी, रखा था शीश केशव-वक्ष पर,
और बाँया हाथ वैसे ही पड़ा था अक्ष पर।

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'कर्ण' काव्य की कथा आदि से अन्त तक अक्षुण्ण है, सुसम्बद्ध है, सुसंगठित है, कार्य-कारण शृंखला में बंधा है। कर्ण के खाण्डववन-दहन की घटना को बार-बार स्मरण कर क्षोभ-प्रकट करने के प्रसंग को छोड़कर किसी भी घटना की पुनरावृत्ति इस कथा में नहीं है। चूंकि इस कथा के संयोजन में कवि ने अनेक मौलिक उद्‌भावनाएँ की हैं, इस कारण यह कथा लोकप्रिय कथा से एक अलगाव बनाकर चलती है। इसका सबसे बड़ा सुफल यह हुआ है कि कथा-प्रवाह में रोचकता और उत्सुकता बनी रहती है। अधिकतर कथा संवादों में है। ये संवाद या कथोपकथन स्वाभाविक और गतिशील हैं। प्रत्येक पात्र का कथन उसके चरित्र की विशेषता को उद्‌घाटित कर जाता है। निर्विवाद रूप से 'कर्ण' एक समर्थ नायक सिद्ध होता है।

यद्यपि यह कृति महाभारत-युद्ध के एक महत्वपूर्ण पात्र 'कर्ण' की कथा है, पर इसमें पात्रों की विविधता भी है और उपेक्षित स्त्री-पात्रों का उद्धार भी है। यह कृति कर्ण की पत्नियों-वृषाली और पुनरनवी-के अछूते व्यक्तित्व को उद्‌घाटित करती है, साथ ही 'कुन्ती', 'राधा' और 'हिडिम्बा' के चरित्र में भी बहुत कुछ जोड़ती है। इसमें वृषाली पर पाँच और पुनरनवी पर दो सर्ग हैं जो उनकी चरित्रगत विशिष्टताओं के विविध पक्षों को उद्‌घाटित करने में समर्थ हैं।

डॉ. अमरेन्द्र को कथा के मार्मिक स्थलों की खूब पहचान है और अपनी इस प्रतिभा का पूरा उपयोग उन्होंने इस कथा के संयोजन में किया है। उदाहरणार्थ

सूर्य-राधा संवाद, परशुराम-कर्ण संवाद, मेघवन में प्रकृति-चित्रण, खाण्डववन-दहन पर कर्ण का उद्वेलन, कर्ण द्वारा सुयोधन से कुन्ती को पुनः वन न भेजने का वचन लेना, द्रौपदी को रूपाजीवा कहे जाने के आरोप पर कर्ण का आत्ममंथन, कृष्ण-कर्ण संवाद, कर्ण-वध पर वृषाली की प्रतिक्रिया प्रभृति प्रसंगों के वर्णन में सहृदय कवि का हृदयपक्ष विह्वल हो उठा है। कवि ने पूरी महाभारत की कथा के विस्तार में जाने के मोह से स्वयं को बचाए रखा है और ऐसे घटनाओं का संकेत भर कर दिया है जिसके विस्तार से कथानक बोझिल होता। भीष्म-वध प्रसंग को छोड़ते हुए कवि ने सीधे उन्हें शर-शय्या पर दिखाया है–

वाण शय्या पर पड़े हैं भीष्म इस्थिर
दस दिनों तक युद्ध करते पांडवों से;
रात है, आँखें खुली हैं, जग रहे हैं,
योगनिद्रा में हो योगी, लग रहे हैं।

(कर्णः सर्ग-२०, पृष्ठ-२०६)

इस तरह घटनाओं के वर्णन में संक्षिप्तता का विशेष ध्यान रखते हुए चिन्तन पक्ष पर विशेष बल दिया गया है जो आधुनिक महाकाव्य हेतु अनिवार्य भी है।

कृति में दृश्यों के स्थानगत और विचारगत-दोनों विशेषताओं के स्वाभाविक विवरण हैं। अंगराज कर्ण के अंगदेश का विवरण बड़ा ही भावप्रवण हैः-

अंग उसका नाम है, उस देश का तो,
छू के बहती है कई नदियाँ, न सातो!
ऋषि-तपस्वी, मुनिवरों की भूमि है वह
कुसुम-कंचन का खिला-सा, गंध महमह!

(कर्णःसर्ग-१, पृष्ठ-१५)

भूमि यह शृंगी, विभांडक, जह्नु की है,
यह न अष्टावक्र की ही, राम की है;
हाथ में जो हैं निरन्तर परशु धारे,
क्रोध में आए तो गिन-गिन कर संहारे।

अंग वह है, देश, गाधिसुत जहाँ के,
और दुर्वासा कहाँ के हैं? यहाँ के;
जो तुम्हारे जन्म के नेपथ्य में हैं,
एक दिन जानोगे जो-जो सत्य में हैं।

(कर्णःसर्ग-३, पृष्ठ-२६)

अंग का मंदार औषध है, अमय है,
शव यहाँ शिव हैं, जड़ों में फूटते हैं प्राण;
पापहरणी का लगे जो जल अचोके
तीनों तापों से समझिए एक क्षण में त्राण
(कर्णःसर्ग-१८, पृष्ठ-१८६)

दान तो है अंगभूमि की पुरातन रीत
अंग के बलि और शिवि की वे कथाएँ
दूर गिरि पर ज्यों पहाड़ी गूँजता संगीत।

परशुधर के दान को ही क्यों भुलाएँ,
दे दिया था पृथ्वी को स्वर्णवेदी साथ;
और फिर मंदार पर जो आ बसे थे
द्रोण को भी मंत्र-आयुध दे के खाली हाथ।
(कर्णःसर्ग-१८, पृष्ठ-१६०)

तो दूसरी ओर पात्रों की मनोदशाओं का निरूपण भी कवि ने सफलतापूर्वक किया है।

देखा जो अपने सुत को तो हुई भाव में लीन,
भूत, भविष्यत, हानि-लाभ के सब भावों से हीन;
'कर्ण तुम्हारी मैं ही माँ हूँ' उसकी हृदय पुकार,
बार-बार दुहरा जाती है गंगा की जलधार।
(कर्णःसर्ग-१६, पृष्ठ-१६६)

चेत में आई वृषाली मन-हृदय को बाँध कर,
दूत से इतना कहा, सब दंश-पीड़ा लाँघ कर—
कुछ नहीं बोलो, रहा क्या बोलने को दूत,
क्या छिपा ही रह गया संदेश का आकूत!
(कर्णःसर्ग-२३, पृष्ठ-२५५)

कर्ण में कवि का प्रकृति के प्रति अद्वैतवाद और सर्ववाद का समन्वित दृष्टिकोण सामने आया है। एक ओर वे सृष्टि/प्रकृति को ब्रह्म की रचना मानते हैं तो दूसरी ओर उसमें ब्रह्म की सत्ता का साक्षात्कार भी करते हैं। यह दृष्टिकोण वैदिक साहित्य से उद्‌भूत है। नवें सर्ग का अधिकांश भाग प्रकृति-चित्रण को ही समर्पित है, हालाँकि अन्यत्र भी प्रकृति का पर्याप्त चित्रण हुआ है। प्रकृति चित्रण के आलम्बन, उद्दीपन, मानवी प्रभृति रूपों का प्रयोग हुआ है।

प्राण से प्यारे अधिक हैं ये समुन्नत शाल,
छू नहीं सकता जरा जिसको, न जिसको काल
ये सघन से देवदारु, नागवंशी बाँस,
बाँसुरी के बोल में बजती है जिनकी साँस।

स्नेह से सींचे हुये ये सल्लकी, सिंधुआर,
जिनके नीचे झुरमुटों में सज रहे कचनार;
या कि लगता है मुझे हर बार-ही-हर बार,
मेरी बाँहों में तुम्हारा सो रहा है प्यार।

और ये जो ताड़ हैं, पर ताड़ ही न मान,
ये हमारे अंग-कुल की हैं अखंडित शान;
पास में शीशम खड़े थे, बाहुओं से भीम,
रक्त के रक्षक हमारे वैद्य फैले नीम।

(कर्णः सर्ग-६)

भू सिंचित कर अभी गया है बादल दूर गगन से,
कस्तूरी ले आये थे मृग चलकर चम्पावन से;
लुटा रहे हैं कुसुम सुरभि को तीन पहर पहले से,
अंगदेश ऐसा लगता है, पारिजात हो जैसे।

(कर्णः सर्ग-१४)

कर्ण में शुद्ध भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं। सामाजिक जीवन की मूल प्रवृत्तियों के समन्वित रूप को संस्कृति कहा गया है। प्रेम, त्याग, साहस प्रभृति सभी गुणों का परिपाक है यह कृति 'कर्ण' और उसका पात्र 'कर्ण'।

कृति में श्रम की महत्ता का प्रतिपादन द्रष्टव्य है (इन पंक्तियों पर दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' की छाया है)—

श्रम का हिस्सा अगर बराबर सबमें नहीं बँटेगा,
होगा ही संग्राम, किसी का धड़ से शीश हटेगा।

(कर्णःसर्ग-५)

कर्ण पृथ्वी को अपनी 'माता' बताते हुए कहता है—

पुण्य की माता धरा पर सब दुखों को हर रही,
सृष्टि के आरम्भ से ही स्वर्ग इसको कर रही;
जो मृत्यु को जीव देती, शक्ति देती, पाप हर,

जो क्षमाशीला रही है, सुर-असुर के शाप हर।

(कर्णःसर्ग-८)

वासनाएँ विवेक हर लेती हैं, यह दर्शन कर्ण के इस कथन में व्यक्त हुआ है—

इन्द्रियों की वासना की भीष्म उठती वायु
लील लेती है क्षणों में नीति-नय की आयु;
घेरती है प्राण को बनकर तमिश्रा-जाल,
नाच उठता है मनुज पर कोटि फन का व्याल।

(कर्णःसर्ग-९)

कर्ण का आत्मचिन्तन प्रेम के महत्व को रेखांकित करता है—

प्रेम चाहता ही है मन का पूर्ण समर्पण संग विश्वास
और अगर यह नहीं मिले तो वही पवन उठते उनचास।

(कर्णःसर्ग-१०)

कर्ण में पर्यावरण-संरक्षण की चेतना प्रबल है। खाण्डववन-दहन से क्षुब्ध कर्ण कहता है—

लंबे, हरे-भरे, वृक्षों का वह संसार जला है,
जो धरती पर पुरुष-प्रकृति की अद्‌भुत एक कला है
जो धरती पर सुख की छाया, साँसें हैं वसुधा की,
वन की ममता अगर मिले, तो कहाँ रहा कुछ बाकी!
उसी विपिन को लील लिया है पांडव की इच्छा ने
घेर लिया है मन-प्राणों को कैसी इस पृच्छा ने!

(कर्ण : सर्ग-१२)

और साथ ही वह पूछता है—

इस अधर्म का कौन लिखेगा, हो तटस्थ इतिहास
अग्निदेव का और पार्थ का हृदयहीन उपहास?

(कर्णःसर्ग-१६)

जब सत्ता अयोग्य और क्रूर व्यक्तियों के हाथ में आ जाती है तब प्रजा का जीवन नरक बन जाता है। इस पर कर्ण कहता है—

सच में जब सत्ता आती है लोभी, क्रूर करों में,
क्षय-विनाश का छा जाता है भय-आतंक नरों में;
तब नारी की शील-प्रतिष्ठा खतरे में हो जाती
हर क्षण एक भयावह चिंता उसको बहुत डराती

उस मदांध ढोंगी शासक को कौन सहन कर पाये,
जो समाज पर भूत-प्रेत की छाया-सा मंडराए।

(कर्णःसर्ग-१२)

'माँ' की महत्ता को प्रतिष्ठित करते हुए कर्ण कहता है–

माँ ही सागर, धरा, अग्नि है और पवन-आकाश,
माँ के बिना कहाँ है सृष्टि, गंध, शब्द और प्यास!
पुत्र नहीं वह, इस रहस्य का जिसको ही न ज्ञान,
माँ के ऋण से उऋण हुआ कब नर दे कर सर-दान?

माँ ही मोक्ष है इस धरती पर; माँ, तो क्या भगवान,
एक जननि के पुण्य बराबर कोटि-कोटि संतान!

चाहे जितना बली पुत्र हो, माँ के आगे दीन,
माँ पंचानन है अमृत की, संतति जिसमें मीन।

(कर्णःसर्ग-१६)

कर्ण की दानवीरता पर अपनी मुहर लगाते कृष्ण कहते हैं–

यह धरा शोभित अगर है, दान से है, मानिए
कर्ण की पहचान इस पहचान से है मानिए!

(कर्णःसर्ग-२३)

लोक-जीवन और त्योहारों का भी यदा-कदा चित्रण हुआ है–

भद्रासन की साज-सजावट गीतों की बरसातें
दिन की चमक भले मोती-सी, मणि जैसी ही रातें।

फगुआ, सतुआनी के संग में दुधिया घोर दिवाली
सौरभ बाँट रहा चम्पा में चम्पा भर-भर प्याली;
सजे हुए रथ, अश्वारोही, ऐरावत भी ऐसे,
पथ के रजकण, महमह-गमगम, गुग्गुल, धूप, मलय से।

(कर्णः सर्ग-१४)

कर्ण का भाव-पक्ष जितना गम्भीर है, उसकी शैली भी उतनी ही प्रौढ़ है। भाषा की प्रौढ़ता किसी भी कृति का अनिवार्य अंग है। 'कर्ण' में प्रौढ़ भाषा का रूप देखने को मिलता है। स्वाभाविक रूप से यहाँ तत्सम शब्दों की बहुलता है, पर

वे क्लिष्ट नहीं हैं। तद्भव शब्दों की भी मौजूदगी है ही। विराट बिंबों से गुँथी हुई है यह कृति। भावानुरूप शब्दों के प्रयोग में कवि कुशल शिल्पी हैं। इस कारण भाव-प्रेषणीयता और अभिव्यक्ति में सरलता भी है और सरसता भी।

'कर्ण' में 'अरथ अमित अति आखर थोड़े' को चरितार्थ करने का सफल प्रयास है। समास पद्धति का अनुसरण कर कवि ने इस कृति की भाषा को सुशोभित कर दिया है–

'भक्तों के ही प्राण छले, संकट में आ कर, छल से।

(कर्णःसर्ग-२२, पृष्ठ-२४१)

माँ पंचानन है अमृत की, संतति जिसमें मीन।

(कर्णःसर्ग-१६, पृष्ठ-२०६)

'कर्ण' में विविध छंदों और अलंकारों का प्रयोग हुआ है। युद्ध के प्रसंगों में 'वीर रस' की प्रमुखता है। अन्यत्रा भी वीर रस की मौजूदगी है। 'करुणा' भी फूट पड़ी है। अधिकांश सर्गों में एक ही छंद है तो कतिपय सर्गों में विभिन्न छंदों का प्रयोग भी है। इनमें 'पीयूष निर्झर' (सर्ग-१, ३, ४), माधव मालती (सर्ग-२), 'सार' (सर्ग-५, ६, १२, १४, २२), दिगम्बरी (७, १३, २१), गीतिका (सर्ग-८), रूपमाला (सर्ग-९, १५, २३), वीर (सर्ग-१०), विधाता (सर्ग-११) उल्लेखनीय हैं। कर्ण में छंद-योजना विषय और भाव-निरूपण में सफल है। सर्ग-१३ में तो कर्ण स्वयं बोल उठता है–

अभी तो ठीक ही होगा कि चम्पा लौट जाऊँ,
दिगम्बर छन्द की टूटी हुई कड़ियाँ सजाऊँ!

तो सर्ग-५ में परशुराम अनुप्रास के दर्शन कराते हैं–

बोलो अधिरथ, अंग के मुकुट, अंगभाग्य, अवनीश्वर
जिसका यश ही अग्नि, हवा, जल, गाते रहते अंबर।

तो सर्ग-१४ में 'चम्पा' को देखिए–

फगुआ, सतुआनी के संग में दुधिया घोर दिवाली
सौरभ बाँट रहा चम्पा में चम्पा भर-भर प्याली

और अंत में कर्ण का कृष्ण से यह निवेदन कितना भावप्रवण है! युगीन यथार्थ को इससे सशक्त स्वर कहाँ मिलेगा!

और भी कुछ है निवेदन, मानिए न मानिए
वंश से जो दीन हैं, केशव, उन्हें पहचानिए।

००

जाति से जो हीन, उनका जल्द ही उद्धार हो
उनके कुल में भी कभी, भगवान का अवतार हो।

(कर्णःसर्ग-२३)

स्पष्ट है कि डॉ. अमरेन्द्र विरचित 'कर्ण' काव्य-कृति में युगीन संवेदना, युगीन यथार्थ, नव निर्मित मूल्य बोध, संघर्षशील मानव आस्था समस्त संदर्भों और सरोकारों के साथ चित्रित है। यह एक परिपक्व कवि की परिपक्व रचना है जहाँ लोक-संस्कृति के सभी उपादानों का परिपाक है। इसमें महर्षि वेदव्यास की 'महाभारत' कथा और कवि की 'मौलिक उद्‌भावना' का धूप-छाँही मेल है जिसे अलगाया नहीं जा सकता क्योंकि इससे अंगदेश का 'लोकविश्वास' भी संपृक्त है। शैली की प्रौढ़ता एवं छन्द-रस-अलंकारों का वैभव इसमें विद्यमान तो है ही, साथ ही यह सन्दर्भित युग का सच्चा दर्पण है जिसमें वर्तमान युगबोध का प्रतिबिंब भी है। यदि व्यापकता और संघर्ष (आन्तरिक और बाह्य दोनों) औदात्य के आधार माने जाएँ तो औदात्य इस कृति की आत्मा है। अतः सभी दृष्टियों से यह कृति 'महाकाव्य' पद की अधिकारिणी है। डॉ. अमरेन्द्र की हिन्दी में लगभग दो दर्जन मौलिक रचनाएँ हैं और यदि अंगिका में प्रकाशित, हिन्दी और अंगिका में सम्पादित रचनाओं को भी शामिल कर लिया जाए तो ये पचास से अधिक हैं, परन्तु यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि एकाकी 'कर्ण' महाकाव्य ही उन्हें शीर्ष साहित्यकारों का पाँक्तेय बना सकता है। ■

हिन्दी साहित्य में कर्ण-काव्य परम्परा में डॉ. अमरेन्द्र कृत 'कर्ण' महाकाव्य का स्थान

—अविनाश कुमार सिंह 'अमेय'

केशव, जब तक श्रेष्ठ वंश का अहंकार जग ढोए,
जब तक दीन-दुखी का मन भी इस धरती पर रोए,
राज्यसुखों की खातिर जब धरती के रोम जलेंगे,
वहाँ-वहाँ पर एक कर्ण क्या, सौ-सौ कर्ण मिलेंगे।

(कर्ण : डॉ. अमरेन्द्र, सर्ग-२२)

हिन्दी साहित्य के इतिहास के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि आधुनिक हिन्दी काव्य में पौराणिक कथाओं के नूतन अभिव्यक्तिमूलक प्रयोगों का समारम्भ द्विवेदी युग (१९००-१९१८ ई.) से होता है। इन प्रबन्धकाव्य ग्रन्थों की सामग्री में नवीनता मात्र कथा-संयोजन एवं प्रसंग-चयन में ही नहीं है, अपितु कथा की मूल आत्मा में भी है, उसे देखने-समझने की दृष्टि में भी है। इनमें प्राचीन कथाओं की नई तार्किक व्याख्या, अलौकिकता का ह्रास तथा मूल कथाओं के संग-संग अनेक पुराणेतर सामयिक तत्वों व लोककथाओं के समावेश ने कथा के पारम्परिक ढांचे को परिवर्तित किया। नवीन विचारधारा और भावधारा की वाहक बन कर इन काव्य-ग्रन्थों ने आधुनिक हिन्दी काव्य को समृद्ध तो किया ही, साथ ही पौराणिक कथाओं और उसके पात्रों के मूल्यांकन की एक नई सम्यक् दृष्टि प्रदान की। अपनी विकास-यात्रा में ये साहित्यिक मूल्य एवं यह नव दृष्टि और अधिक निखरती गई है।

द्विवेदी युग से अब तक रचित इन प्रबन्धकाव्यों की कुछ सामान्य प्रवृत्तियाँ भी हैं जिनमें मानवमात्र का प्रशस्तिगान, लोकादर्श की प्रतिष्ठा, उपेक्षित पात्रों का उद्धार, कथा का संक्षिप्तीकरण एवं तर्कपूर्ण घटना-प्रसंगों की योजना

प्रमुख हैं। इस संदर्भ में प्रथम प्रौढ़ कृति अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'प्रियप्रवास' (१९१४) है और अब तक (२०१९) की अंतिम प्रौढ़ कृति डॉ. अमरेन्द्र कृत 'कर्ण' है। उल्लेखनीय है कि महाभारत के उपेक्षित पात्रों-कर्ण और एकलव्य को चरित नायक बनाकर अनेक प्रबन्धकाव्यों की रचना हुई।

यूँ तो वेदव्यास ने महाभारत में पृथक 'कर्णपर्व' का आयोजन कर इस बात का संकेत कर दिया था कि महाभारत के इस पात्र पर आगे भी बहुत कुछ लिखा जाएगा, किन्तु हिन्दी काव्य-साहित्य में महाभारत के इस उपेक्षित पात्र पर कवियों की कलम स्वतंत्रता-पश्चात् ही चल पाई। हाँ, संस्कृत में जरूर नाटककार भास ने अपने 'कर्णभार' नाटक में 'दानवीर कर्ण' को प्रस्तुत किया था और बंग्ला में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता 'कर्ण-कुंती संवाद' चर्चित रही।

'रामायण' के पश्चात् 'महाभारत' ही ऐसा ग्रन्थ है जिसके पात्रों पर सर्वाधिक प्रबन्धकाव्य रचे गए। महाभारत के इन पात्रों में 'कर्ण' का व्यक्तित्व अलग से ही चमकता रहा जो कवियों के लिए आकर्षण का विषय रहा। कर्ण! मृत्युंजय कर्ण! जिसकी जीवन गाथा एक ओर संघर्षों, आहों, पीड़ाओं, अभिशापों, लांछनों, दुर्भाग्य की अन्तर्कथा है तो दूसरी ओर गुरुभक्ति और मित्रता का प्रतिमान भी, एक ओर कठिनाइयों की पर्वतश्रृंखलाएँ हैं तो दूसरी ओर उस दुर्धर्ष-विराट व्यक्तित्व के समक्ष नत होते बाधारूपी पर्वतों की उपत्यकाओं के मध्य से बहती प्रेरणा-धारा है जो प्रत्येक पीड़ित जन-मन हेतु पीयूष सम है। तो ऐसे व्यक्तित्व पर कवि और काव्य की दृष्टि पड़नी स्वाभाविक ही थी।

हिन्दी साहित्य में 'कर्ण' पर आधारित प्रमुख प्रबन्ध रचनाओं में आनन्द कुमार विरचित 'अंगराज' (१९५०), केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' कृत 'कर्ण' (१९५०), रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत 'रश्मिरथी' (१९५२), लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'सेनापति कर्ण' (१९५८), गुरूपद्म सेमवाल का 'दानवीर कर्ण' (१९५९), जगदीश चतुर्वेदी कृत 'सूर्यपुत्र' (१९७५), लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'वीरगति' (१९७६), डॉ. मोहन अवस्थी कृत 'अभिशप्त महारथी' (१९७६), बैजनाथ प्रसाद शुक्ल कृत 'कर्ण' (१९९१), शिवकुमार मिश्र कृत 'राधेय' (१९९५/१४ सर्ग), जयप्रकाश शर्मा प्रकाश कृत 'महारथी दानवीर कर्ण' (१९९६), देवदत्त देव कृत 'कर्ण' (१९९६), डॉ. गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र' कृत 'पौरुष की पराजय' (२०१७) और डॉ. अमरेन्द्र कृत 'कर्ण' (२०१८/२३ सर्ग) उल्लेखनीय हैं। इनमें कई खण्डकाव्य हैं तो कई महाकाव्य। हालांकि अन्य क्षेत्रीय भाषाओं/बोलियों में भी कर्ण पर प्रबन्धकाव्य रचे गए हैं जिनमें डॉ. रामेश्वर प्रसाद की 'कुन्ती के बेटा' (बज्जिका), हरिनारायण सिंह 'हरि' की 'कर्ण'(बज्जिका/२०१९) प्रभृति उल्लेखनीय हैं।

आनन्द कुमार विरचित महाकाव्य 'अंगराज' २५ सर्गों में विभक्त है और इसका प्रमुख रस वीर है। इसमें कर्ण का व्यक्तित्व अलौकिक विभूतियों, अद्‌भुत चारित्रिक गुणों एवं महान् मानवीय मूल्यों से मण्डित है। इसमें कर्ण के साथ-साथ महाभारत के अन्य पात्रों का मौलिक चरित्र-चित्रण मिलता है। भाव-व्यंजना एवं शैली की दृष्टि से यह प्रौढ़ रचना है। तात्विक दृष्टि से इसे महाकाव्य की संज्ञा प्राप्त है। इसमें कर्ण के चरित्र को ऊँचा उठाने के लिए पांडव-पक्ष के पात्रों को ज्यादा ही नीचा दिखाने की कोशिश की गई।

लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 'सेनापति कर्ण' (खण्डकाव्य/५ सर्ग) में तत्कालीन समाज एवं राजनीति की अनेक विसंगतियों को उद्‌घाटित करते हुए कर्ण के उज्ज्वल चरित्र को सामने रखा है। यह उच्चकोटि की काव्य-रचना है। गुरूपद्‌म सेमवाल ने 'दानवीर कर्ण' (खण्डकाव्य) में कर्ण की दानवीरता, क्षमा, आत्मत्याग, बलिदान आदि उच्च मानवीय मूल्यों का चित्रण कुशलतापूर्वक किया है। जगदीश गुप्त के 'सूर्यपुत्र' (१४ सर्ग) में कर्ण के अन्तर्द्‌वन्द्व को आधुनिक दृष्टि से चित्रित किया गया है। डॉ. मोहन अवस्थी के 'अभिशप्त महारथी' (६ सर्ग) एक प्रौढ़ कृति है जिसमें कर्ण के चारित्रिक औदात्य की सफल अभिव्यंजना है।

कर्ण-केन्द्रित उपर्युक्त सभी प्रबन्ध रचनाओं में रामधारी सिंह 'दिनकर' की 'रश्मिरथी' (१९५२) एवं डॉ. अमरेन्द्र की 'कर्ण' (२०१८) सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं।

राष्ट्रकवि दिनकर ने अपनी मानवतावादी निष्पक्ष दृष्टि से सूर्यपुत्र कर्ण के रश्मिमंडित चरित्र की तेजस्विता को न केवल समझा बल्कि उसे उदात्त रूप में प्रतिष्ठित भी किया। दिनकर ने 'रश्मिरथी' की भूमिका में लिखा है, ''कर्णचरित्र के उद्धार की चिन्ता इस बात का प्रमाण है कि हमारे समाज में मानवीय गुणों की पहचान बढ़ने वाली है। कुल और जाति का अभिमान विदा हो रहा है। आगे मनुष्य केवल उसी पद का अधिकारी होगा जो उसके सामर्थ्य से सूचित होता है, उस पद का नहीं जो उसके माता-पिता तथा वंश की देन है।....कर्णचरित्र का उद्धार एक तरह से नई मानवता की स्थापना का प्रयास भी है।'' कर्ण के प्रति कवि की सहानुभूति का कारण उसका अपने अद्‌भुत शौर्य और चारित्रिक दृढ़ता के कारण समाज का भूषण बन जाना है। इसे कवि ने स्वयं कर्ण से कहलवाया है:-

मैं उनका आदर्श, कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे,
पूछेगा जग; किन्तु पिता का नाम न बोल सकेंगे।
मैं उनका आदर्श, किन्तु जो तनिक न घबरायेंगे,

निज चरित्र-बल से समाज में पद विशिष्ट पायेंगे।

(रश्मिरथी : चतुर्थ सर्ग)

कुल-गोत्र नहीं साधन मेरा, पुरुषार्थ एक बस धन मेरा,
कुल ने तो मुझको फेंक दिया, मैंने हिम्मत से काम लिया।
अब वंश चकित भरमाया है,
खुद मुझे खोजने आया है।

(रश्मिरथी : तृतीय सर्ग)

सब आँख मूँद कर लड़ते हैं, जय इसी लोक में पाने को
पर कर्ण जूझता है कोई, ऊँचा सद्धर्म निभाने को

(रश्मिरथी : सप्तम सर्ग)

जग में जो भी निर्दलित, प्रताड़ित जन हैं,
जो भी निहीन हैं, निन्दित हैं निर्धन हैं,
यह कर्ण उन्हीं का सखा, बन्धु सहचर है
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है।

(रश्मिरथी : पंचम सर्ग)

''वास्तव में कुरुक्षेत्र की रचना कर लेने के पश्चात् ही मुझमें यह भाव जागा कि मैं भी कोई ऐसा काव्य भी लिखूँ जिसमें केवल विचारोत्तेजकता ही नहीं, कुछ कथा संवाद और वर्णन का माहात्म्य हो। यह उस मोह का उद्‌गार था जो मेरे भीतर इस परम्परा के प्रति मौजूद रहा है, जिसके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हैं''—यह कहना है दिनकर का रश्मिरथी के लिए। इसका कारण भी है। रश्मिरथी का रचना काल (१९५२) वह काल है जब हिन्दी कविता 'नई कविता' आन्दोलन के चरण से गुजर रही थी। हालांकि 'रश्मिरथी' का अनुशीलन यह बताता है कि इसमें दिनकर का उद्देश्य कथा-वर्णन से अधिक कर्ण के सम्यक् चरित्रांकन का है और यही कारण है कि दिनकर ने महाभारत के उन्हीं प्रसंगों का सांकेतिक वर्णन किया है जिनसे कर्ण के चरित्र की धवलता निरूपित होती हो। कर्ण के चारित्रिक औदात्य को प्रकट करने हेतु दिनकर ने महाभारत के कुछ प्रसंगों (दो-तीन) में बदलाव किए हैं, हालांकि कथा का बहुलांश महाभारत के अनुसार ही है। उदाहरणस्वरूप, महाभारत में कर्ण ने इन्द्र से एकघ्नी अस्त्र माँगकर लिया था जबकि रश्मिरथी में इन्द्र स्वयं यह अस्त्र कर्ण को देते हैं। इसी प्रकार महाभारत में कर्ण के तूणीर में विद्यमान सर्पमुखी बाण का वेश धरे अश्वसेन को अर्जुन पर छोड़ने का निर्णय स्वयं कर्ण करता है जबकि रश्मिरथी में स्वयं अश्वसेन कर्ण से इसके लिए निवेदन करता है जिसे कर्ण अस्वीकार कर देता है। दिनकर ने

घटनाओं को माध्यम के रूप में स्वीकार कर कर्ण के चरित्र का रश्मिरथी के रूप में अभ्यर्थना की है। दिनकर की मौलिकता यहाँ, कथासंयोजन से अधिक भावसंयोजन और विचारसंयोजन में है।

डॉ. अमरेन्द्र कृत 'कर्ण' (२०१८) का रचनात्मक परिवेश वही नहीं है, जो रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत 'रश्मिरथी' (१९५२) का है। दोनों में लगभग सात दशक का अन्तराल है। दोनों में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और परिवेशगत पार्थक्य विद्यमान है। हालांकि इस पार्थक्य के बावजूद दोनों में कुछ समानताएँ भी हैं और विषमताएँ भी।

किसी भी मूलकथा के समान्तराल वह कथा किंचित परिवर्तित रूप में विविध अंचलों की लोककथाओं में भी विद्यमान और चलायमान रहती है। वास्तव में लिखित-अलिखित रूप से बिखरे किसी भी प्रदेश के लोक-साहित्य में जिस सत्यता और प्रखरता से वहाँ का लोकमानस मूर्त हो सकता है, वह अन्य किसी माध्यम से संभव भी नहीं है। और कर्ण तो अंगप्रदेश के ही शासक रहे। तो स्पष्ट है कि उनसे जुड़ी कथाएँ अंगप्रदेश में बिखरी पड़ी हैं। मूल रचनाकार भले किन्हीं कारणों से अपनी रचना में इन्हें शामिल नहीं करता, पर ये कथाएँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ती रहती हैं। डॉ. अमरेन्द्र भी कहते हैं, 'सदियों का लोकविश्वास सोपान बन सकता है।' तो 'कर्ण' महाकाव्य में पूरी मौलिकता के साथ इस लोकविश्वास की भी झलक है जो मूलकथा में उपलब्ध दरारों को तो भरते ही हैं, कर्ण के अनदेखे चारित्रिक पक्ष को भी सामने लाते हैं। और डॉ. अमरेन्द्र की आकांक्षाओं में यह भी है कि 'कर्ण का वह रूप भी आकार ले सके, जो काव्य के शिल्पियों से अब तक छूटे रहे हैं।'

इस महाकाव्य में डॉ. अमरेन्द्र की लेखनी कथासूत्रों का संकेत कर बार-बार कर्ण के अन्तर्मन की ओर मुड़ जाती है। उन्हें जहाँ भी अवसर मिला है वहाँ कर्ण के माध्यम से समानता की भावना और पर्यावरण-संरक्षण चेतना जैसे विषयों से संबद्ध चिंतन को व्यक्त किया है या फिर कर्ण की अन्तर्पीड़ा की मार्मिक अभिव्यंजना की है।

श्रम का हिस्सा अगर बराबर सबमें नहीं बँटेगा
होगा ही संग्राम, किसी का धड़ से शीश कटेगा।
(कर्ण : डॉ. अमरेन्द्र, सर्ग-५)

नागकुल का खिल उठा था एकदम नया संसार,
डोलता था मेघ बनकर उस विपिन में प्यार;

शीत में वैशाख हँसता, जेठ में फिर शीत,
ग्रीष्म की वर्षा से कैसी थी अनोखी प्रीत

और एक दिन जल उठा वह वन, बुझी न आग
अग्नि के पुतले बने-से जल गए सब नाग
जल गये कि राज्य पांडव का खड़ा हो भव्य,
सब तरह से दिख सके जो पूर्ण, अद्‌भुत नव्य।
(कर्ण : डॉ. अमरेन्द्र, सर्ग-१५)

दीप्त अगर होता तो जलता क्या खांडव का लोक,
धूम रहा है धरा-व्योम पर नागवंश का शोक
इस अधर्म का कौन लिखेगा हो तटस्थ इतिहास,
अग्निदेव का और पार्थ का हृदयहीन उपहास?
(कर्ण : डॉ. अमरेन्द्र, सर्ग-१६)

'कर्ण' महाकाव्य में दर्शन भी साकार हो उठा हैः-

इन्द्रियों की वासना की भीष्म उठती वायु,
लील लेती है क्षणों में नीति-नय की आयुय
घेरती है प्राण को बनकर तमिश्रा-जाल,
नाच उठता है मनुज पर कोटि फन का व्याल।
(कर्ण : डॉ. अमरेन्द्र, सर्ग-६)

लोकप्रिय कथ कर्ण पर द्रौपदी को भरी सभा में 'वेश्या' कहकर अभिहित करने का आरोप लगाती हैं जो स्वयंवर में पांचाली द्वारा कर्ण को 'सूतपुत्र' कहकर अपमानित करने का प्रत्युत्तर बताया गया है। इस कलंक को धोता है अंगदेश का लोकविश्वास, इस कलंक को नकारता है 'कर्ण' में कर्ण का आत्मचिंतनः—

'कितनी पीड़ा, कितनी लज्जा एक निमिष में छलकी,
झंकृत हो जाता तन-मन है, सुधि आते उस पल की;
लगता है, यह शक्ति व्यर्थ है, और कवच-कुंडल भी,
दे न सका उस भरी सभा में कृष्णा को संबल भी।

चेत हुआ था, तब कृष्णा को कृष्ण बचा ले निकले,
इसका कुछ अवकाश नहीं था, बुद्धि जरा भी संभले।
समझेगा यह कौन भला किस मन से गुजर रहा था,

लग कर उल्कापातों से पर्वत ही बिखर रहा था।

सब देंगे बस दोष मुझे ही न; को बिना विचारे,
टूटी होगी नाव भंवर में, नाविक खड़ा किनारे।
कुछ भी हो, इसका तो दुख है, चूक हुई है मुझसे
साथ धर्म का दे न सका, धरती शोभित है जिससे।

मैं अपने ही मान हानि में उलझा रहा समय पर,
रुककर पल भर सोच न पाया लज्जा, शील, विनय पर;
यह भी भार हृदय पर अपने लेकर अब जीना है,
माहुर है, प्राणों का घातक, जिसको ही पीना है।

कैसे-कैसे लांछन मुझ पर सभी लगाते आए,
जिससे कि यह कर्ण धरा पर पतित सदा कहलाए।
मैंने कहा कहाँ कृष्णा को, वह है रूपाजीवा
जो कहता तो इसी तरह क्या सीधी होती ग्रीवा!

वैसे भी यह ज्ञात नहीं है कुंजरपुरवासी को,
अंगदेश में छूट नहीं है शासित या शासी को;
रूपाजीवा को छोटी आँखों से कोई हेरे,
तब ऐसे में कृष्णा के हित बोल उठेंगे मेरे?

अंगदेश में गणिका भी पूजित है देवी-सी ही,
वारस्त्री के बिना अधूरी कथा अंगऋषि की ही।
लेकिन क्या इससे भी लेना, इससे अलग कहूँ मैं,
कृष्णा का दुख मेरे जैसा जिसमें सतत बहूँ मैं।

(कर्ण : डॉ. अमरेन्द्र सर्ग-१४)

यहाँ एक ओर कर्ण का द्यूतसभा में स्वर न उठाने की पीड़ा स्पष्ट है (कुछ भी हो, इसका तो दुख है, चूक हुई है मुझसे/साथ धर्म का दे न सका, धरती शोभित है जिससे) तो दूसरी ओर द्रौपदी को कर्ण द्वारा 'वेश्या' कहे जाने के आरोप का पुरजोर प्रतिकार भी है।

युद्धभूमि में कर्ण, कृष्ण से कहता है:-

केशव, क्या कृष्णा का मैं अपमान कभी कर सकता?
शील-रूप जिसका ही मेरे मन में रहा महकता!

कर्ण स्पष्ट कहता हैः-

जो अधर्म है, वह अधर्म है; धर्म नहीं हो सकता,
योगी, संन्यासी, साधू का कर्म नहीं हो सकता;
मेरा क्या, मैं तो अपना इतिहास लिए चलता हूँ,
सूर्यपुत्र मैं होकर भी उपहास लिए चलता हूँ।

(कर्ण : डॉ. अमरेन्द्र, सर्ग-२२)

'कर्ण' महाकाव्य में नारी-विमर्श को पर्याप्त जगह मिली है। कर्ण की पत्नियां-वृषाली और पुनरनवी-अब तक कर्ण-काव्यों में उपेक्षित पात्र रही हैं। इस महाकाव्य में कर्ण के साथ इन दोनों के संवाद पर कई सर्ग हैं फिर वह बातचीत आमने-सामने हो या पत्र के माध्यम से। 'उपेक्षिताओं' की स्थिति में यह परिवर्तन लखकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की आत्माओं को अपार संतोष हो रहा होगा।

कथा-संयोजन की मौलिकता के संग-संग भाव-संयोजन और विचार-संयोजन की मौलिकता एवं साथ ही अन्तर्पीड़ा की मार्मिक अभिव्यंजना डॉ. अमरेन्द्र की इस कृति को एक अलग दृष्टि से देखने के साथ-साथ पात्र 'कर्ण' को भी एक नई दृष्टि से देखने की अनिवार्यता स्थापित करती है।

संघर्षों, आक्षेपों को अनवरत झेलता, जीतकर भी हारता और हारकर भी जीतता महाभारत का यह अद्‌भुत पात्र निर्बाध अपने कर्म-पथ पर गतिमान रहा। यहीं निराला याद आते हैंः—

दे, मैं करूँ वरण,
जननि, दुख हरण पद-राग-रंजित मरण,
लांछना ईंधन, हृदय तले अनल,
भक्ति-नत-नयन मैं चलूँ अविरत सबल,
पार कर जीवन-प्रलोभन समुपकरण।

सूर्यनारायण और कृष्ण-नारायण के प्रति भक्ति-भाव से नयन नत किए हुए इस शीलवान विराट व्यक्तित्व के नाम यदि व्यास कृष्ण द्वैपायन ने जयसंहिता में एक पृथक् पर्व की ही योजना कर दी तो क्या आश्चर्य!

मौन रहने का पाप! पापजनित पश्चाताप का मौन! मौन की पीड़ा! भाग्य की क्रीड़ा! भाग्य से छत्तीस का आँकड़ा! शृंखला को तोड़ता! हृदय से हृदय को जोड़ता!

यह कर्ण की कथा है, इसमें अन्तर्मन की अनंत व्यथा है। व्यथा से काव्य की धारा भी फूटती है। यह धारा क्षीरसागर में जाकर मिलती है। क्षीरसागर का पायस उत्पीड़ित जन और क्लान्त मन हेतु पीयूष ही है।

यह कथा, कर्ण पर लगे लांछन, उसे मिले अभिशाप रह-रहकर हमसे पूछते रहेंगेः—

क्या सत्य ही, जय के लिए केवल नहीं बल चाहिए?
कुछ बुद्धि का भी घात, कुछ छल-छद्म-कौशल चाहिए?
(दिनकर : रश्मिरथी, सर्ग-६)

जैसे आलोकवरण करते हुए उस रश्मिरथी ने नारायण से पूछाः-

केशव, कभी दलित कुल में भी लेकर के अवतार
यह भी जानिए कुलिन कुलों का क्या है अत्याचार!
तब कहिएगा, क्या अधर्म था और धर्म क्या मेरा,
आँखों के आगे यह केशव कैसा घोर अंधेरा!
(कर्णःडॉ. अमरेन्द्र, सर्ग-२२)

और आरोपों का क्या है! आरोपों के निरूपण-निर्धारण की एक कसौटी यह भी रही है कि कौन किसके पक्ष में है? इतिहास विजेता ही लिखते-लिखवाते आए। पर पक्ष से क्या सचमुच इतना फर्क पड़ जाता है कि विपरीतता की स्थिति लाई जा सके? शायद नहीं। ऐसा होता तो श्रीराम के पक्ष में रहकर भी विभीषण 'घर के भेदी' के नाम से कुख्यात न हो गए होते। अस्तु! मूल तो कर्म है, शील है, जनकल्याण की भावना है, त्याग है।

तो डॉ. अमरेन्द्र कृत 'कर्ण' महाकाव्य अपनी परम्परा में श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य है और कदाचित् 'सम्पूर्ण' भी। इस कृति ने हिन्दी साहित्य में महाकाव्य के क्षेत्र में चले आ रहे एक दीर्घ रिक्तता की पूर्ति तो की ही है, साथ ही एक तरह से अप्रासंगिक हो चुके 'महाकाव्य' विधा की जीवन्तता एवं शक्तिमत्ता को भी पुनर्प्रतिष्ठित किया है। ■

'कर्ण' : प्रत्यंचा चढ़ा सूर्य

—डॉ. किशोर सिन्हा

'कर्ण पर कुछ कहने से पहले ये 'आत्म-निवेदन'

विचित्र बात है, अभी जब मैं डॉ. अमरेन्द्र के महाकाव्य 'कर्ण' से जुड़े प्रसंगों को लिख चुका हूं तो जैसे मुझे मुक्ति का अहसास हो रहा है; वरना तो सोते-जागते जैसे कर्ण मेरे सामने प्रत्यंचा ताने खड़ा रहता था- जरा भी कहीं रुका, तो लगा, कर्ण के बाण की नोक मेरी ओर है। उसके धनुष की टंकार हर समय मुझे अपने भीतर गूंजती महसूस होती रही है और मेरे चारों ओर से एक ही आवाज़ आती सुनाई दी है- कर्ण... कर्ण.... कर्ण...।

डॉ. अमरेन्द्र की इस कृति ने मुझे बहुत उद्वेलित किया है। ये पुस्तक उन्होंने मुझे १६ जून, २०१८ को दी थी। सच्चाई ये है कि उस समय मैंने सरसरी तौर पर देख कर इसे रख दिया था कि इसपर इत्मिनान से लिखूंगा। वो इत्मिनान आते-आते डेढ़ साल लग जायेगा, ये मैंने कभी नहीं सोचा था।

मैं आकाशवाणी के अपने संस्मरण लिखने के क्रम में एक लंबा काल-खंड तय कर जब अपने भागलपुर-प्रवास की कथा लिखने बैठा, तो वहां के कुछ साहित्यकारों की चर्चा भी करने की सोची। तब यही सोचा था कि संक्षेप में उनके लेखन पर बात कर मैं आगे बढ़ जाऊंगा। जब बात डॉ. अमरेन्द्र के लेखन पर आई तो जैसे किसी ने रास्ता रोक लिया। मुझे लगा कि मैं इस शख़्स के लेखन के बारे में क्या लिखूं। इनके लेखन का फलक इतना विशाल, विहंगम है कि उसमें मेरी कोई समाई नहीं हो सकती। बहुत प्रयास किया कि कुछ ज़रूरी बातों का उल्लेख कर मैं आगे निकल लूं, पर मेरे पांव जैसे किसी ने बांध रखे थे। मैं जितना छूटने का प्रयास करता, बंधन और मज़बूत होता जाता- कभी 'आलाप संलाप' और 'गेना' मेरा रास्ता रोकते तो कभी 'दीपक मेघ हिण्डोल'; उनकी पकड़ से छूटता तो 'अमृतदेश : अंगप्रदेश' और 'साधो सुर का देश' सामने आ खड़े होते।

सबसे अधिक परेशान किया 'कर्ण' ने। वो टस-से-मस नहीं हो रहा था। वो प्रत्यंचा-खिंची चेतना की तरह मेरे ऊपर सवार था। अंततः मुक्ति का कोई रास्ता न देख मैंने अपने पांव बांध लिये और 'कर्ण' को पढ़ने में जुट गया- एक बार, दो बार, तीन बार... और लिखने, दृश्टांत रखने के क्रम में बार-बार...। मेरे पास 'रश्मिरथी' पुस्तक थी, पर जो मांग कर ले गया, उसने लौटाया नहीं। इसलिये मैंने पुस्तक 'ऑन लाइन' मंगवाई। इसके अलावा केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की पुस्तक 'कर्ण' की याद आई, जो कहते हैं कि 'रश्मिरथी' से पहले लिखी गई थी,

पर छपी उसके बाद। कर्ण के ऊपर लिखने के लिये मुझे इस पुस्तक की ज़रूरत थी, पर ये कहीं उपलब्ध नहीं थी। तभी मुझे उनकी पुत्रवधू, डॉ. नम्रता की याद आई जिन्होंने, और पूरे परिवार ने अभी-अभी बहुत परिश्रम से, 'प्रभात' जी के तीन खंड-काव्यों की एक 'ज़िल्द' प्रकाशित कराई है।

मैंने जब उन्हें मंशा बताई तो वे बड़े संकोच से बोलीं कि ''प्रति तो है, पर एक ही है; और चूंकि आगे 'दूसरी ज़िल्द' प्रकाशित करानी है तो उसमें इसकी ज़रूरत पड़ेगी।'' मैंने कहा, ''कोई बात नहीं, आप जहां कहें, मैं आ जाता हूं और आवश्यक अंश के फ़ोटो खींच लूंगा... मेरा काम उतने-भर से हो जायेगा।'' उन्होंने कहा, ''नहीं, मैं ही आपके घर आ जाती हूं.... आप आराम से पुस्तक को देख लीजिये।''

फिर वो अपनी अस्वस्थता के बावजूद अपने बेटे, वंश प्रभात के साथ मेरे यहां आईं और मैंने उस पुस्तक को जल्दी-जल्दी पढ़कर उसके आवश्यक अंशों की तस्वीरें खींच कर रख लीं। मैंने इस प्रसंग का उल्लेख यहां इसलिये किया कि दुनिया में साहित्य लिखने वाले तो हज़ारों-लाखों मिल जायेंगे, पर साहित्य जीने वाले कम ही मिलते हैं। हमेशा जो रचा जाता है, वही साहित्य नहीं होता, न ही लेखक एकमात्र उसका निमित्त; उसे प्राणपण से संजों कर रखने और उसके दीर्घजीवी होने की कामना करने वाला भी रचना के उतना ही निमित्त होता है- और डॉ. नम्रता उनमें से एक हैं, इसलिये उनके प्रति आभार।

अब मुझे ये भी ध्यान आ रहा है कि मैं पिछले पांच-छः दिनों से घर से बाहर नहीं निकला हूं; इन दिनों न खाने की सुध रही है, न किसी और चीज़ की; कई बार तो सोते-सोते कुछ पंक्तियां दिमाग़ में घूमने लगी हैं तो रातों में उठ-उठ कर भी लिखा है। ऐसा मेरे साथ अक्सर होता है; अगर तुरत लिख नहीं लिया तो पक्का है कि सुबह कुछ याद नहीं आयेगा। इसलिये आजकल एक छोटा डिजिटल रिकॉर्डर रखा हुआ है। रात में जो भी मन में आता है, उसे आंख बंद किये-किये बोल के रिकॉर्ड कर लेता हूं। ये आधुनिक तकनीक की देन है। मैंने इसे 'एक्सप्लोर' से ज़्यादा 'एक्सप्लॉयट' किया है। अब कागज़ और कलम से यदा-कदा का नाता रह गया है। उसका स्थान 'लैपटॉप' ने ले लिया है। सीधे उसी पर लिखता हूं। इसमें काफ़ी सुविधा है। पांडुलिपि को लिख कर 'टाइप' कराने की ज़रूरत नहीं होती। एक बार में ही मूल पांडुलिपि तैयार हो जाती है; श्रम और साधन की बचत अलग से। इसमें सबसे बड़ा लाभ ये है कि आप किसी भी 'पैराग्राफ़' को अपनी सुविधा से आगे-पीछे, ऊपर-नीचे कर सकते हैं; साथ-साथ कभी भी संशोधन; और अगर आपकी टाइपिंग अच्छी है तो आपको पांडुलिपि में

झांकने की भी ज़रूरत नहीं होगी।

XXX

डॉ. अमरेन्द्र की सम्पूर्ण साहित्य-यात्रा का एक बेहद महत्वपूर्ण पड़ाव सन् २०१८ में प्रकाशित प्रबंध-काव्य 'कर्ण' है। भारतीय पुराकथा में कृश्ण के बाद, कर्ण ही ऐसा चरित्र है, जिसे लेकर आज तक हिन्दी ही नहीं, तमाम भारतीय भाशाओं- यहां तक की अंग्रेज़ी, रूसी और स्पेनिश-जैसी विदेशी भाशाओं में भी, रचनायें हुई हैं। निस्संदेह, विभिन्न रचनाकारों के समक्ष कर्ण के चरित्र का आधार, महाभारत ही रहा है; किन्तु वेदव्यास-रचित महाभारत के बाद में किये अनेक भाश्य भी मिलते हैं, जिनमें इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भाश्यकार द्वारा कर्ण या अन्य चरित्रों के प्रति मोहग्रस्त हो या उससे प्रभावित हो, कोई अतिरेकपूर्ण व्यंजना न की गई हो। दूसरे, भाश्य के अलावा अनेक साहित्यकारों ने कर्ण के जीवन को लेकर उपन्यास, काव्य-कथायें, मुक्तक—यहां तक कि 'कर्ण की जीवनी' तक लिख डाली है। भले ही इन सारी पुस्तकों का उपजीव्य 'महाभारत' रहा हो, पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि लेखक ने अपनी-अपनी श्रद्धा अथवा अश्रद्धा (?) के अनुरूप ही कर्ण के चरित्र को गढ़ा होगा और तदनुसार वास्तविकताओं के साथ-साथ निस्संदेह कल्पना का आश्रय भी लिया ही होगा।

'महाभारत' (व्यास जी ने अपने द्वारा रचित ग्रंथ को 'भारत' नाम दिया था।) के रचयिता वेद व्यास ने सर्वप्रथम अपने पुत्र, शुकदेव जी को इसका पारायण कराया; तत्पश्चात् अपने अन्य शिष्यों—वैशम्पायन, पैल, जैमिनी, असित-देवल आदि को। शुकदेव जी से इसका पाठ गंधर्वों, यक्षों और राक्षसों तक गया। इसी प्रकार देवर्षि नारद ने देवताओं को, असित-देवल ने पितरों को और वैशम्पायन ने मनुष्यों को इसका प्रवचन दिया। इसके बाद प्राचीन वाङमय की यदि हम बात करें तो 'शतपथ ब्राह्मण' (११०० ईसा पूर्व) तथा 'छांदोग्य उपनिषद्' (१००० ईसा पूर्व) में महाभारत के पात्रों का उल्लेख मिलता है। पाणिनी के 'अष्टाध्यायी' (६००-४०० ईसा पूर्व) में तो 'महाभारत' तथा 'भारत'—दोनों नामों का उल्लेख मिलता है।

जहां तक साहित्य-रचना का संबंध है, महाभारत के किसी पात्र को लेकर सर्वप्रथम भास ने नाटक लिखा- 'कर्णभारम्'। संभवतः ये 'महाभारत' के किसी चरित्र को लेकर लिखी गई—विशेषकर कर्ण को लेकर लिखी गई- पहली नाट्यकृति है। हिन्दी में तो महाभारत के पात्र साहित्यकारों के मुख्य उपजीव्य बने ही रहे- विशेषकर काव्य-साहित्य में—और निस्संदेह उन पात्रों में कर्ण का चरित्र सर्वाधिक प्रिय और चुनौतीपूर्ण रहा। रामधारी सिंह दिनकर की 'रश्मिरथी' और

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' के 'कर्ण' काव्य को ख़ूब ख्याति मिली। इसके अलावा शिवाजी सावंत लिखित मराठी उपन्यास 'मृत्युंजय' भी कर्ण के चरित्र पर आधारित प्रसिद्ध और पुरस्कृत उपन्यास है, जिसकी पर्याप्त चर्चा हुई।

डॉ. अमरेन्द्र का 'कर्ण' महाकाव्य इसी परंपरा की कड़ी के रूप में समादृत होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इस काव्य में भी अनेक स्थानों पर, मूल 'महाभारत' से अलग हटकर, कई मौलिक उद्‌भावनायें देखने को मिलती हैं। सबसे पहले तो इसके सर्गों में ही मौलिकता है। इस काव्य में कुल तेईस सर्ग रखे गये हैं, जिन्हें कवि द्वारा 'पर्व' कहा गया है। हालांकि 'महाभारत' में कुल मिलाकर अठारह 'पर्व' ही हैं और मुझे लगता है कि कुछ 'पर्वों' का समाहार काव्य के दूसरे 'पर्वों' में किया जा सकता था; यथा—'भंवर पर्व' का 'प्रज्ञा' में; 'प्रमदवन' का ''प्रबोध' में; 'स्वप्न' का 'प्रतिज्ञा' में; 'वृष' का 'आवर्त्त' में और 'गिरिडीह' का 'प्रत्यूष' में। इस प्रकार 'महाभारत' की भांति इसमें भी अठारह 'पर्व' हो जाते। पर, जैसा कि कवि को मौलिक और प्रयोगवादी बने रहने में अधिक रुचि रही है, इसलिये मुझे लगता है सर्गों के नामकरण में भी उनके द्वारा 'महाभारत' से इतर नवीन और मौलिक उद्‌भावनायें की गईं। इस मौलिकता का दर्शन इस काव्य के प्रथम सर्ग- 'जनुष् पर्व' के नाम से ही हो जाता है, जहां 'जनु'—जन्म से 'जनुष्' शब्द का आशय लिया गया है।

कुन्ती नवजात कर्ण को मंजूषा में रखकर नदी की धार पर, उछलती-बलखाती लहरों के हवाले कर तो आयी है, पर उसके जीवन की चिंता भी उसे सता रही है, इसलिये उसे देखने के लिये उसने अपने प्रहरी को भेजा, जो आकुल कुन्ती को आकर कर्ण को अज्ञात पुरुष द्वारा लहरों से निकालने तक की पूरी कथा सुनाता है—

''भोर की बेला भले वह, दिन लगा था,
नींद से जैसे अचानक मैं जगा था!
उस पुरुष के वाम में ही संगिनी थी,
अप्सरा ही सामने; अर्द्धांगिनी थी...?''

इस सूचना से कुन्ती के हृदय को जैसे अवलंब मिल गया था, उसके चित्त को शांति मिल गई थी। वह आभार-रत थी उस दंपत्ति के लिये, जिसने कर्ण को संभाला था। पर अन्दर से अपने किये पर उसे क्लेश भी हो रहा था। उस क्षण उसकी अनुभूति में सूरज देवता की वाणी जैसे प्रकम्पित होने लगी—

''दुख नहीं करना पृथा अपने किये पर,
कुछ नहीं इस्थिर यहां, सब भाव गत्वर;

कर्ण दोनों के प्रणय का पुण्य फल है,
पंक के ऊपर खिला उज्ज्वल कमल है।''

यहां से लेकर कर्ण के महाप्रस्थान तक की कथा इस प्रबन्ध काव्य में अनुस्यूत है। महाभारतकार ने कर्ण को बावजूद उसकी शूर-वीरता और दानशीलता के, प्रायः दुष्ट, परित्यक्त, त्याज्य और निकृष्ट ही बताया है। संभवतः उसका मूल कारण उसका दुर्योधन-जैसे पतित और दुष्ट का साथ देना रहा हो। पर 'कर्ण' काव्य में ऐसा नहीं है। यहां कर्ण पांडवों का प्रबल विरोधी और दुर्योधन के प्रति क्यों निश्ठावान् है, इसका वो तर्कसंगत उत्तर देता है। कथा उस समय की है जब पांडवों को छल से वरणावत् के मेले में भेजने के बहाने लाख के घर में ठहराया जाता है और फिर उसमें आग लगाकर उन्हें जला कर मारने का प्रयास किया जाता है। पांडवों को इस षड्यंत्र का पता चल जाता है और वे एक गुप्त मार्ग से निकलकर महर्षि वेदव्यास की सलाह पर एकचक्रा नगरी में साधु-वेश बनाकर रहने लगते हैं।

उन्हीं दिनों पांचाल-नरेश की कन्या द्रौपदी के स्वयंवर की तैयारियां हो रही थीं। पांडव भी इसमें भाग लेना चाह रहे थे पर समस्या ये थी कि माता कुन्ती से कैसे कहें। कुन्ती ने उनकी इस दुविधा को भांप कर उनसे स्वयं पांचाल चलने के लिये कहा और वे वहां पहुंचकर स्वयंवर वाले दिन राजसभा में जा पहुंचे। जब प्रतियोगिता में सारे शूर-वीर एक-एक कर असफल हो गये तो कर्ण की बारी आई। उसने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ानी शुरू ही की थी कि धनुष का डंडा उसके हाथ से छूट गया और उसके मुंह पर ज़ोर से लगा। ऐसा क्यों हुआ, इसका जवाब महाभारत में नहीं, 'कर्ण' में मिलता है—

''मैं जब उठा लक्ष्य वेधने कृष्णा बढ़ी उठाये हाथ,
'अरे, सुत से कैसे होगा मेरा आजीवन का साथ।
छूट गया था धनुष हाथ से लक्ष्य साधना कोसों दूर,
स्वप्न सजाये जो आया था, टूट गिरा वह चकनाचूर।
समझ नहीं पाया मैं कुछ भी आखिर हेय बना क्यों सूत?
लेकिन देर लगी न मुझको, समझ गया था मैं अकूत।''

कर्ण को वहां उपस्थित अन्य राजाओं के सम्मुख अपनी असफलता से भी अधिक कष्ट पांचाली की दृष्टि में ख़ुद के प्रति उपेक्षा देख कर हुआ; पर इसके अलावा और भी बहुत कुछ था जो कांटे की तरह उसके हृदय में चुभा हुआ था—

''कृपा, द्रोण आंखों में जो झलका था वह पांडव का मोह,
गुरु की मुझपर क्रोध-घृणा वह, कहां भूलता मैं, ओह !

और कृष्ण की भेदभरी वह मानसरोवर की मुसकान,
चाहूं सब कुछ भूल चलूं, पर वहीं लौट जाता है ध्यान।
भीष्म पितामह की आंखों में मेरे लिये घृणा का भाव,
और विदुर क्या कम रखते हैं, मुझसे दूरी, भेद, दुराव ?

असल में, पुराकथाओं की एक विशेषता ये होती है कि वहां कोई भी घटना या क्रिया बिना शापों या वरदानों के सम्पन्न नहीं होती। महाभारत भी इससे अछूता नहीं है। कर्ण का जीवन और मृत्यु भी, किसी-न-किसी शाप या वरदान से बंधी हुई है। लेकिन महाभारत का कर्ण अपने लिये किसी प्रकार की करुणा नहीं जगा पाता, जबकि 'कर्ण' काव्य का नायक कर्ण मानवीय करुणा से ओतप्रोत है; क्योंकि पांडवों के विरोध में खड़ा रहने के बावजूद वह पांडवों के हित की ही कामना करता है—

"मैं ही कहां चाहता हूं यह, पांडव के हित का अवसान,
लेकिन जहां टिका था मेरा, वहीं टिका है अब भी ध्यान।"

दुर्योधन ने छल से पांडवों को रहने के लिये खांडव-जैसा बीहड़ वन दिलवाया। पर कर्ण को प्रसन्नता है कि इससे पांडवों को दर-दर भटकने से मुक्ति मिली है; विशेषकर कुन्ती और द्रौपदी को—

"किसी से कम नहीं संतोष है राधेय के मन में,
सुयोधन को मनाया, तो कहीं राजी हुआ है वह;
मिली है पांडवों को मुक्ति अब वनवास के दुख से,
खुले सीपी के मुंह में स्वातिरस जैसे चुआ है अब।"

"भटकती थी वनों में द्रौपदी-कुन्ती उठाये दुख,
मिलेगी अब दुखों से मुक्ति, वह वन-वन भटकने से;
दिखेगा नील नभ का रूप अब तक जो छुपा सबसे,
खुलेंगे इन्द्रधनु के रंग सातो, मेघ छटने से।"

पर वह ये भी नहीं चाहता कि उनके जीवन में ऐसा कष्ट दुबारा आये—

"लेकिन यह अनुनय है मेरा, लुंठित न हो पाये,
पांडव की जननी न फिर से वन का विपद उठाये!
झेल चुकी है बहुत दुखों को एक अकेली नारी,
क्या समझेगा राजभोग से लिपटा जो संसारी।"

''पांडव की माता गंगा-सी मन से मुझे लगी है,
अंगभूमि से बहकर जो हस्तिनापुर में उतरी है।
सुधि उसकी आते ही मेरा मन चानन बन जाता,
वही मेघवन, ज्येष्ठ-गौड़, मंद्राचल मुझे बुलाता।''

पर दूसरे ही क्षण वो वन में रहने वाले नागों और वनवासियों की चिन्ता भी करने लगता है कि यदि खांडव वन को साफ करने के लिये पांडवों ने इसमें आग लगाई तो इनका क्या होगा! दरअसल यहां कवि ने खांडव वन और उसे जलाने को, आधुनिक समय की ज्वलंत समस्या के प्रतीकात्मक बिम्ब के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। आज बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें बनाने के लिये वनों का विनाश किया जा रहा है; राजमार्ग और मेट्रो का निर्माण करने के लिये जंगल काटे जा रहे हैं, जिससे वहां सदियों से रहते आये वनवासियों को विस्थापित होना पड़ रहा है। इतना ही नहीं, वन्य-प्रदेशों में बढ़ती आबादी के कारण वन्य-पशु भी विचलित होकर शहर की राह पकड़ ले रहे हैं। कर्ण द्वारा व्यक्त उसकी चिंताओं के बहाने आज की भयावह समस्या की ओर ईशारा किया गया है–

''वनों को पूजते जो और वन ही घर-बिछौना है,
कुसुम के देश के ये नील श्यामल आदिवासी हैं;
कभी समझा न खांडव वन को भूमि यह पराई है,
भले मंदार-वन से ये यहां आये प्रवासी हैं।''

उसी खांडव विपिन में आग की बारिश करेंगे ये,
जला जो वन, कहां जायेंगे ये जीवन-सुरक्षा में।
कहां जायेंगे, क्या होगा बेचारे नागवंशी का ?
सभी जल जायेंगे, मर जायेंगे अपनी मुमुक्षा में।''

प्रकृति जो निर्व्याज-भाव से हम मनुष्यों को जीवन देती है और हमीं उसे नष्ट करने पर आमादा हैं; काव्य में अभिव्यक्त ये चिन्ता पाठकों को अनेक स्तरों पर छूती है–

''जो विनाश करता है वन के भोले जीव-मनुज का,
धरती क्या, नभ का भी कोई हो सकता है उसका ?
वसुन्धरा पर बिखरा वन-वैभव देवों का वर है,
कुंज धरा का, आत्मज्योति है ऋषियों का यह घर है।''

ये चिन्ता कर्ण को धनुष उठाने को प्रेरित करती है, पर अगले ही क्षण उसे अपने कर्तव्य का स्मरण हो आता है–

''यहां चम्पा में मेरा तन, वहां है हस्तिपुर में मन,
न जाने कौन सा संकट उठाये पंख आ जाये,
सुयोधन साथ में रहना उचित है, छोड़ चम्पा को,
वही तो है मनुज जो धर्म संकट में बचा जाये।''

''क्षमा हे अंगमाता, दो विदा, कर्तव्य करने को,
मुकुट के मान रखने में, संवरने या बिखरने को;
नहीं मैं छोड़ सकता बन्धु-बान्धव यूं हहरने को,
यहां तैयार है जब शीश मेरा ही उतरने को।''

लेकिन होनी को तो कोई नहीं जानता। पांडवों को तेरह वर्षों का वन-गमन मिलता है तो विरोधी होने के बावजूद, कर्ण का हृदय इस अन्याय को देख विचलित हो उठता है–

''कहोगे तुम 'मिला वन पांडवों को, न्याय है क्या ?
अगर न हाय है यह, तो कहो फिर हाय है क्या ?
मुझे भी दुख बहुत है पांडवों के वनगमन का,
सभी ढंग से व्यवस्थित राज के ऐसे पतन का।

उठाती द्रौपदी होगी बहुत ही कष्ट वन में,
कहीं वह टूटती होगी बहुत अपने यतन में,
कभी घनघोर वर्षा, तेज आंधी, डर निशा का,
विपद का अंत भी है क्या मनुज पर उस कशा का ?''

इतना ही नहीं द्रौपदी को लेकर कर्ण की चिन्ता वर्तमान युगबोध से जुड़कर, आज की नारी की स्थिति को विमर्श में लाकर खड़ा कर देती है–

''वहां धन-धान्य ही क्या, नारी-रक्षा भी असंभव,
व्यसन तो सिद्ध होता है हलाहल, घोर आसव;
विकट यह रोग है जिसको लगा छुटता नहीं है,
जमा तो जम गया गिरि-सा ही, फिर उठता नहीं है।''

''सिंहासन की रक्षा में हो जहां नारी का मोल,
जो विष का है, होगा कैसे वह अमृत का घोल !
धरती की शोभा, ममता का, करुणा का शृंगार,
धर्मराज के आगे ही कीचक का अत्याचार।''

''नारी की इज्जत जाए तो जाए, पर न राज,
मुकुटों की छीना-झपटी में सिकुड़ी-सहमी लाज।
छत्रधारी को ज्ञात सभी कुछ, फिर भी उसका रक्ष,
दंड हाथ में लिये हुए लेता अनीति का पक्ष।''

''किसी लोभ या भय से जो नारी का करे न मान,
वह कैसे हो सकता उसका स्वामी या भगवान् ?''

ये राजधर्म और सत्ता-सिंहासन का विषय है कि सब सुखी रहें, कमज़ोरों पर अत्याचार न हो, सबको समान न्याय मिले। आज की प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था की ये प्रमुख शर्तें हैं। कर्ण की वास्तविक चिंता इन प्रजातांत्रिक मूल्यों के टूटने-बिखरने को लेकर भी है कि यदि ऐसा होता है तो सिंहासन हिलने में भी देर नहीं लगती—

''राज्य हितों में भोले जन का हित कुचला जो जाये,
राजसिंहासन सम्राटों का भला ठहर कब पाये ?
और नीति जब यही राज की, सीमा बढ़े, बढ़े धन,
ज्वालाओं के बीच भले ही जलते रहें अकिंचन।''

कर्ण को ज्ञात है कि दुर्योधन के लिये सत्ता सर्वोपरि है और उसे पाने के लिये वह किसी भी सीमा तक जा सकता है। इसलिये वो दुर्योधन को भी सावधान करता है कि ग़लत उपायों से प्राप्त की गई सत्ता सिर्फ़ आतंक और विनाश को जन्म दे सकती है, इसलिये सत्ताधीशों को अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखना होगा—

''सच में जब सत्ता आती है लोभी, क्रूर करों में,
क्षय विनाश का छा जाता है भय-आतंक नरों में;
तब नारी की शील-प्रतिष्ठा ख़तरे में हो जाती,
हर क्षण एक भयावह चिंता उसको बहुत डराती।''

''उस मदांध ढोंगी शासक को कौन सहन कर पाये,
जो समाज पर भूत-प्रेत की छाया-सा मंडराये।
मित्र ! युधिष्ठिर-इच्छाओं पर बांध लगाना होगा,
भोगों के करका घन पर अब बाण चढ़ाना होगा।''

'कर्ण' काव्य का 'प्रज्ञा पर्व' एक विषेष खंड है जो महाभारत की मूल

कथा से थोड़ा हटकर है। इस खंड में आई कथा, महाभारत के साथ-साथ अनेक प्रबंध- रचनाओं का मुख्य आधार बनी है। ये कथा है कर्ण का परशुराम से अपना परिचय छिपा कर शिक्षा प्राप्त करना और भेद खुलने पर परशुराम द्वारा कर्ण को श्राप दिया जाना। निस्संदेह इस श्राप की बहुत बड़ी भूमिका थी, जिसके कारण कर्ण अंत समय में अपना बचाव नहीं कर पाया; क्योंकि श्राप के कारण वह गुरु द्वारा प्रदत्त सारी शिक्षा भूल चुका था।

आश्चर्यजनक रूप से इस सर्ग में कवि ने कर्ण की पहचान छिपाने का कोई प्रयास नहीं किया। एक तो इसमें अधिरथ को अंग-प्रदेश का नृप बताया गया है, जबकि वह सारथी-मात्र था। दूसरे, अधिरथ ने भी कर्ण का परिचय देते हुए उसे क्षत्रिय ही कहा—

''वेदों का ही नहीं, अस्त्र का मेरा सुत हो ज्ञाता,
निज भविष्य और बाहु-भाग्य का अब से बने विधाता!
क्षत्रिय है तो क्षात्र-धर्म भी इसमें दिखे अनल-सा,
दान-दया के साथ-साथ ही हो शरदेन्दु विमल-सा।''

इसी प्रकार परशुराम भी उसे 'क्षत्रिय-पूत' कहकर संबोधित करते हैं—

''इसी परशु का भय दिखलाकर बल का शमन किया है,
ज्ञान और भय दोनों से धरती को त्राण दिया है।'
फिर कहते हैं 'कर्ण एक तुम क्षत्रिय पूत अमल हो,
और विप्र के श्रेष्ठ गुणों से उज्ज्वल-शुभ्र-धवल हो।''

यदि एक स्थान पर ऐसा होता तो मुझे लगता कवि की तरफ़ से तथ्यात्मक भूल हुई है; पर दो-दो स्थानों पर कर्ण को 'क्षत्रिय' घोषित करना, विशेषकर स्वयं परशुराम द्वारा—कवि से स्पष्टीकरण की अपेक्षा रखता है; जबकि महाभारत में ये स्थापित तथ्य है कि जिस क्षण परशुराम को ये ज्ञात हुआ कि कर्ण ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय है, उसी क्षण उन्होंने श्राप देकर कर्ण का त्याग कर दिया था। कीड़ा काटने वाले प्रसंग में भी परशुराम का वह क्रोध नहीं दिखता, जिसके लिये वे प्रसिद्ध थे, बल्कि उनके क्रोध की अग्नि यहां तरल और शीतल हो गई है—

''गुरु की पीठ लहू से लथपथ थी, जंघा भी मेरी,
उतरी थी आंखों में मेरी कैसी रात घनेरी;
चमक रहे थे नेत्र उधर खिलते पलाश-से, गुरु के,
हर लेने को प्राण तुरत ही छुटे पाश-से, गुरु के।''

''छू कर मुझको निकल गया था; जैसे, यम ही औचक,

नदी, दिशायें, पर्वत, वन, नभ सब के सब थे भौचक;
उतर गये गुरु की आंखों में फिर तो मेघ सजल थे,
रुके हुए पलकों के कोरों पर कितने ढलमल थे।''

अंत में परशुराम कर्ण को आशीर्वाद-सहित विदा करते हैं और उस समय उनके द्वारा कर्ण को दिया गया श्राप, श्राप की जगह, अत्यंत कोमल, शीतल, स्निग्ध आचमन जान पड़ता है–

''देव-आचरण से ही होगा और प्रखर यह सिद्ध,
और नहीं तो लौट आयेगा मुझसे हुआ समिद्ध;
कर्ण, आज से लोक-हितों में विचरो, जागे सोए,
मुझसे प्राप्त शक्ति से कोई देव-वंश न रोए।''

महाभारतकालीन समाज मूलतः वर्ण-वर्गाधारित था। क्षत्रिय थे तो वे साम्राज्य-लिप्सा में आपस में लड़ते रहते थे। रही-सही कसर उनके घोर दुश्मन, परशुराम-जैसे ब्राह्मण योद्धा पूरी कर देते थे। दूसरी ओर वनों-उपत्यकाओं, पर्वतों-कंदराओं में रहने वाले आदिवासियों के साथ-साथ, पिछड़ी हुई जनजातियों तथा विकसित समाज में त्याज्य समझी जाने वाली अनेक प्रजातियों का अस्तित्व था। तब के सभ्य और विकसित समाज ने उनकी कोई परवाह नहीं की। इसके उलट उस समाज ने उनके ऊपर सदैव अमानुशिक अत्याचार और जुल्म किये। यही कारण है कि कर्ण बार-बार खांडव वन में नागवंशियों को जला कर मार डालने के लिये अर्जुन को दोशी ठहराता है; यहां तक कि स्वप्न में भी उसे दीनहीनों का आर्तनाद सुनाई देता है–

''कर्ण ने देखा खड़ा अर्जुन लिये गांडीव,
दूर तक जलता विपिन में मर रहे हैं जीव;
नागवंशी नारी-नर का हो रहा है शोर,
कर्ण ने पकड़ा विजय को देख उसकी डोर।''

ऐसे निर्दोशों के अपमान और अत्याचार के विरूद्ध कर्ण बार-बार अपनी आवाज़ उठाता है–

''तेजहीन होकर जीना भी क्या जीना है,
कालकूट को यह तो जीते जी पीना है।
प्राणहीन हूंगा लेकिन प्राणों में हूंगा,
दीन-हीन को नई प्रेरणा से भर दूंगा।''

उस काल में इस प्रकार के संघर्ष आम तौर से होते रहते थे। यही कारण है कि इस प्रकार की जातियों और वंशियों को अपने अधीन रखने के उद्देश्य से,

क्षत्रियों-ब्राह्मणों ने उनसे वैवाहिक संबंध बनाये। इसीलिये द्रौपदी के होते हुए भी युधिष्ठिर ने देविका को, भीम ने वनवासी हिडिंबा और बलंधरा को, अर्जुन ने सुभद्रा, चित्रांगदा और आदिवासी समाज की कन्या, उलुपी को, नकुल ने करेणुमती को और सहदेव ने विजया को अपनी पत्नी बनाया।

जो ये कहते हैं कि महाभारत-काल का समाज वर्ग-वर्ण विहीन था, वो पूरी तरह सत्य प्रतीत नहीं होता। वो समाज वैसा दिखता अवश्य था, पर था नहीं। वास्तव में, तब का पूरा समाज नीति और न्याय से च्यूत और साम्राज्य-विस्तार की घोर लिप्सा में रत था, जो बल-प्रयोग के बिना संभव नहीं था; और जहां वो बल-प्रयोग में सफल नहीं होता था, वहां छल से काम लेता था।

कहा जाता है कि कौरव का पक्ष अनीति-अन्याय, छल-प्रपंच, ईर्ष्या-द्वेश पर आश्रित था; पर उसी पक्ष में नीति और न्याय के—भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य—जैसे पक्षधर भी खड़े थे, जिन्होंने कभी अनीति-अन्याय के विरूद्ध आवाज़ नहीं उठाई, भले ही वो किसी विवशता के कारण हो।

पांडवों के पक्ष में तो स्वयं लीलाधारी कृष्ण खड़े थे, फिर भी क्या छल-प्रपंच नहीं हुए; बल्कि कौरव-पक्ष से कहीं अधिक ही हुए- और लगभग इन सभी के जनक कृष्ण ही रहे- जरासंध का वध, नियमों के विपरीत दुर्योधन की जंघा पर गदा-प्रहार, 'अश्वत्थामा हतो हतः' के छल द्वारा द्रोणाचार्य की हत्या, शिखंडी की आड़ लेकर भीष्म के ऊपर शरों की वर्षा- जैसे न जाने कितने प्रसंग हैं, जो पांडव-पक्ष की छल-कथा के गवाह हैं। ऐसे ही छल-छद्म का चरम कर्ण के वध के समय दिखाई देता है।

इन सब महारथियों में कर्ण ही एकमात्र ऐसा था, जिससे तीनों लोकों में कोई भी ऐसा नहीं था, जो इससे जीत सकता था। इसलिये सर्वाधिक छल-प्रपंच भी कर्ण के साथ ही हुए। पहले अर्जुन-पिता इन्द्र ने कर्ण से उसका रक्षक-जन्मजात कवच-कुंडल मांग लिया और पश्चाताप-बोध से जो 'शक्ति' अस्त्र दिया भी, वो एक बार ही प्रहार करने में सक्षम था। इसके पश्चात् कुन्ती ने उससे पांडवों का वध नहीं करने का वचन प्राप्त कर लिया; भीष्म ने उसे युद्ध से दूर रखने के लिये उसे 'अर्धरथी' कह दिया, जिससे खिन्न होकर उसने प्रतिज्ञा कर ली कि जबतक भीष्म युद्ध में रहेंगे, वो इसमें भाग नहीं लेगा।

इससे पूर्व भी जब हस्तिनापुर के राजकुमारों की शस्त्र-परीक्षा में अपने शौर्य-प्रदर्शन और अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध की इच्छा लेकर कर्ण पहुंचा तो भीम ने उसकी खिल्ली उड़ाते हुए कहा था कि ''सारथी के बेटे, धनुष छोड़कर हाथ में चाबुक लो, वही तुम्हें शोभा देगा। तुम भला कब से अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध करने के

योग्य हो गये।''

इस प्रकार बार-बार कर्ण को लांछित-अपमानित किया गया तथा उसके शौर्य को क्षीण-कमज़ोर करने के सारे उपाय किये गये, जिसमें उसके सारथी के रूप में शल्य का होना एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण था। यदि कोई चोर नहीं है और बार-बार उसे 'चोर' कहा जाये तो उसका मन खिन्न होगा ही। सारथी का काम सर्वाधिक विश्वास का होता है; रथ की और एक प्रकार से युद्ध की भी-दिशा, वही तय करता है। एक कुशल सारथी संकट में प्राणों का रक्षक भी सिद्ध हो सकता है, पर वही सारथी यदि योद्धा की वीरता पर बार-बार उंगली उठाये, उसे भला-बुरा कहे, उसका ध्यान-भंग करने की चेष्टा करे तो योद्धा के चेतन-अचेतन मन पर इसका नकारात्मक असर पड़ना स्वाभाविक है। शल्य ने कर्ण के सारथी के रूप में रहते हुए उसके मनो-मस्तिष्क पर इस प्रकार का नकारात्मक प्रभाव डालने का प्रयास किया जिससे उसके तप-तेज और शौर्य का क्षय हुआ। स्वयं कर्ण ने शल्य से युधिष्ठिर को कहते सुना–

''रुका नहीं जो युद्ध कहीं, बस इतना करिए,
तात, कर्ण का बनें सारथी; मेरी सुनिए,
और सारथी बन कर ही अपनी बातों से,
उसके मन को बेधे रहिये आघातों से।

''अपमानित हो हृदय कर्ण का विचलित होगा,
रण में अस्त्रकला विद्या से वंचित होगा;
समरभूमि में छिन जायेगा उसका लाघव,
और विजय पाना तब उस पर कहां असंभव ?''

'कर्ण' काव्य की ये विशिष्टता है कि कर्ण के मन की सारी कड़वाहटें, कलात्मक भाषा का संस्पर्श पाकर उदात्त बन गई हैं। वो ईर्ष्या और अहंकार की क्षुद्रता से ऊपर उठकर सूर्य की-सी शुभ्र लालिमा से अपने चरित्र का एक नया इतिहास लिखता है–

''धर्मराज का धर्म वहां पर टिका हुआ है,
न्याय-नीति का पुण्य जहां पर झुका हुआ है।
धर्मराज को ज्ञात नहीं, क्या मैं हूं ? रवि हूं,
परशुराम के विजय धनुष से निकला पवि हूं।''

इतिहास, जो उसके बारे में औरों ने दर्शाया है, वो उसके चरित्र का अंश नहीं है, इसलिये उसे स्वीकार्य भी नहीं है–

''इतने-इतने लोगों की हत्यायें, जो निर्दोश,
सजा रखे हैं तीरों से मैंने तरकश का कोश।
क्षमा चाहता हूं अम्बे मैं, लगी अगर हो चोट,
मैं अर्जुन-सा नहीं पालता मन में कोई खोट।''

इस काव्य में कर्ण के माध्यम से आधुनिक जीवन के प्रश्नों का भी चिंतन किया गया है। इसमें कर्ण एक ऐसे संवेदनशील योद्धा का मूर्त रूप है जो आत्मग्लानि के अतिरेक में कई घटनाओं के लिये स्वयं को उत्तरदायी मानता है; इस प्रकार ये वैयक्तिकता से अलग हटकर समग्रता से जुड़ाव का काव्य बन जाता है–

''लगता है, यह शक्ति व्यर्थ है, और कवच-कुडल भी,
दे न सका उस भरी सभा में कृष्णा को संबल भी।

चेत हुआ था, तब कृष्णा को कृष्ण बचा ले निकले,
इसका कुछ अवकाश नहीं था, बुद्धि जरा भी संभले।''

''अगर बैर मुझको, पार्थ से था, जानते हो,
नहीं विध्वंस ऐसा लोक का मैं चाहता था;
कहीं कुछ चूक तो मुझसे हुई है, मानता हूं,
धरा नृपहीन होगी इस तरह से, क्या पता था।''

इस आत्मग्लानि में घटोत्कच और अभिमन्यु की मृत्यु पर करुणार्त होता है तो कुंती को लेकर आहत भी–

''मां, तुमने लहरों पर रखकर मुझे बनाया शक्त,
भाग्य, सिंहासन से भी मैं तो कोसों दूर विरक्त;
लौटूं मैं किसलिए भला फिर, व्यर्थ मुकुट और मान,
मां, मैंने दे दिया तुम्हें है अपने मन का दान।''

कर्ण सामाजिक चेतना का प्रतीक है; क्योंकि उसके जीवन-दर्शन की जड़ें अतल गहराइयों में जमी हैं, जो परिस्थितियों की भयंकरता से भयभीत नहीं होता–

''क्या हुआ जो कवच-कुंडल से रहित हूं,
मैं अभी भी वह कि जिससे कांपता है काल;
हैं अभी भी मुट्ठी में सारी दिशाएं,
कांपते नरपति दिशा के, कांपते दिक्पाल।''

आज जबकि पूरे विश्व में चारों ओर शोशण, विशमता, अन्याय और अत्याचार व्याप्त है, कर्ण के माध्यम से आज के समाज के वैशम्य, विसंगति और भयानक विरूपता को उद्‌घाटित करते हुए व्यापक मानववाद की प्रतिष्ठा की गई है–

''केशव, जब तक श्रेष्ठ वंश का अहंकार जग ढोए,
जब तक दीन-दुखी का मन भी इस धरती पर रोए;
राज्य सुखों की ख़ातिर जब धरती के रोम जलेंगे,
वहीं-वहां पर एक कर्ण क्या, सौ-सौ कर्ण मिलेंगे।''

देखा जाये तो कर्ण एक त्रासदी चरित्र है। उसकी वज्र-समान इच्छा-शक्ति पर निरंतर प्रहार होते रहते हैं; उसे तथाकथित कुलीन-जनों की उपेक्षा, दुत्कार और तिरस्कार तक सहना पड़ता है; इसके बावजूद वो हारता नहीं, टूटता नहीं। इन परिस्थितियों में भी वो प्रकृति में, सृष्टि में डूबता है- डूबता है, क्योंकि उसे मानवीय सौन्दर्य को पहचानना है; जो एक देश की अखंडता और एकता के भीतर ही संभव है। इस तरह देखें तो एक प्रकार से कर्ण एक उदात्त की सृष्टि करता है–

''बराबर में विभाजित हों सभी सुख, दुख तलक भी,
सभी का देश भारत हो, न शासक और शासित;
नहीं वह मर सका है भाव मेरा आज तक भी,
नहीं मैं चाहता अपना ये भारत हो विभाजित।

हमारा पूर्व, पश्चिम, और उत्तर और दक्षिण
बने यह सिंधु-सा विस्तृत, कहीं पर रोक न हो;
हिमालय-सा उठा हो शीश, अम्बर की सतह तक,
कभी भी दीप्त इसके भाल पर कुछ शोक न हो।''

'कर्ण' काव्य डॉ. अमरेन्द्र के दीर्घ और तीक्ष्ण जीवनानुभवों का प्रतिफल है, रूपाकार है। जहां उनका चेतन-मन ऊपर धड़कता है वहीं भीतर अचेतन मन की छाया एक मूर्त जीवन रचती रहती है। उस जीवन में वही मन धड़कता है, ध धकता है खांडव-वन की तरह। इसलिये काव्य में खांडव-वन का रूपक बार-बार आता है और जिसके ब्याज से निर्बलों-बेबसों पर अत्याचार के विरूद्ध कर्ण का आक्रोश फूट-फूट पड़ता है–

''तो क्या साथ दिया न तब भी सुरपति ने ही आकर,
नागों को उस घोर विपद में, संकट में भी पाकर ?
यह तो मित्रता के संग छल है, गला दबाना नय का,

दोशी तब सुरपति भी होंगे, इस विनाश, इस क्षय का।''

अकेलापन और उसमें किसी अपने जैसे की तलाश, डॉ. अमरेन्द्र में है– निराला में भी थी। कर्ण का पूरा प्रयास भी इसे ही लेकर है, पर उसकी तलाश की विवशता ये है कि वो परिणति तक नहीं पहुंचती। सचेतन मन उसे दुर्योधन के पास ले जाता है और अचेतन संज्ञा उसे विवेक के मार्ग से लुंठित होने से रोकती है–

''मित्र, मुझे प्रस्तुत ही समझो, पीछे नहीं हटूंगा,
जो सौगंध अभी लेता हूं, कभी नहीं विसरूंगा।
मुझको अगर डिगाना चाहे नर क्या नारायण भी,
संभव नहीं, भले छिड़ जाये महाकाल का रण भी।

लेकिन यह अनुनय है मेरा, लुंठित न हो पाए,
पांडव की जननी न फिर से वन का विपद उठाए।''

असल में, कर्ण के चरित्र का सबसे बड़ा अन्तर्विरोध भी यही है कि वो सोचता है कि यदि द्रोण पांडवों को द्रुपद से जीता राज्य दे देते तो युद्ध की नौबत ही नहीं आती; पर वो ये नहीं जानता कि अपने बाहुबल पर भरोसा करने वाले पांडव क्या दान-स्वरूप दिया ये राज्य स्वीकार करते ?

''जो पांडव पर दया द्रोण को बढ़ कौरव से,
दे देते क्यों नहीं, लिया जो राज्य द्रुपद से ?''

– कि कर्ण को लगता है, दुर्योधन की पांडवों के प्रति ईर्ष्या-द्वेष की भावना व्यर्थ है, राजपाट ही सबकुछ नहीं होता; पर वो ये नहीं जानता कि वो इस राजनीति की बिसात पर दुर्योधन का एक मोहरा-मात्र है–

''तब भी अगर सुयोधन की मति बनी हुई है भ्रांत,
रश्मि-वलय को समझ रहा है चक्कर खाता ध्वांत;

तो समझो कुरुवंश-श्रेष्ठ का भाग्य नहीं अनुकूल,
करता रहा सुयोधन ही क्यों बार-बार है भूल।''

– कि उसे ज्ञात है कि युधिष्ठिर ने उसके तेजोबल को कम करने और उसे लक्ष्य से विचलित करने के उद्देश्य से ही शल्य को उसका सारथी बना कर भेजा है; पर इसके बावजूद वो इस षड्यंत्र को गले लगाने को तैयार है–

''अपशब्दों का अनल दीन को भले जलाये,
उसको क्या, जो हंसता इसको गले लगाये''

अपमान, आत्मग्लानि, पश्चाताप, त्रास और इन सबके साथ चल रहे स्वप्न-दुःस्वप्न; फिर चरम मृत्यु से साक्षात्कार, अन्तर की टूटन, व्यक्तित्व का विघटन- ये सब कर्ण देखता है, अनुभव करता है–

''मैं अपने ही मान-हानि में उलझा रहा समय पर,
रुककर पल भर सोच न पाया लज्जा, शील, विनय पर;
यह भी भार हृदय पर अपने लेकर अब जीना है,
माहुर है प्राणों का घातक, जिसको ही पीना है।''

''कैसे-कैसे लांक्षण मुझ पर सभी लगाते आए,
जिससे कि यह कर्ण धरा पर पतित सदा कहलाये।''

ये स्वप्न-दुःस्वप्न डॉ. अमरेन्द्र के, ख़ुद के भी हैं। कर्ण के ऊपर के घात-प्रतिघातों, उसकी उपेक्षा और अपमान, उसकी अन्तर्वेदना, उसकी कमज़ोरियां, उसका पश्चाताप, उसका दुख, उसकी करुणा- सब उसी प्रकार, जिस प्रकार निराला में। कर्ण के मन का जो अंधेरा है, वही निराला के राम का 'नैशान्धकार' है; जो राम को चारों ओर से व्याप्त किए है। आशा के तारे कहीं हैं भी, तो बहुत दूर...

''दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल,
फैला पृष्ठ पर बाहुओं पर वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकती दूर ताराएं ज्यों हों कहीं पार...''

(राम की शक्तिपूजा)

एक अंधेरा है जो कर्ण के भीतर है, उसके अभ्यंतर में खरगोश की तरह दुबका हुआ–

''किया आदेश था उसने दुशासन को अहितकर,
सिंहासन के सभी नय धर्म को पल में ही चित कर;
कभी क्या क्षम्य होगा, जो किया है घोर पातक?
मनुजता, नीति, नय पर वज्र-सा यह अस्त्र घातक।''

कर्ण के अंदर का अंधेरा अधिक प्रकाशित है; क्योंकि वो उसके ख़ुद का बनाया हुआ है–अनीति-अन्याय को देख कर भी चुप रह जाने का अंधेरा, सच को जानकर भी इसका समर्थन न कर पाने की विवशता का अंधेरा। ये कर्ण का ही मन है जो धिक्कारता है–

''मुझे तो दुख इसी का, तुम वहां पर थे उपस्थित,

निरख कर क्यों नहीं तुम हो गये थे कर्ण मूर्च्छित!
रहे कैसे वहां पर तुम बहुत निष्कंप, अविचल,
उठी थी क्यों नहीं मन में तुम्हारे शांत हलचल!''

पर एक अंधेरा उसके बाहर भी है—नीति-अनीति के द्वन्द्व का, राजनीतिक छल-छद्म का; ये स्वार्थी अंधेरा अधिक विचलित करता है—

''मरना तो मरना ही सबको, सबको प्राण गंवाना,
उसी मृत्यु की ख़ातिर क्यों ये छल का ताना-बाना !
केशव, सब पर काल खड़ा है, अलग-अलग नामों से,
अभिधा ही है सत्य यहां पर सौ-सौ उपमाओं से।''

कर्ण के सामने जो अंधकार है, उसमें दूर कहीं कोई रौशनी भी टिमटिमा नहीं रही; पर वो उस अंधेरे को पार करना चाहता है; विजय-लक्ष्य से नहीं; बल्कि विनीत-भाव से—

''यह अगति है, मोह में बंध कर तड़पना,
अंधकारा को मुझे होगा छड़पना;
अन्यथा मुझको यही अब लील लेगा,
मोहगंगा है तो क्या सरसिज खिलेगा ?''

लेकिन 'आलाप संलाप' के कवि का अंधेरा अधिक घना और डरावना है—

''आदिम युग से ऊपर उठने की कोशिश क्या करते
अंधकार में और भी नीचे देखा तुम्हें उतरते
ठेठी का उद्धार करोगे, क्या अपनी बलि देकर
व्यंग्य और उपहास के सिवा क्या जाओगे लेकर
नये समर में नया शस्त्र ही हितकर होता, सच है
देख तुम्हारा ढंग समर का, जो भी दिखा, अकच है।''

दिनकर के 'रश्मिरथी' में ये अंधेरा और भी अधिक प्रकाशित है-

''थी विश्रुत यह बात, कर्ण गुणवान् और ज्ञानी हैं,
दीनों के अवलम्ब, जगत् के सर्वश्रेष्ठ दानी हैं।
जाकर उनसे कहो, पड़ी जिस पर जैसी विपदा हो,
गो, धरती, गज, वाजि मांग लों, जो जितना भी चाहो।''
(चतुर्थ सर्ग)

डॉ. अमरेन्द्र के खंड-काव्य में कर्ण का चरित्र आत्मविजय, आत्मनियंत्रण और आत्मानुभूति का आख्यान है। दुर्बलतायें अनेक हैं उसमें, पर वो उनसे लड़ता

है, जूझता है और विजय-पथ पर आगे बढ़ जाता है- यहां तक कि अपनी प्रेयसी-पत्नी वृषाली के साथ के गहनतम क्षण भी उसे रोक नहीं पाते–

''पर तुम्हीं से कुछ छुपाना क्या, सुनो सब बात,
मित्र मेरा अब सुयोधन चाहता है साथ;
साथ वह भी इसलिये, श्यामा हो उनकी नार,
क्या नहीं नर से कराता भोग का संसार।''

''चाहता कब हूं वृषाली, छोड़ जाऊं अंग,
मेघवन में यह तुम्हारा कल्पतरु-सा संग!
पर विवश हूं, आ रही है जैसे कोई हांक,
मैं खड़ा कर्तव्य-पथ पर मन लिये दो फांक।''

दरअसल, डॉ. अमरेन्द्र कर्ण के संघर्ष को चेतना के स्तर पर लाकर मनुष्य की जिस मुक्ति की कामना करते हैं, वो मात्र सांस्कृतिक नहीं है, बल्कि ये उदात्त चेतना से युक्त एक विराट् पुरुष की सायुज्य-मुक्ति भी है–

''केशव, कभी दलित कुल में भी लेकर के अवतार,
यह भी जानिए कुलिन कुलों का क्या है अत्याचार!
तब कहियेगा, क्या अधर्म था और धर्म क्या मेरा,
आंखों के आगे यह केशव कैसा घोर अंधेरा।''

''कर्ण का यह शीश-छेदन; प्रश्न का क्या अंत है ?
वन-जनों का जो विरोधी, क्या वही कुलवंत है ?''

''जन्म फिर होता अगर हो, देश में हो कामना,
कर्ण दीनों के दलित के भेष में हो, कामना !''

'कर्ण' पर आश्रित किसी भी रचना पर जब भी बात होगी तो स्वाभाविक तौर पर उसकी तुलना रामधारी सिंह दिनकर की कृति 'रश्मिरथी' और केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' के खंड काव्य- 'कर्ण' से अवश्य की जायेगी; क्योंकि 'रश्मिरथी' और 'प्रभात' के खंड काव्य- 'कर्ण'- दोनों में, कर्ण के चरित्र और व्यक्तित्व के अनेक जाने-अनजाने पक्षों को उद्घाटित किया गया है; दोनों काव्यों की कविता के शिल्प में भी एक अद्भुत, मौलिक संयोजन और प्रयोगधर्मिता देखने को मिलती है।

'रश्मिरथी' में भी कर्ण को महाभारतीय कथानक से अलग नैतिक मूल्यों

के पक्ष में तर्क और प्रश्न करते दिखाया गया है। इसमें सामाजिक और पारिवारिक संबंधों की पड़ताल नये दृष्टिकोण से और उसकी व्याख्या आधुनिक संदर्भों में की गई है। इसका संदेश यही है कि जन्म वैध या अवैध नहीं होता, न ही उससे कर्म की वैधता पर प्रश्नचिह्न लगाया जा सकता है। यानी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके वंश से नहीं, उसके कर्मों, उसके आचरण से होना चाहिए। 'रश्मिरथी' का कर्ण कहता है–

''मैं उनका आदर्श, कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे,
पूछेगा जग, किन्तु, पिता का नाम न बोल सकेंगे,
जिनका निखिल विश्व में कोई कहीं न अपना होगा,
मन में लिये उमंग जिन्हें चिर-काल कलपना होगा।''

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की रचना 'कर्ण' में यही पीड़ा कुछ दूसरे ढंग से अभिव्यक्त हुई है–

''मत कहो मुझे कौन्तेय
बड़ी दया होगी, रहने दो
मुझे नीच राधेय।''

'रश्मिरथी' में कथा के केन्द्र में कर्ण अवश्य है, पर उसके शिशु-जीवन, उसके कैशोर्य से जुड़ी घटनायें या पात्र अनुपस्थित हैं। वो जहां आते भी हैं तो पूर्वदीप्ति के बहाने या 'परोक्ष कथन' के माध्यम से। इस काव्य के 'प्रथम सर्ग' में कर्ण का पदार्पण ही सीधे रंगभूमि में राजकुमारों के शस्त्र-ज्ञान की परीक्षा और दुर्योधन द्वारा, कर्ण को 'अंग प्रदेश' का राजा बनाने से होता है।

जबकि 'कर्ण' काव्य आरम्भ से मानवीय संवेदना को पकड़ कर चलता है; जो न सिर्फ़ एक विवश माता कुन्ती की व्यथा, चिन्ता को उभारने में सफल होता है, बल्कि उसने गौण पात्र- 'प्रहरी' के मुख से कर्ण के सकुशल, सूत अधिरथ और उसकी पत्नी- राधा के हाथों में पहुंचने का आंखों देखा विवरण सुनवाकर, अपने कल्पना-लाघव से उस गौण चरित्र को भी महत्वपूर्ण बना दिया है।

'रश्मिरथी' के दूसरे सर्ग में परशुराम की कुटिया दिखती है, जहां कर्ण की जंघा पर सिर रख मुनि सोए हैं। उस समय कर्ण गुरु के प्रति मोहासक्त हो रहा है। उनकी कृशकाय देह को देख उसे ग्लानि हो रही है कि उसे ज्ञानदान देने के कारण उनका ये हाल हुआ है, तब भी उसपर वे दिन-रात अपनी ममता लुटाते रहते हैं-

''वृद्ध देह, तप से कृश काया, उसपर आयुध-संचालन,
हाय, पड़ा श्रम-भार देव पर असमय यह मेरे कारण।

किन्तु, वृद्ध होने पर भी अंगों में है क्षमता कितनी,
और रात-दिन मुझपर दिखलाते रहते ममता कितनी।''

जबकि ये विवरण 'कर्ण' काव्य के चौथे सर्ग के 'चन्द्रातप पर्व' में आता है, जहां कर्ण को परशुराम के पास छोड़ने के पहले उसके पालक अधिरथ और राधा की चिन्तायें, उनका अन्तर्द्वन्द्व- सब, उनके बीच के लम्बे विमर्श में प्रकट होता है। ये स्वाभाविक भी है और ये संदर्भ आज के मानव-मन के सरोकारों से जुड़ता भी है। आज क्या माता-पिता अपने बच्चों के भविष्य की गति तय करने की दृष्टि से आपस में परामर्श नहीं करते; उनके लिये घर की ज़िम्मेदारी संभालना ज़रूरी है या शिक्षा प्राप्त करना; उनकी 'प्रायोरिटी' क्या है आदि-आदि। इस दृष्टि से अधिरथ के मन की चिंता काल-समय की सीमा पार कर आज के सरोकार से जुड़ जाती है–

''कर्ण का कुछ आचरण मुझको डराता,
एक भय उठता है, मन को बेध जाता;
बात करता वृक्ष से यूं, ज्यों सगा है,
इस समय में रोग यह कैसा जगा है!''

ये चिंता एक पिता की चिंता-मात्र नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से कर्ण की उस समय की मनःस्थिति का भी पता चलता है। इसीलिये वो चाहता है कि कर्ण राजगद्दी संभाले और प्रजा को देखे। लेकिन उसकी पत्नी, राधा की सोच उससे अलग है। उसका मानना है कि ज्ञान के बिना राजकाज विष-समान होता है, ज्ञान के बिना भाग्य भी साथ नहीं देता–

''ज्ञान से वंचित सिंहासन मात्र आसव,
शोर को बनना अभी है भोर-कलरव;
ज्ञान है तो शक्ति का साम्राज्य विस्तृत,
उस किरण, आलोक के बिन भाग्य विरमित।''

'रश्मिरथी' का 'तृतीय सर्ग', पांडवों के अज्ञातवास के पूर्ण होने, कृष्ण का समाधान के लिये दुर्याधन के पास जाने और दुर्याधन द्वारा उन्हें बंदी बनाने की चेष्टा करने के पश्चात् अपना विराट् स्वरूप दिखलाने तथा उसके बाद लौटते हुए कर्ण को अपने रथ पर चढ़ाकर उसे समझाने तक की कथा कहता है। कर्ण अपनी माता कुंती से विक्षुब्ध है कि उसने क्यों उसके जन्म के साथ उसका तिरस्कार कर दिया, इसलिये वो उसे नागिन, सर्पिणी, पत्थर-तक कह डालता है–

''सेवती मास दस तक जिसको, पालती उदर में रख जिसको,
जीवन का अंश खिलाती है, अन्तर का रुधिर पिलाती है;

आती फिर उसको फेंक कहीं, नागिन होगी, वह नारी नहीं।''

शास्त्रों में कहा गया है- ''मदीयोयं त्यागः समुचित्मिदं नो तव शिवे कुपुत्रो जायते क्वचिदपि कुमाता न भवति''- अर्थात् जिस कारण मेरा त्याग किया है, वह मां के स्वभाव की दृष्टि से उचित नहीं है; क्योंकि संसार में कुपुत्र हो सकता है, पर माता कुमाता नहीं हो सकती। माता पुत्र के साथ चाहे जैसा भी व्यवहार करे, पुत्र दुखी हो सकता है, कुंठित भी; पर तब भी वो अपनी माता के लिये ऐसे अपशब्दों का इस्तेमाल नहीं करेगा, जैसा कर्ण ने यहां किया है। इसलिये यहां ये चित्रण थोड़ा अस्वाभाविक और अतार्किक लगता है।

'कर्ण' में ऐसा नहीं है। यहां कर्ण माता की उपेक्षा से दुखी है, पर माता के प्रति विनत भी; कुंती के यूं त्यागने पर क्षोभ तो है, पर उसके प्रति कटुता का लेशमात्र भाव नहीं; बल्कि कुंती द्वारा उसे लहरों पर बहा देने को भी अपने लिये वरदान ही मानता है। कर्ण के चरित्र का ये अत्यंत उदात्त स्वर है, जो न तो महाभारत में मिलता है, न ही बाद की किसी रचना में—

''मां, तुमने लहरों पर रखकर मुझे बनाया शक्त,
भाग्य, सिंहासन से भी मैं तो कोसों दूर विरक्त;
लौटूं मैं किसलिये भला फिर, व्यर्थ मुकुट का मान,
मां, मैंने दे दिया तुम्हें है अपने मन का दान।''

तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो 'रश्मिरथी' में अनेक स्थलों पर कर्ण के चरित्र के अलावा अन्य चरित्रों के चित्रण का कोई बहुत-अधिक प्रयास नहीं किया गया है; जबकि 'कर्ण' में गौण पात्रों को भी तरज़ीह दी गई है- विशेषकर कर्ण की पत्नी वृषाली को। कर्ण की पत्नी के बारे में बहुत कम लिखा-सुना गया है और जहां उल्लेख हुआ भी है तो प्रसंग को पूरा करने के उद्देश्य-मात्र से। लेकिन 'कर्ण' काव्य में वो एकसाथ अनुरागमयी, उत्कंठित प्रेयसी; सांसारिक कामकाज से लेकर कूटनीतिक महत्व के विषयों पर संवाद करने वाली और पति का व्यथा-भाग बनने वाली अनुरक्ता पत्नी, पुत्रों के साथ किल्लोल करने वाली ममतामयी माता और पति की अनुपस्थिति में राजकाज संभालने वाली वीर नारी है। कर्ण-पत्नी, वृषाली का ऐसा चित्रण किसी साहित्य में विरल ही होगा।

हां, 'कर्ण' में दो स्थल ऐसे हैं, जो समग्र चित्रण की दृष्टि से अपेक्षाकृत कमज़ोर दिखाई देते हैं—एक, कुन्ती-कर्ण प्रसंग में, जहां 'रश्मिरथी' की कुन्ती की ममता, उसकी विवशता और वेदना चरम पर दिखाई देती है- ''कुरुकुल की नारी नहीं, कुमारी नारी—/वह दीन, हीन, असहाय, ग्लानि की मारी!/सिर उठा आज प्राणों में झांक रही है,/तुझ पर ममता के चुम्बन आंक रही है''; जबकि 'कर्ण' में

कुन्ती की वेदना मुखर नहीं हो पाती- ''पोंछ पृथा ने अपने आंसू स्वयं को लिया सम्हाल,/बोली इतना, ''सचमुच तुम ही लाल मेरे हो लाल...''।

दूसरे, युद्ध का दृष्य जहां-जहां आया है, 'रश्मिरथी' के वे स्थल, श्रव्य के स्थान पर 'दृष्य काव्य' का अनुपम उदाहरण बन गये हैं। नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों के संचालन के साथ, युद्ध की विभीषिका का अद्‌भुत दृष्य वहां उपस्थित है—''हेशा रथाश्व की, चक्र-रोर, दन्तावल का वृंहित अपार,/टंकार धनुर्गुण की भीषण, दुर्मद रणशूरों की पुकार/खलखला उठा ऊपर खगोल, कलमला उठा पृथ्वी का तन/सन-सन कर उड़ने लगे विशिख, झनझना उठीं असियां झनझन''; जबकि 'कर्ण' में युद्ध का दृष्य, व्यूह-रचना और आक्रमण के आह्‌वान तक सीमित है—''रणभेरी का नाद उठा, तो गूंजे गगन-दिशाएं/पर्वत-वृक्ष लगे; अभिनन्दन में ज्यों हाथ हिलाएं/एक दिव्य रथ वहीं खड़ा था, कर्ण तुरत चढ़ आया/धवल चंद्र-सा शंख उठाकर, घन-सा उसे बजाया।''

मुझे लगता है कि दिनकर की 'रश्मिरथी' और 'प्रभात' के 'कर्ण'—दोनों में संदेश, समग्रता से आरंभ होकर वैयक्तिकता तक जाता है; जबकि डॉ. अमरेन्द्र के 'कर्ण' की उन्मुखता, वैयक्तिक पहचान से ऊपर उठकर, सार्वभौम सत्य तक जाने की है, जो आज के वैश्विक परिदृष्य की दृष्टि से सामयिक, संगत और समीचीन भी है। 'प्रभात' का 'कर्ण' भी, 'रश्मिरथी' के कर्ण की भांति मर्यादा से, मूल्यों से कई बार च्यूत होता है—''दुःशासन मत ठहर वस्त्र हर ले कृष्णा के सारे/वह पुकार ले रो-रोकर चाहे वह जिसे पुकारे।'' (प्रभात का 'कर्ण') और 'रश्मिरथी' में, ''मर गई नहीं वह स्वयं, मार सुत को ही/जीना चाहा बन कठिन, क्रूर, निर्मोही/क्या कहूं देवी, मैं तो ठहरा अनचाहा/ पर तुमने मां का खूब चरित्र निबाहा''; जबकि डॉ. अमरेन्द्र का कर्ण अपनी मर्यादा से कभी स्खलित होता नहीं दिखाई देता।

हां, प्रभात जी के 'कर्ण' खंड-काव्य के दो दृष्य ऐसे हैं, जो 'रश्मिरथी' अथवा आलोच्य पुस्तक- दोनों में ही नहीं हैं; एक, द्यूत-क्रीड़ा और द्रौपदी का चीर-हरण तथा दूसरा, काव्य का अंत, जहां युधिष्ठिर युद्ध-समाप्ति के पश्चात् सगे-संबंधियों को जलदान करते हैं और कुन्ती उन्हें कर्ण के लिये स्मृति-तर्पन करने के लिये कहती हैं। वहीं पहली बार पता चलता है कि कर्ण युधिष्ठिर के अग्रज थे- ''मानव को मानव न मिल सका/धरती को धृति धीर/भूलेगा इतिहास भला/ कैसे यह गहरी पीर।'' ये दोनों दृष्य कर्ण के चरित्र के दृष्टिकोण से देखें तो उसमें कुछ जोड़ते प्रतीत नहीं होते; शायद इसीलिये 'रश्मिरथी' और 'कर्ण'- दोनों में इनका परहेज़ दिखाई देता है।

काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से देखें तो ये साफ़ पता चलता है कि 'कर्ण' की कथा-धारा में काफ़ी प्रवाह है, इसके काव्य-बिम्ब गत्यात्मक, चाक्षुश तथा लोकधर्मी हैं और डॉ. अमरेन्द्र ने पहले की अपनी रचनाओं में मिथक और लोककथात्मक प्रतीकों का धड़ल्ले से जो प्रयोग किया है, यहां वे उससे बचे रहे हैं।

डॉ. अमरेन्द्र शब्दों को, उनकी श्रुति और ध्वनि के साथ पकड़ते हैं, प्यार करते हैं। ये उनकी सांगीतिक और रंग-चेतना के कारण संभव हुआ है; क्योंकि वे संगीत-सुघड़ भी हैं और रेखाओं-रंगों से खेलने वाले भी। यही कारण है कि ध्वनि और नाद का वे अपना एक 'देसी सौन्दर्यशास्त्र' और ऐसा मुहावरा गढ़ने में क़ामयाब होते हैं, जो उन्हें आजकल के सपाट और एकरस कविता-समय से उन्हें बिल्कुल जुदा रखता है; उन्हें 'इमिटेट' करना आसान नहीं है।

बोल उट्ठी, तड़पना-छड़पना, अवसाद अनचोके विरह, झलकते लोर, जैसे चुआ है अब, हहरने को, केतकी गमगम, नाच रही है छमछम, आजा-बाजा-गाजा, अनचोके, रजकण, महमह-गमगम, औन-न-पौन, जल अचोके, उजड़ा-पुजड़ा-सा, तमतोम फेरा, टुकुर-टुकुर ताकेगी, अट्ठा-गोटी खेले आदि अनेक शब्द और शब्द-युग्म, कवि की भाषागत सर्जनात्मक क्षमता का परिचय देते हैं।

काव्य-सौन्दर्य में मिथक और लोकतत्वों का समावेश इस काव्य को वैदिक-पौराणिक देवकथाओं से अवश्य जोड़ता है; किन्तु इन प्रयोगों की प्रचुरता सामान्य पाठकों और सहृदयों को इन संदर्भों तक पहुंचाने में नाकाम रहती है; कारण कि महाभारत में एक-एक कथा की कई-कई अन्तर्कथायें-उपकथायें हैं, जो प्रायः बहुश्रुत नहीं हैं और पाठक बिना महाभारत पढ़े इन मिथकीय प्रतीकों और बिम्बों का अर्थ-संधान नहीं कर सकता; जैसे- श्वेतकी के यज्ञकुंडों, कंक, वृहन्नला, कीचक, सैरंध्री, ऋषि जह्नु, द्वैपायन की बात, शाप गौतम का, बर्बरीक, श्रवा, अलम्बुस, अश्वसेन की माता आदि मिथकीय संकेत, अलग से व्याख्या की मांग करते हैं।

फिर भी, सम्पूर्णता में देखा जाये तो 'कर्ण' प्रबंध-काव्य, युद्ध की विभीशिका, वन एवं पर्यावरण की समस्या, दीनों-दलितों का सम्मान, नारी विमर्श, सिंहासन और सत्ता की विसंगतियों आदि विषयों पर ढेर-सारे साामयिक और युगीन प्रश्न तो खड़े करता ही है; कर्ण की अन्तश्चेतना और अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से समस्याओं का तार्किक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करता है। इस रूप में, मुझे लगता है कि कर्ण के ऊपर अब तक लिखी गयी काव्य-रचनाओं के बीच डॉ. अमरेन्द्र का ये खंड-काव्य 'कर्ण', एक सुसंगत, सुगठित और सौन्दर्यात्मक काव्य-रचना के रूप में प्रतिष्ठ होगा। ■

चंचला पाठक दीदी के लिए चिट्ठी!

बड़की दीदी का परनाम रही....!

गरमी का हाल और चाल बताइए जिज्जी....! हियां तो चुनावी दंगल में बाहर निकलना दूभर है....! घर में रहने पर महिलाएं घेरे रहती हैं.....! सब हमसे एनर्जेटिक रहने का रहस्य पूछती हैं....! गृहस्थी मैनेज रखना सीखती हैं....! और खुश रहने की कुंजी मांगती हैं....! सबको पहले मौखिक सलाह देते थे.., इधर महीनों से सब कॉपी-पेन लेकर आती हैं....! उनके नोट्स और मेरे टिप्स ने सबको जीने का नया ढंग सिखा दिया है....! इन महिलाओं का एक वर्ग खुद को तराशता है और दूसरा वर्ग अपने बच्चों की अलग ढंग से परिवरिश हेतु सुझाव नोट करता है....! आपको पता है...दोनों ग्रुप की महिलाएं मुझे "वीमेन हेल्पलाइन" और "मम्मा खास" के नाम से ही सम्बोधित करती हैं.....!

दीदी..... इधर जनवरी से ही मेरी तबीयत अजीब है....! बहुत टेस्ट करवाए..... रिपोर्ट्स सामान्य है.....! खूब खाते-पीते भी हैं.....! फिर भी मांसपेशियों में अकड़न और उंगलियों के जोड़ों में दर्द बराबर बना रहता है....! इधर हिंदी के विलक्षण महाकाव्य "कर्ण" की समीक्षा समझने की कोशिश किए थे.....! संस्कृत साहित्य के रस-औचित्य-रीति-ध्वनि-वक्रोक्ति-अलंकार सम्प्रदाय के आधार पर इस काव्य को समझ लिए.....! फिर आचार्य शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी जी, रामविलास शर्मा जी, नामवर सिंह जी के मानकों पर भी कतिपय बिंदुओं को समझकर.... पाश्चात्य काव्यशास्त्रीय सिद्धांत भी समझने लगे थे.....! मानववाद का निकष है यह महाकाव्य.....!

दीदी.... असाध्य वीणा को याद किए तो जिंदगी समझ में आ गई..! हर कोई नहीं बजा पाता असाध्य वीणा..प्रियम्वद आकर साधते हैं..वीणा को..! याद करते हैं वह किरीट वृक्ष....हरा-भरा...फिर सूखा...फिर उससे बनी वीणा.... वीणा में कसे तार..... और इन्हीं तारों में निहित नाद-सौंदर्य की संभावनाएं.... जो

दिग्दिगन्त को झँकृत करने में समर्थ हैं....! तब बजती है वीणा प्रियम्वद से....! ऐसे ही यदि हम मनुष्यों को भी जीवन में अनहद नाद जगाना हो तो..... पहले आदि मनुष्य को सोचें..... तूफानों में गुफा में छिपा.... पेड़ पर चढ़ा हुआ..... आपदाओं में किसी तरह बचकर अग्नि को जानने वाला मनुष्य.... पहिया बनाकर जल्दी से आगे बढ़ने वाला मनुष्य.....खेती करके कुछ दिन के लिए एक जगह ठहर जाने वाला मनुष्य..... जीवन को सुविधा देते-देते..... मनुष्य को ही गुलाम बना डालने वाला मनुष्य..... मानव सभ्यता में जमीन को अपनी सम्पदा मानने वाला मनुष्य..... पानी के लिए लड़ने वाला मनुष्य.....! मौसम को बदलने की बुद्धि वाला मनुष्य..... सुविधाओं को बनाने वाले.... और सुविधाओं को खरीदने वाले मनुष्य..... सुविधाओं से परे रहकर भजन गाकर आनंदित होने वाले मनुष्य..... इन सभी की मनुष्यता सहेजकर नई पीढ़ी अपनी संभावनाओं से कम से कम अपना जीवन तो झँकृत कर ही सकती है..... न!

दीदी..... आप तो अंग्रेजी, संस्कृत, दर्शन की विदुषी हैं..... अर्नेस्ट हेमिंग्वे वाली कहानी बताइएगा.....! वही वाली "ए ओल्ड मैन इन द सी" वाली. ....! एक बुड्ढा..... सेंटियागो.... रोज समंदर किनारे मछली पकड़ने जाता है..... और एक भी मछली नहीं पकड़ पाता..... लोग उस पर हँसते हैं.....! ८४वीं बार जब वह मछली पकड़ने जाता है तब पहली बार उसे सफलता मिलती है.....! एक बड़ी शार्क फंसती है जाल में..! वह बड़ी मुश्किल से जाल किनारे ला पाता है.. तब तक छोटी मछलियां शार्क को खाती जाती हैं...! अंत में समंदर किनारे ही वह मर जाता है..! लोग...परिस्थितियां.... नियति....तबाह कर सकती है.... बर्बाद कर सकती है..... लेकिन पराजित नहीं कर सकती...! कर्ण को महाभारत में... रश्मिरथी में....राधेय में.... कर्णभार में लोगों (शल्य, इंद्र आदि) द्वारा तबाह करते हुए देखा जा सकता है.... जबकि डॉ. अमरेंद्र विरचित "कर्ण" में वह विजेता है जीवन की संग्राम यात्रा में....! होनी-अनहोनी का दायित्व स्वयं लेता है.... कर्ण. ....! विश्वसाहित्य पढ़ने का एक फायदा यह है कि भाषा-भौगोलिक स्थिति-काल कोई भी हो..... अंतर्मन की भीतरी परत एक ही है..... यही तो मानविकी का मर्म है न दीदी....! दीदी ई किताब मेरी यदि पूरी हो जाय तो समझिए दिमाग की कोख में जन्मी नव-सन्तति मिल जाएगी मुझे.....

तनी बीकानेरी भुजिया भेज दीजिएगा.....फर्स्ट फ्लाइट कोरियर से...! बाकी दो शूट और चार-पांच दुपट्टा भेज दीजिएगा..... एक लहरिया प्रिंट वाली साड़ी भी.....! दीदी जब हम सबेरे चूल्हा बारते हैं..... तभी इस दीर्घतमा जिंदगी को अग्निसूक्त का साक्षात्कार होता है....! चुरती हुई दाल और बलकते हुए भात

में सामवेद का गान सुनाई देता है.....! ब्राह्मी साग में अथर्ववेद का पृथिवीसूक्त दिखता है..... और गर्मी से बेहाल चींटियों की कतार में यजुर्वेद की ज्यामितीय दिखती है मुझे.....! और हाँ..... उ कितबिया भेजी नहीं आप.... हिंदी सिखाने वाली.....! तब भी हम सबको कुछ न कुछ सिखा ही ले जाते हैं....! आज बाहर गए थे दोपहर में..... तब बहुत हल्ला था बाहर..... राजनीति हमको खूब समझ आती है..... इसीलिए हम कभी शामिल नहीं होते इसमें.... लेकिन दीदी बहुत डाईन है.... आतंक मचा रखी है.....!

कम लिखे ढेर समझिएगा.....! मेरी बिटिया.... महीना भर से ऊपर हो गया अनाज नहीं खा रही है..... कोई टोटका बताइएगा..... जिससे हर गई भूख खुल जाए.....!

आशिर्बाद दीजिए..... कि अकिल काम करती रहे.....!

चिट्ठी का जवाब जरूर दीजिएगा.....

तोहार छोटकी बहिन....

डॉ. कल्पना दीक्षित

अनुभवों की आँच में पकी हुई रचना अपनी व्यापकता की परिधि में कितनी असीम हो सकती है, यह आपकी इस सॉनेट रचना में प्रकाशित हो रहा है । काया सत्तर वर्ष की हो सकती है, किन्तु रचना चिन्तन की प्रौढ़ता एवं परिक्वता की गवाही देती है ।

—डॉ.'विकल'

शत्रुसूदन श्रीवास्तव भइया के लिए चिट्ठी...

आदरणीय भइया.....!

सादर प्रणाम.....!

इधर बदरंग मौसम अपना प्रभाव पूरे देश में जमाए हुए है...! आबूधाबी में हवाऔर घाम का क्या मिजाज है? उस दिन आपने कविताकोश से "कर्ण" महाकाव्य का प्रथम सर्ग जो गाकर व्हाट्सएप पर भेजा था उसमें भावरस जीवन्त हो उठे थे। लेकिन वह तो पहला सर्ग ही अधूरा गाया था आपने....! तब से निरन्तर मैं प्रतीक्षा में हूँ..... कि आप नियमित थोड़ा-थोड़ा काव्यांश गाकर भेजते रहेंगे... लेकिन आप भी... विश्वसनीय नहीं रहे....! हम तो इधर अध्ययन के प्रसंग में ढपोर बन चुके हैं.... लक्ष्य को टालते जाना... और बहाने बनाए रखना.... यह दो गुण भउजी का हमारे अंदर समा चुका है....!

सच कहें भइया तो.... इतिहास-पुरुष-कवि-डॉ. अमरेंद्र ने मानवीयता की त्रासदी को विरचित कर दिया है। थोड़े से तथ्यों का पुलिंदा इतिहास बिनब्याही कुंती के अंतर्मन से अछूता ही रहा है। 'कुंती ने नवजात को धार में प्रवाहित कर दिया था' इसी ऐतिहासिक सूचना की छानबीन करते हुए डॉ. अमरेंद्र ने कुंती के जीवन के इस पक्ष का संरचनात्मक विश्लेषण समझने लगे। इतिहास के तिमिर में देखने में सामर्थ्यवान कवि ने 'कर्ण' महाकाव्य के पहले सर्ग में तीन दृश्य चित्रित किए हैं...! पहले दृश्य में अकेली कुंती अपनी भावविह्वलता में प्रकृति का आश्रय पाती हुई दिखती हैं। दूसरे दृश्य में प्रहरी और कुंती के मध्य की वार्ता है और तीसरे दृश्य में कुंती और सूर्य के मध्य की वार्ता अस्तित्व की सार्थकता को सिद्ध करती है। पहले प्रकृति का मूक संवाद है, फिर प्रहरी बोलता है और फिर सूर्य की आश्वस्ति है। आपको मेरी बात ठीक से नहीं समझ आ रही है न....! थोड़ा और विस्तृत समझाएं...? हम आपको बारीकी से समझाने की कोशिश करेंगे....बदले में आप हमें इस कृति को गाकर भेजेंगे...ठीक न...! तो सुनिए...मतलब पढ़िए.. ध्यान से....

पहले सर्ग की आरंभिक कथा में जीवन-निशा के बीच पृथा की चिंता चित्रित है। रात के गहरे अंधेरे में एक माँ चिंतित होकर जल रही है। पृथा नियति पर, सूर्य पर विश्वस्त तो है परंतु माँ तो माँ ही होती है। जहाँ अत्यधिक स्नेह हो वहाँ पाप की आशंका तो बनी रहती है। कुंती इसी भय से परेशान है। लोकमर्यादा के लिए नवजात शिशु को जल की धार पर पेटी में सुरक्षित समर्पित करने वाली अनब्याही माँ अपने मातृत्व को भी बखूबी निभाती है। यहाँ कवि की अंतर्दृष्टि में

इतिहास का अंधेरा रौशन हुआ है। गंगा की लहरों प्रवाहित शिशु की मंगलकामना करते हुए कुंती ने एक प्रहरी भेजा था, जिससे शिशु का कुशलक्षेम ज्ञात हो सके। प्रकृति की उपासिका कुंती आश्वस्त है कि शिशु को अदृष्ट का संरक्षण मिलेगा। इसी आश्वस्ति में ही मातृत्व दृढ़ हो जाता है। कुंती दोहरी भूमिका में सफल हो जाती है, तत्कालीन लोकमर्यादा की रक्षा करते हुए भी वह वह अपने शरीर के अंश को जीवन देती है। प्रहरी की प्रतीक्षा में एक-एक क्षण युग के समान महसूस होता है और एक-एक कण अवरोधक मर्यादा है।

लग रहा था एक युग-सा एक क्षण तक,
बन के पर्वत ही खड़ा हो, एक कण तक।

ऐसी विषम परिस्थिति में तमाम आशंकाओं में घिरी कुंती अनन्त आकाश में देखती है। मन की हालत का प्रतिबिंब अनन्त आकाश में खोजती कुंती को जैसे अप्रत्यक्ष धार में बहता शिशु ही प्रत्यक्ष दिग्दर्शित है। प्रकृति के सानिध्य में जीवन को दिशा मिलने लगती है। बादल, बिजली, तारक प्रतीक बन गए और कुंती मन की साधना में पुत्र को ही पाती गई। आकाश में किरणें लहरों की तरह उतराती हैं और नन्हें तारे को निहारती कुंती की आँखों पर अचानक काले मेघ का पर्दा पड़ जाता है। यहाँ कुंती की दो अवस्थाएं संयोजित है—पहली अवस्था में वह चिंतित है और दूसरी अवस्था में प्रकृति के सानिध्य में उसे परोक्ष का दर्शन होता है।

पहले सर्ग की दूसरी कथा में प्रहरी शुभ समाचार लेकर प्रफुल्लित मन से कुंती के समक्ष प्रस्तुत है। एक विजेता की भाँति प्रसन्न प्रहरी को देखकर ही कुंती आश्वस्त होती है। कवि ने व्यथा का रंग नीला बताया है—

देख कर जाती रही शंका पृथा की,
लीन होती नीलिमा नीली व्यथा की।

प्रहरी ने विपरीत परिस्थिति में कुशलता का दायित्व प्राकृतिक उपादानों को ही दिया। मनुष्य एक प्राकृतिक अवयव है, प्रकृति ही जीव को पोषित करती है और संरक्षित करती है। पहाड़ों और जंगलों से होकर तीव्र गति से बहती नदी में सुरक्षित काठ की पेटी बही जा रही है। प्रहरी इसी बहाव की गति से समानांतर घोड़े दौड़ाता जाता है। शिशु कर्ण के प्रति दायित्व निर्वहन करती एक माँ की बेबसी को महसूस किया है कवि ने.....! लाचारी बेपरवाह नहीं हो सकती अपितु अत्यधिक सजग हो जाती है। कुंती ने प्रहरी को जलधारा की निगरानी का दायित्व सौंपती कुंती... उसकी प्रतीक्षा में आशंकित होती सद्यःप्रसूता माँ... और लौट कर आए प्रहरी का वृतांत सुनती एक अबला...शक्ति का पुंज है। बहती

धार में बहता सन्दूक...और पवन के झोंके का संगीत.... शिशु को संभाले रहने का दायित्व प्रकृति ने भरपूर निभाया है यहाँ....! इतिहास की सूक्ष्मता का रहस्योद्‌घाटन कवि को पुरातात्त्विक बना देता है। घटनाओं का उत्खनन करके डॉ. अमरेंद्र इतिहास गढ़ दिए हैं। जीवन-युद्ध की भयावह रात्रि में पितृत्व का अमूर्त सामर्थ्य भी प्रभावी रहा है–

और संग-संग रात भर वह जो चला था, भोर होते व्योम से वह जा मिला था।

इसी अंधेरी रात को पार पाने में कवि ने प्रकृति का मोहक मानवीकरण कर दिया है–'थी उनींदी-सी हवा लेकिन जगी थी।' हवाओं की गति में भावों का अवलोकन कर लेना कवि को सिद्ध की श्रेणी में प्रतिष्ठापित करता है। इसी प्रसंग में रहस्यवाद भी नियोजित है, रहस्य का यह नियोजन अनायास ही छायावाद की स्मृति को जगा देता है– 'कौन था वह रात भर चलता रहा था?' इसी क्रम में प्रहरी कंचनदेश अंगप्रदेश की अनुपम छटा को रहस्यात्मक ढंग से वर्णित करने लगता है। शत्रुसूदन भइया ध्यान दीजिएगा.... प्रसंग के अधीन अंग प्रदेश की सौंदर्य-गाथा को प्रहरी कुंती से कहता है... लेकिन सत्य तो यह है कि अंगपुरुष. ... मतलब अंगपुत्र डॉ. अमरेंद्र स्वयं अपनी मातृभूमि के प्रहरी हैं और वे पाठकों से अपने देश के प्राकृतिक वैभव का बखान कर रहे हैं–'देश वह, वैकुंठ ही सचमुच धरा पर,' इसी तपस्वियों की तपोभूमि बताता हुआ प्रहरी चम्पा राज्य के किनारे पेटी के लग जाने की बात कह जाता है। अधिरथ गोद में शिशु को उठाते हैं.... अधिरथ ही मानवता के रक्षक सन्त हैं जो कवि की दृष्टि में श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न कुल-मर्यादा के पालक भी हैं। यहाँ कवि दृष्टि व्यापक हो उठी है, जिसमें कर्म से ही कुल का निर्धारण मान्य है। प्रहरी बताता है कि अधिरथ की पत्नी राधा अपने गोद में शिशु को लेकर अत्यधिक उल्लसित थी। अतः 'हो गया भवितव्य के दुख का निवारण।' सुरक्षित हाथों में शिशु का पहुंचना के एक माँ को तुष्टि तो देता है लेकिन एक बिनब्याही बाला लांछन का बोझ उठाए डगमगाती रहती है–'पीर ऐसी थी कि छाती फट गई थी।'

अब प्रथम सर्ग का तीसरा दृश्य उपस्थित होता है, जिसमें स्वयं रवि सम्भालते हैं कुंती को.....! डॉ. अमरेंद्र ने अतीव महत्त्वपूर्ण पाठ सिखा दिया है मानवीयता को.....! इतिहास की खोह में जाकर वर्तमान को दिशा देते हैं कवि महोदय....! सूर्य कहते हैं–

दुःख नहीं करना पृथा अपने किए पर,
कुछ नहीं इस्थिर यहाँ, सब भाव गत्वर।
कर्ण दोनों के प्रणय का पुण्य फल है,

पंक के ऊपर खिला उज्ज्वल कमल।।

सूर्य कुंती को अपने से ऊपर प्रतिष्ठापित करते हैं, कहते हैं कि शिशु की तेजस्विता का कारण माता पृथा द्वारा आकारित होना ही है.... यहीं सृजन की देवी प्रकृति पुरुष से श्रेष्ठ बन जाती है। सामाजिक वंचनाएँ ठहरती नहीं हैं, सामाजिक अस्वीकृतियों की मलीन धारा पर पवित्र पद्म-पुष्प है यह शिशु....! कुंती ने समग्र असह्य को अर्पित कर दिया होगा..... और शिशु के स्रष्टा बनने तक कि यात्रा पर आशीष लुटाने लगी होंगी.... न! कवि ने शिशु से विलग... परिस्थितियों के ताप में वात्सल्य सोख ली गई कुंती की प्रसन्नता को चित्रित करते हुए कहते हैं कि—'वृक्ष पर सूखी लता भीगी-सरस है।'

इतिहास की सार्थकता में ही सुरक्षित भविष्य की निर्मिति सम्भव है। डॉ. अमरेंद्र ने 'सार्वभौम शुभ' हेतु स्वान्तः सुखाय काव्य लिखा है। इतिहास के पट में जाकर सपाट प्रसंग में कवित्व-दृष्टि से अवलोकन में कवि कितना रोया होगा. ... न! सृजन पीड़ादायी होता है लेकिन यही पीड़ा आत्मिक तुष्टि भी देती है.... न!

ऐसा न समझिएगा कि हम कथा कहते-कहते... नेग का तगादा करना भूल जाएंगे.....! सावन की साड़ी.... मिठाई भिजवा दीजिएगा... दो-दो...! राखी का अलग और पंचमी का अलग.....! और सुनिए.... शत्रुसूदन भइया....! आपसे ही कह रहे हैं.... पूरा कर्ण काव्य गाकर भेजते रहिए.... भउजी को सामने बैठा करके गाएंगे तो उनकी अकिल में लगी पचीस साल पुरानी जंग छूट जाएगी... पक्का..! भउजी सस्ता कपड़ा न खरीद दे मेरे लिए...सचेत रहिएगा...उ कहती रहती है.... कि 'आपन बेटी भई... तव दादा कय बेटी भुलानी...!' भउजी को हिसाब न दीजिएगा..... डराइएगा नहीं... हम हैं...! कलकत्ता आइए जल्दी.... जामुन खूब पकी है आजकल.....! बड़हर भी पका है.....!

अपना ध्यान रखिएगा...भक्ति-भाव आयुवर्धक है....और हमारा नेग देते रहने से कुबेर-वृष्टि की संभावना प्रबल है...! भउजी से कहिए...कम सोया करे..... अलसाई पड़ी रहती है बिछउना पर सारा दिन...! ई सब आप ही बताए हैं तभी हम लिखे हैं....नहीं तो भउजाई लोग की निंदा हमें पसन्द नहीं एकदम. ...! ध्वनि दसों दिशाओं में गूंज उठें... यही अभिलाषा है....!

सपरिवार स्वस्थ, सानन्द ... इसी आकांक्षा के साथ---

आपकी ललचही बहन

डॉ. कल्पना दीक्षित

शशिरंजन शुक्ल भइया के लिए चिट्ठी.....

आदरणीय भइया....!

सादर प्रणाम...!

ई बताइए.... कि कहाँ-कहाँ घूम लिए छुट्टियों में आप...? आप तो गर्मियों में पर्यटन का आनन्द ले रहे हैं.... और हम तो बीमारियों की खातिरदारी में व्यस्त हैं.....! खैर...अभी लगभग बच्चे ठीक हैं... लेकिन आया बीमार है....! भइया घर-गृहस्थी के आश्रय में अध्ययन को द्वितीयक रखना ही पड़ता है.... न! बस, इसीलिए बहुत कुछ ठहर-सा गया है....!

भइया...! अब आप सजग हो जाइए... हम आपकी क्लास लगाने वाले हैं....! ई राहु का प्रकोप आपकी मती को कभी मुक्त चिंतन का अवसर ही नहीं देता... न! मतलब कर्ण-काव्य पढ़ते हुए आप कितने प्रश्नों से आक्रांत हुए थे... और राहु का ही माहात्म्य है कि डॉ. अमरेंद्र सर से जिज्ञासा-शमन में भी आप भयभीत रहे थे....! खैर... अब मैं आपको कर्ण महाकाव्य में निहित इतिहास की बारीकियों से बनने वाली भावी पीढ़ी की राह को दिखाऊँगी..... और हाँ, इसी अवबोधन में वर्तमान पीढ़ी भी मानसिक विस्तार को पा सकेगी.....!

कर्ण महाकाव्य के प्रथम सर्ग में मातृत्व के विविध रूप दर्शित हुए...! प्रहरी की प्रतीक्षा में कुंती की आकुलता.... मध्यरात्रि में आकाश को निहारती पृथा की विकलता..... प्राकृतिक संकेतों के माध्यम से आस बांधती सद्यःप्रसूता..... इसी बीच प्रहरी का आगमन..... प्रहरी द्वारा वृतांत का कथोपकथन.... परश्च पुत्र की सुरक्षा के प्रति आश्वस्त..... अपरिणीता माँ की आत्मग्लानि से पूर्व ही सूर्य का वाचिक सम्बल.... प्रथम सर्ग स्वयं में एक पूर्ण आख्यान बन गया है....! राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' सामाजिक विद्रुपताओं से खीझकर अस्तित्व पर ही प्रश्न लगाते हुए लिख जाते हैं कि–

"हाय, कर्ण, तू क्यों जन्मा था? जन्मा तो क्यों वीर हुआ?
कवच और कुण्डल-भूषित भी तेरा अधम शरीर हुआ।
(रश्मिरथी, द्वितीय सर्ग)

कवि-विवेक की परिधि विस्तारित होती रहती है। दिनकर से इतर राह धर कर आगे बढ़ते हुए कवि अमरेंद्र ने समाजवाद की मर्यादा में भी अस्तित्व की अपनी स्वतंत्र सार्थकता सिद्ध की है। समाज श्रेष्ठ मनुष्यों से ही बनता है....., समाज में गति बनी रहे... इस हेतु गुणी मनुष्य नए मानदंड गढ़ते रहते हैं..! इन्हीं बिंदुओं को मुखरित करने हेतु कवि अमरेंद्र को इतिहास के अतल में जो भावदृष्ट हुआ है...., उसमें सूर्य कुंती को समझाते हैं कि–

कर्ण दोनों के प्रणय का पुण्य फल है,
पंक के ऊपर खिला उज्ज्वल कमल है। (कर्ण, प्रथम सर्ग)

गुणों की अतिशयता में सामाजिक प्रतिबंध कीचड़ बन जाते हैं, अतः अस्तित्व को बनाए रखना..... और उन्नत दिशा में बढ़ाते जाना ही अस्तित्व की सार्थकता है।

खैर.... शशिरंजन भइया...! यह तो प्रथम सर्ग का मातृत्व निरूपण है, जिसमें किंचित् भी मलिनता नहीं है। अब देखिए.... पितृत्व के दायित्व के निर्वहन का भी डॉ. अमरेंद्र ने इतिहास के गह्वर में अवलोकन किया है। द्वितीय सर्ग.... जिसका नाम 'प्रारब्ध पर्व' है, में कर्ण की धाय-माँ राधा का चित्रण है। मातृत्व मात्र जन्म देने तक ही परिसीमित नहीं है...., मातृत्व एक भाव है, जो संरक्षण दे... पोषण दे.... उसमें मातृत्व की किंचित भी न्यूनता नहीं रह जाती। शिशु के रूप में कर्ण को पाकर राधा वात्सल्य की सरिता में इतराती हुई बहती जाती है। एक अदृष्ट भय है... कि कहीं यह शिशु विलग न हो जाए...! सहसा दिव्य पुरुष के रूप में सूर्य को देखकर राधा विचलित होने लगती है.... उसे भय है कि उस पर कहीं बच्चा चुराने का अभियोग न लगा दिया जाए। सूर्य के समक्ष वह स्वीकारती है कि–

"जो किया, जो कुछ हुआ, शिशुहीन होने से सभी तो
कुछ नहीं बासी हुआ सुख विगत का वह अभी तो।
बस यही अपराध मेरा, पाप मेरा, भूल मेरी,
देवता हे रश्मियों के, रश्मियों के देह धारी !"

अब देखिए... शशिरंजन भइया... सूर्यदेव को पितृत्व के दायित्व का निर्वहन करना अभीष्ट था.... अतएव सर्वप्रथम वे राधा को आश्वस्त करते है, और सहर्ष स्वीकारते हैं कि कर्ण उनका पुत्र है। लोक की प्रतिष्ठा का मान रखते

हुए सूर्य और कुंती अपने दायित्वों का भार किस प्रकार वहन करते हैं..... यह राह डॉ. अमरेंद्र की कवित्व-शक्ति में ही सम्भावित है। विरोधाभास की गति का स्वतंत्र विस्तार किंचित जटिलताओं के साथ अवश्य ही सम्भव है....! सूर्य राधा से कहते हैं कि–

"मत करो मन को मलिन यूँ, तुम धरा की श्रेष्ठ नारी,
आज तुमसे हो रहा है देवता का पुण्य भारी;
तुमसे जो पालित हुआ है, अंग देवीय पुत्र मेरा,
घोर तम में दृष्टि खोले देखता अरुणिम सवेरा।

कहते हैं पुरुष स्त्री के अंतर्मन की तह में नहीं जा सकता.....! उत्तर आधुनिकतावादी कहते हैं कि स्त्रियों को बस स्त्रियाँ ही समझ सकती हैं....! लेकिन कवि अमरेंद्र भावों के शल्य चिकित्सक की तरह हर असम्भव से आगे बढ़ते हुए दिखते हैं....! तभी कुंती के अन्तस् को वे राधा के समक्ष अनावृत करते हैं। लोक और कुल की मर्यादाओं को निभाने वाले किसी भी दायित्व से विमुख हो ही नहीं सकते। राधा की गोद में खिलखिलाते कर्ण को देखकर सूर्य कह उठते हैं कि–

जो तुम्हारी गोद में है खेलता, कुंती-तनय है,

००

जन्म देकर कुन्ती कितनी रोई थी उस क्षण अकेली,
अश्रु से भीगी हुई थी, रक्त से लथपथ हथेली।

सूर्य राधा को बताते हैं कि प्रसव-वेदना के बाद कि शिशुविरह-वेदना में कुन्ती कितनी टूटी थी–

घुल रहा था करुण स्वर में तीर पर मेरी प्रिया का,

प्राकृतिक शक्तियों से पुत्र की सलामती की प्रार्थना ही इस बेबसी का अंतिम विकल्प बचा था–

हे पवन के देवता वषुसेन के रक्षक रहो अब,

कवि की कुशलता में किंचित भी खरोंच की आशंका नहीं है। तथ्यों की छानबीन करके इतिहास की पुनरप्रतिष्ठापना हुई है यहाँ....! यहाँ भावों में डूबे हुए रश्मियों के देवता सूर्य.... जीवन-यात्रा के इस पड़ाव का वृतांत बताने में अतीव सजग हैं। एक शिशुहीना ब्याहता राधा के समक्ष.... एक कुमारिका की गर्भावस्था का अथ आरम्भ करने में कवि अमरेंद्र ने सूर्य के चरित्र में ऐसा सन्धान किया है, जिससे एक स्त्री के समक्ष दूसरी स्त्री की मर्यादा दृढ़ रहे...! सूर्य वंचक प्रेमी नहीं हैं अपितु हादसों की जिम्मेदारी लेने में अतीव सजगता दिखाते हैं। वे कहते हैं

कि–

कब पृथा यह चाहती थी, हो कुँआरे में शिशु यह,
लोकलज्जा-हानि घर की, आयु का डर घोर रह-रह।
बहुत ही अनुनय किया था, लौट जाऊँ मैं वहाँ से,
मैं विवश रतिबद्ध, कैसे लौट जाता फिर वहाँ से;

यहाँ कवि की दृष्टि में पुरुष चरित्र निखर गया है, जिसमें प्रेयसी पर दोषारोपण नहीं है... भले ही आत्माभा पर मेघमयी कालिमा घिर जाए। यह उद्दात्त पुरुष चरित्र है.... जिसमें एक तरफ आत्मस्वीकृति है तो दूसरी तरफ भावी दायित्वों के निर्वहन की अभिलाषा भी है... भले ही परोक्षतः ही हो....! खैर... यह तो इतिहास है... अब वर्तमान जगत को कवि एक संदेश देता है–

वह पुरुष सचमुच अधम है जो त्रिया पर तम उलीचे;

और इसी सिद्धांत की सार्थकता हेतु कवि सूर्य के अंतर्मन में पैठ कर लिख जाते हैं कि–

मैंने कुन्ती को किया था बस विवश एकांत पाकर।

पहले सर्ग में सूर्य कुन्ती को आश्वस्त करते हुए कर्ण को प्रणय का फल बताते हैं... लेकिन अन्य स्त्री राधा के समक्ष लोक के द्वारा अक्षम्य कृत्य का समग्र दायित्व स्वयं पर लेते हैं....! पुरुष-चरित्र में भी अनन्त विस्तार है.... न!

अब देखिए.... जब कर्ण सुरक्षित राधा और अधिरथ के घर में है तो केवल राधा से इतनी कथा-कहानी कहने का उद्देश्य भला क्या हो सकता है...! सूर्य कहते हैं–

गुरु बनूँ वषुसेन का मैं अब यही बस चाहता हूँ,
क्यों न चाहूँगा भला मैं, जन्म मुझसे है, पिता हूँ।

यह बात अधिरथ से इसीलिए नहीं कही गई होगी, क्योंकि पालक-पिता अधिरथ को कहीं पितृत्व-दायित्व सीमित न महसूस होने पाए...! लोक को सिखाने के उद्देश्य से कवि ने यह सिद्धांत बता दिया है, जिसमें सूर्य राधा से कहते हैं कि–

जो पिता का धर्म है, जो कर्म है, करना ही होगा,
रिक्त जो कुछ रह गया है, अब उसे भरना ही होगा।

बन्ध्या-सुत शब्द शक्तियों का सामर्थ्य मात्र नहीं, अपितु लोक की ही उपज है। बन्ध्या स्त्री दैवयोग से पाए पुत्र पर स्नेह की वर्षा का अतिरेक करती ही है...! ऐसे में पुत्र को उसके असली पिता को सौंपना सहजतापूर्वक सम्भव नहीं है...! अतः अनेक उदाहरणों से सूर्य स्वयं को कर्ण का पिता होना

दर्शाते हैं....! विविध विद्याओं का माहात्म्य बताते हुए... कर्ण को सुयोग्य बनाने की आकांक्षा जताते हैं–

शौर्य की इसकी कथा भू, गगन, जल, वायु लिखेगी,
आग भी भयभीत होगी, जब कभी आयु लिखेगी।

सूर्य और राधा की इसी वार्ता में कर्ण के पूर्व जन्म नरश्रेष्ठ होने का वृतांत और किसी ऋषिकन्या के शापवशात् स्वयं नर बनकर नरलोक में आगमन की कहानी सुना जाते हैं–

आ गया नररूप धर कर इस धरा पर, मैं विवश था,
कर्ण का इस जन्म में भी यश वही, पहले जो यश था।

एक तरफ इन पंक्तियों में वर्णों की आवृत्ति का लालित्य और छंद की चारुता पर कई पृष्ठ भरे जा सकते हैं, जबकि प्रबन्ध वक्रता के अधीन यहाँ इतिहास की परतें करीने से सजाई गई हैं। इतनी लाग-लपेट के बाद सूर्य फिर मुख्य मुद्दे पर आते हुए कहते हैं कि–

कुछ दिनों में कर्ण मेरा हर कला में सिद्ध होगा,
वीर तो ऐसा कि इससे काल भी जा बिद्ध होगा;
इसलिए हे अंगबाला, कर्ण को अब सौंप दो तुम,
कुछ दिनों के वास्ते बस। सोच में कुछ मत बहो तुम!

शशिरंजन भइया....! इस सर्ग को लेकर आपके मन में कई पूर्वाग्रह थे न...., जिसे आप सीधे डॉ. अमरेंद्र से समझने में डर रहे थे... न! तो अब तो आपके सभी दुराग्रह निर्मूल हो गए होंगे... न! इतिहास के प्रति आशंकाएं दग्धबीज हो गईं होगीं...न! खैर...अभी राधा का अंतिम निर्णय देखिए.., माँ तो महतारी होती है... न! वात्सल्य का विरह सह लेगी....लेकिन पुत्र को विद्वान बनाकर ही मानेगी....! लोक में भी तो यही होता आया है कि चाहे जेवर-बिक्खव बिक जाए लेकिन डिग्री चाहिए बेटवा को...! तो अंत राधा सूर्य से कह ही देती हैं कि–

देवता हे रश्मियों के, सोच में मैं क्यों बहूँगी,
पुत्र का कल्याण जिसमें क्यों न ऐसा दुख सहूँगी।
कर्ण मेरा वीर हो, योद्धा विकट हो श्रेष्ठतम यह,
रोक लूँ मैं मोह कारण, नीचता है नीचतम यह।

और अंत में जब सुखद बयार बही तो... वात्सल्य की वर्षा में सारे वैविध्य समा गए... अब इस सर्ग की अंतिम पंक्ति देखिए–

एक जैसे भाव से वे जुड़ रहे हैं, वे जुड़े हैं।

तो शशिरंजन भइया...! यह कर्ण महाकाव्य के द्वितीय सर्ग की इतिवृत्तात्मक चिट्ठी है....! चिट्ठी के साथ... सावन की सौगात.. अगोरेंगे...! नहीं कुछ भेजोगे पंचमी में... तब भी राखी का सूत भेजेंगे..... नाता तो नेह की डोरी से भी निभ ही जाता है.... भले भाई-भउजी बात न पूछें... तब भी...! आपकी बोली सुने हुए बहुत दिन हो गया है... फोनिया लीजिएगा छुट्टी मिले तो....! भतीजियों का अंजोर वर्तमान... और सोनहुला भविष्य बना रहे... भउजी नित नवीना मुग्धा नायिका की तरह खिलती रहें.....! अन्वेषा.. प्रज्ञान... कपड़ा का नाप लिखवा रहे हैं... लेकिन हम लिखेंगे नहीं....!

अपना ढेर खयाल रखिएगा..... हमारा भले न रखिए....! धन-धान्य और उत्तम स्वास्थ्य के वैभव से नइहर निहाल रहे... इसी आस में....

आपकी बहन
डॉ. कल्पना दीक्षित

दाता, विधाता
देवता साहित्य का ?
श्याम-सलोना
नाम ''अमरेन्द्र'' जिसका
वो आखिर कौन है?
कवि, कथाकार, आलोचक,
अनुवादक या उपन्यासकार?
मित्र का मित्र या जो
अमित्र के लिए खूँखार है?
अंगप्रदेश का अमृत पुरुष?
या, खुद में खोया,
''लाल खाँ दरगाह लेन'' के
''सराय'' में सोया
बंदा खुद कोई मंदार है?

—डॉ. सकलदेव शर्मा 'दुर्वासा'

डॉ. आभा पूर्वे के लिए चिट्ठी.....

आदरणीय आभा दीदी....!

सादर प्रणाम...!

आपकी हस्तलिखित चिट्ठी तो अंतर्मन में ऐसी छाप छोड़ गई है.... कि सादे कागज पर उतरे अक्षर अब मन से क्षरित न होंगे कभी....! ये जो आपने ईर्ष्या वाली बात लिखी है न..... तो वैसे बड़ी बहनों की ईर्ष्या प्रेरणादायी होती है.....! डेढ़ वर्ष पूर्व आपकी किताब '...व्यक्तित्व और वागर्थ' वाली पढ़ लिए थे, वहीं से ही लिखने का बीज इच्छाशक्ति की मृत्तिका में अंकुरित हुआ था....., लेकिन अब आपकी ईर्ष्या और खुशी प्रेरणाप्रद प्रकाश है..... इसी में मुझे गति हेतु दिशा मिल रही है है। सच कहें दीदी....तो बड़ों से मिला प्रोत्साहन ही अंकुरित जीवन-यात्रा में खाद-पानी-हवा है....! इसी में कीर्तियों की वाटिका लहलहाती हैं. ...! अभी कर्ण महाकाव्य की ओर उन्मुख हों तो.... प्रारब्ध पर्व में सूर्य राधा की गोद में किलकारी मारते शिशु को अपना प्रारब्ध स्वीकारते हैं....! और बीज पर्व में बालक कर्ण में विद्या का बीज-वपन करते हैं..! इस विद्या के बीज में मात्र ध नुर्विद्या नहीं अपितु.... मातृभूमि की महिमा और कर्ण के अस्तित्व के रहस्यमय सत्य का भी विस्तार है। कर्ण के मृण्मय शरीर में उसकी उत्पत्ति के सत्य का बीज संजोया है। बीते तीसरे सर्ग में सूर्य कुन्ती के त्याग और वेदना की महिमा का बखान करते हैं....! वेदना की आयु चिरंजीवी होती है...., वृंदा जालंधर की ब्याहता थी लेकिन लोक वृंदा की प्रतीक तुलसी और विष्णु के प्रतीक शालिग्राम का विवाह प्रतिवर्ष आयोजित करता है। कुन्ती ने भी कर्ण को मात्र देहाकार दिया. ..उस समय लोकमर्यादा से भयभीत यह सत्य आज लोकगाथा है–

धन्य है धन्या यहाँ की, कुंती-माता,
यह कथा बनकर रहेगी लोकगाथा।

खैर.... ये बातें तो बीज पर्व की रहीं....! अब चन्द्रातप पर्व अर्थात् चौथे सर्ग में देखें तो चन्द्र के आतप में अधिरथ का मोह छंट जाता है.... और वे कर्ण को राजसत्ता सौंपने से पूर्व गुरुकुल भेजने का निर्णय लेते हैं....! चन्द्र किरणें वनस्पतियों में जीवन रक्षक तत्त्वों का सन्धान करती हैं.....! राधा की तार्किक बातें अधिरथ के अंतर्मन में कर्ण को जगत का त्राता बनाने हेतु ज्ञान की तात्त्विक महत्ता का बोध कराती हैं। अधिरथ प्रिया चन्द्रिका ही तो है.... न! यह सर्ग ज्ञानयोग है दीदी.....! जिसमें मोह की मलिनता तिरोहित हो गई है।

अब दीदी... इस चौथे सर्ग में राधा-अधिरथ संवाद है, जिसमें सन्तति के

प्रति दायित्व की व्यापकता निहित है। होनहार कर्ण को देखकर हर्षित अधिरथ निश्चिंत हो जाते हैं....! कर्ण की प्राप्ति से सूत दम्पत्ति की सन्तानहीनता की व्यथा पर मरहम लग जाता है। अधिरथ उसकी योग्यता से भावी उत्तराधिकारी बनाने का निर्णय लेते हैं। कर्ण की गुणवत्ता के संदर्भ में कवि अमरेंद्र लिखते हैं कि–

हाँक देता, तो लगे, ज्यों मेघ गरजे,
विघ्न कोई हो, इशारे से ही बरजे;
धीरता और वीरता का कर्ण मेरा,
दूर है मुझसे बहुत मेरा अंधेरा।

घर के इस चिराग को अधिरथ अपनी पैतृक सम्पत्ति सौंपना चाहते हैं। कभी सन्तानहीनता का त्रास अधिरथ को सालता था कि कोई राजकुल का दायित्व उठाने वाला नहीं है...! लेकिन कर्ण के मिलने से एक अवलम्ब मिला, लोकभाषा में कहें तो निरबसिया के भाग्य खुल गए.....! पुत्र में पिता स्वयं अवतरित होता है, अधिरथ स्वयं कहते हैं कि–

मैं वृहत्मन-अंश, सत्या-सत्य हूँ मैं,
मर्त्य था मैं अब नहीं पर मर्त्य हूँ मैं।

कर्ण का मिलना मरुस्थल में सुधा का सोता फूटना है, कभी सन्यासाश्रम की आयु में सन्तानहीनता का गरहन लगा था..... लेकिन विधि के इस विधान में चिंताएं निर्मूल हो गई हैं, अधिरथ कहते हैं कि–

यह वयस मुझ पर नहीं चिन्ता उलीचे।

ये 'उलीचे' शब्द ने जीवन के भाव को मूर्त का दिया है न.... दीदी! यही चन्द्रातप है...न! जिसमें चिंताओं का उलीचना बीत जाता है...चिन्ताओं का हेतु रीत जाता है...न! पिता अपनी अभिलाषा में पुत्र की योग्यता का मूल्यांकन सौंपकर करना चाहता है। अधिरथ का मानना है कि युवा नेतृत्व में व्यवस्था और निखर उठेगी–

कीर्ति जो है अंग की सिमटी हुई-सी,
दीप्त हो दमके अभी से, अब नई-सी।

कर्ण पर राज्यभार सौंपने की अभिलाषा में कर्ण की उदासीनता अधिरथ के लिए बाधक बन रही है। निर्लिप्त भाव से कर्ण की कर्मठता के प्रति अधिरथ विचारते हैं....! आभा दीदी....., यह पति-पत्नी के बीच की वार्ता चल रही है। जिसमें अतीत-वर्तमान-भविष्य है और चिंता-आशा-उदासीनता-विरक्ति की भी परिचर्चा है। दाम्पत्य का सौंदर्य है इस वार्ता-प्रसंग में...! दाम्पत्य में दीवारों

वाले घर और सुविधाओं वाले इलेक्ट्रॉनिक-फर्नीचर का कबाड़ ही महत्वपूर्ण नहीं है, अपितु परस्पर भावनात्मक विनिमय भी जरूरी है। कर्ण राज्य की लालसा के प्रति अनासक्त है, भोग के इतर रूप है उसमें....! कर्ण अनन्त विस्तार को साध ाता है, तभी तो कवि अमरेंद्र उसे 'गन्धजीवी' कह जाते हैं–

शून्य में बेसुध भटकता गन्धजीवी!

लोभहीन कर्ण मौन रहकर राज का प्रतिकार करता है, मौन की मनाही कितनी सुखद है... न दीदी....! मौन से मन आहत नहीं होने पाता.... न! लेकिन कर्ण का मौन अधिरथ के मन को आशंकित करता है, वे सोचते हैं कि–

दुर्ग से हो दूर क्या खोजे विपिन में
देर, तक हीय रात में भी और दिन में;
मैं सशंकित आजकल हूँ सोचकर यह,
कर गया कुछ रश्मियों का ही पुरुष वह।

अधिरथ की आशंका बलवती होती जाती है, सूर्य ने जरूर कोई टोना-टोटका किया है कर्ण पर....! अब दीदी... देखिए जब सन्देह मन में अखुआता तो उसके कारण भी दिखने ही लगते हैं....! अधिरथ सोच रहे हैं कि सूर्य ने अस्त्र-कला कुशलता को 'मेघवन' में क्यों सिखाया..... नगर में भी तो वेध ाशालाएं बनी हैं.... वहाँ भी तो ट्रेनिंग दे ही सकते थे..... न! केवल बाणों का सन्ध ाान ही तो जीवन को गौरवान्वित न कर सकेगा.... क्षत्रित्व तो शासन भार का निर्वहन करने में ही फलित होगा....! अब दीदी..... वात्सल्य में उगा सन्देह... डर में बदल जाता है....! प्रकृतिप्रेमी कर्ण अधिरथ को रोगी दिखने लगता है–

बात करता वृक्ष से यूँ, ज्यों सगा है,
इस समय ये रोग यह कैसा लगा लगा है!

सन्यास सही उम्र पर ही शोभाधायक होता है, कर्ण का विराग हटाने के लिए अधिरथ चम्पा का शासन सौंपने की युक्ति निकालते हैं। एकबार राज्य के जंजाल में मन क्रम गया... तो बस कर्ण सांसारिकता में घिर ही जाएगा.....! सभी विकारों का तोड़ बताकर अधिरथ चुप हो जाते हैं.... और राधा की प्रतिक्रिया सुनने हेतु उत्सुक हैं। राधा थोड़ी देर चुप रहती है.... इस चुप्पी में वह निरुत्तर नहीं है बल्कि यह अभिव्यक्ति की बौद्धिकता है। एक वाक्य में राधा कह जाती है कि यह समग्र भय मोह से ही है, जो आशंकाएं हैं उनका सकारात्मक पक्ष भी तो है। कर्ण की वर्तमान विरक्ति में उच्चशिक्षा का मर्म है। और इसी क्रम-संवाद में राधा ज्ञानयोग की महिमा कह जाती है–

पर नहीं क्या राज से विद्या बड़ी है?

राधा माँ है, उसे पुत्र में असीम संभावनाएं दीखती हैं। वह कर्ण की कर्ण से ही तुलना करती है और चाहती है कि वह स्वयं से और आगे बढ़े। कर्ण की योग्यता के विस्तार में राधा चाहती है कि–

और बढ़ने दो अभी बाहु-वयस को,
एक अँगुली थाम ले हँसते ही दस को!

विद्या के गुरुत्व के समक्ष राधा को राज्यभार हल्का प्रतीत होता है। ध्रारती का भार है शासन.... जिसे सम्भालना जटिल नहीं है किंतु विद्यार्जन व्यक्तित्व में गुरुता भरता है, इस ओर हर किसी का उन्मुख होना जटिल है। विद्यार्जन नरोचित गुण है, उसे बढ़ाते रहने में ही तुष्टि और ख्याति है। माँ के लिए बेटा अच्युत है, और अधिक योग्यता अर्जित करके वह सुयोग्य शासक बने... ऐसी माँ की अभिलाषा है। इन्हीं प्रसंगों में... अंगपुरुष कवि अमरेंद्र ने वर्णव्यवस्था को गुणों पर आश्रित बताया है....! शास्त्रों में ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि को कर्म आधारित व्यवस्था कहा गया है.... लेकिन इस कृति के मर्म में ये वर्णध्जाति व्यवस्थाएं गुणों पर केंद्रित हैं–

स्वर्ग का जो कवच-कुण्डल तन पे धारे,
चल रहा क्षत्रित्व जिसके ही सहारे;
जो कलुष दिखने लगा हैय तारणा है,
विप्र के सारे गुणों को धारणा है।

अब आभा दीदी... यहाँ देखिए... पति-पत्नी का संवाद विवाद के स्तर पर नहीं है, अपितु वार्ता के शिखरस्थ स्तर पर है। अंतिम निष्कर्ष किसी का भी मान्य हो, सही होना चाहिए.... तभी अहं का दाह सम्भव है। यहाँ कवि अमरेंद्र ने राधा के माध्यम से ज्ञान के माहात्म्य का जो बखान किया है वह गीता के ज्ञानयोग की याद दिलाता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को मोह के जाल से मुक्त करने कर्मयोग के साथ ही ज्ञानयोग का विस्तार बताते हुए कह जाते हैं कि–''न हि ज्ञानं सदृशं पवित्रमिह विद्यते।'' इस चन्द्रातप पर्व में राधा कहती है कि–

ज्ञान से वंचित सिंहासन मात्र आसव,
शोर को बनना अभी है भोर-कलरव;
ज्ञान है तो शक्ति का साम्राज्य विस्तृत,
उस किरण, आलोक के बिन भाग्य विरमित।

'शक्ति ज्ञान पर आश्रित है' इस सिद्धांत मत की प्रतिष्ठापना में कवि की प्रबन्ध कुशलता प्रशंसनीय है। कर्ण महाकाव्य इतिहास भी है, नवसृजन भी है। कवि विवेक में प्रस्तुतीकरण की विदग्धता ही इस कृति में चारुता लाती है। सब

नया है लेकिन है अतीत के घने अंधेरे से ही निःसृत...! बिना किसी साधना के काल की चक्रीय गति यहीं हैं..... जिसमें अतीत से निकलते भविष्य का वर्तमान में साक्षात्कार किया जा सकता है। ज्ञानयोग में ही कवि का कोमल मन राधा का वचन बन गया है, वह कहती है कि–

यह सिंहासन, राजगद्दी ज्ञान के बिन,
पीठ पर फुँफकारते-से नाग-नागिन;

सच कहें दीदी.... तो इन पंक्तियों में कौटिल्य की नीतियां दिखती हैं। यहाँ सत्ता बन्दूक की नोंक से नहीं... मस्तिष्क की आभा से आलोकित होने का मर्म है। राज्य की जिम्मेदारी भी आत्महित में गर्हित है.... राज्य तो प्रजा के कल्याणार्थ संचालित करना चाहिए.... न! कवि की ये बातें कल्याणकारी राज्य की अवधारणा में शासकों/नेतृत्वकर्ताओं को कितना कुछ सिखा सकती हैं.... न!

राज्यसत्ता है प्रजाहित, तो सम्भालें,
भार भूतल का सभी मिलकर उठा लें;

पत्नी की ये बातें अधिरथ के विचार से मेल नहीं खातीं....! कहाँ अधिरथ कर्ण को राज्यभार दे रहा है.. कहाँ राधा उसे गुरुकुल भेजने का तर्क देने लगी...! अब देखिए बात कहने के तरीके-सलीके में संवाद को निश्चित दिशा मिलती है.....! यही संवाद विवाद भी बन सकता है लेकिन तर्कों की कसौटी से निःसृत निर्णय मन बदल देते हैं, चिंतित-आशंकित अधिरथ का अन्तस् पवित्र-भाव से भर जाता है–

सुन प्रिया की बात अधिरथ-मन शरत-सा,
मोद पूरित कह उठा, दुख से विरत-सा।
ठीक है तुमने कहा, मैं भी हूँ सहमत,
बन रहे हैं भाव मेरे पुष्प-अक्षत।

कर्ण को गुरुकुल भेजने पर सहमत अधिरथ ज्ञान की महिमा का साक्षात्कार करते हैं–

राजगद्दी-राजसत्ता, ज्ञान के बिन,
ज्यों रुधिर का पान करती मत्त डाकिन;

इस साक्षात्कार में अधिरथ मोह के विष को तजते हैं, और कर्ण को गुरु की शरण में भेजने का प्रबंध करते हैं.....! ज्ञान की चन्द्रिका बरसती है तो रात्रि मुदित हो जाती है, यहीं श्रेयस है.... यही चन्द्रातप है। सर्वश्रेष्ठ गुरु जो विश्वख्यात हैं... अंगप्रदेश में महिमावान हैं वे मन्दार पर्वत पर विराजते हैं। गुरुओं के ज्ञान में ही धरा आलोकित है। परशुराम की प्रशंसा में कवि कहते हैं कि शील

के बिना शक्ति पशुवत है इसीलिए परशुराम ने क्षत्रियों के दर्प पर वार करके उन्हें विवेक की राह दिखाई थी बाहुबल में बौद्धिक बल का समन्वय आवश्यक है यह पाठ तो परशुराम ने क्षत्रियों को परशु के वार से पढ़ा दिया....! साथ ही ज्ञान की प्रतिष्ठापना में ज्ञान के साथ ही बाहुबल भी अपेक्षित है अन्यथा ज्ञानियों की अवहेलना बढ़ती जाती है। खैर... ज्ञानयोग के इस विस्तार में अब उपमा का लालित्य देखते हैं–

परशुधारी राम का यह ज्ञान ऐसा,
ज्यों शरद की पूर्णिमा का चाँद जैसा।

संवाद निष्कर्ष के स्तर पर जब पहुंच जाए तब शुभ कार्य में देर नहीं करनी चाहिए....! अधिरथ कल ही कर्ण को गुरुकुल ले जाने का निर्णय लेते हैं, और उसे वहाँ छोड़कर शीघ्र ही वापस आने की बात कहते हैं। इस वापस आने की शीघ्रता में राज्यभार के दायित्व निहित हैं, जो अधिरथ को अभी स्वयं ही सम्भालना है। सुबह की प्रतीक्षा में कवि देखते हैं कि रात्रि के सौंदर्य की उड़ान है सुबह.... रात्रि बीतती नहीं है अपितु अपनी लालिम पंख फैलाती है, जिसे सब प्रातः समझते हैं.....! काल की गति का सुंदर-तात्त्विक अवलोकन है यह–

हाँ, यही अच्छा भी होगा, भोर होले,
रात अपनी लालिमा के पंख खोले।

श्याम नभ पर भोर का मन पवित्र होता है है वैसे ही इस निर्णय की पवित्रता दृष्टि-अंतर्दृष्टि को पवित्र बना देती है। कहते हैं अंत भला तो सब भला....इस संवाद की सुखद परिणति गृहस्थियों को जीवन-जीने की कलाकारी... कसीदाकारी... सिखा जाती है! आपस की चीखती-दहाड़ती चुप्पी समाधान नहीं दूरियों को जन्म देती है.... अतः सार्थक संवाद बनाए रखना चाहिए । मन की मलिनता संवाद की सहज-वृष्टि में प्रक्षालित हो जाती है....!

तो अब...आभा दीदी...,झोला भरकर आशिर्बाद भेजिए...कि हम भी जीवन की सार्थकता को पाने में सफलता पाएं....! अपना खयाल रखिए.... प्रकृति से नाता निभाती रहिए...मन से मधु लुटाती रहिए...जिससे वातावरण मधुमय बना रहे...!

कभी कलकत्ता आइए....
मिलने की प्रतीक्षा में...

आपकी बहिन
डॉ. कल्पना दीक्षित

अनिरुद्ध प्रसाद विमल के नाम पाती....

आदरणीय अनिरुद्ध सर...!

सादर प्रणाम...!

हफ्तों पूर्व विचार था कि आपको पत्र लिखूँ..... लेकिन परिस्थितिगत विडम्बनाएं अपना समय लेती ही हैं.... समय का हरण ही जीवन की विषमताओं का अधिकार क्षेत्र है.....! स्वर्णमुद्राओं से भी कीमती समय का एक हिस्सा विसंगतियों का दायभाग है.....! खैर.... यह सब मैं आपको क्यूँ बता रही हूँ.... , आप तो रंगमंचीय नेता हैं... आपने तो सांसारिक रंगमंच और मनोजगत के रंगमंच से ही अभिनय के हुनर को तराशा होगा.... न! मन के धरातल पर विचार नटों की तरह अभिनय करते रहते हैं.... बुद्धि द्रष्टा बन जाती है....! नाटक खतम होते ही अन्तस् की आंच में पिघले हुए विचार नया आकार लेने लगते हैं.... तभी कुछ विसंगतियां समय आहरण करते हुए "कर" संग्रह करने लगती हैं....! इसी सबके बीच नेपथ्य में सुयोग बन गया अभी.... और मैं लिखने लगी....!

हाँ... सर.. तो अब "कर्ण" महाकाव्य की बात करें तो इस काव्य के प्रथम सर्ग में कुन्ती की मनःस्थिति में जैसे कामायनी के अध्याय समाहित हैं...! प्रहरी के न आने पर वात्सल्यमयी विकलता...., आसमान में देखकर आशा...., प्रहरी द्वारा कुशलता कहने पर निश्चिंतता....., सूर्य द्वारा भावनात्मक सहयोग करने पर आत्मप्रतिष्ठा.... इन मनोभावों में जयशंकर प्रसाद की कामायनी का विस्तार समाहित है.... न! द्वितीय सर्ग में सूर्य का प्रारब्ध.... ऋषि कन्या द्वारा शापित होने का प्रतिफलन....और राधा के समक्ष राग के आवेश में कुन्ती-संसर्ग का स्वीकरण. .., इतिहास को ही नहीं अपितु कवि को ही महामानव बना देता है। इसी में समाज को नई दिशा मिलती है....! यहीं सभ्यता के बचे अवशेष संरक्षित हो रहे हैं....! तृतीय सर्ग में सूर्य कर्ण के जीवन में....बीज बोते हैं...ज्ञान का... जन्म-रहस्य का....., और इसी क्रम में पितृत्व के दायित्व का निर्वहन भी करते हैं.....! यहीं मानवता का भविष्य आकार लेता है....न! चौथे सर्ग में राधा और अधिरथ का कर्ण-विषयक संवाद है....! अधिरथ शासन सौंपकर कर्ण का मन लगाना चाहते हैं.... और राधा उसे और विद्वान बनाना चाहती है....! पति-पत्नी का यह संवाद स्त्रीविमर्श का एकतरफा आलाप नहीं है..लेकिन परिणाम में राधा के निर्णय को अधिरथ बड़ी ही सहजतापूर्वक स्वीकारते हैं....! सत्य की ही जय होनी चाहिए.... चाहे वह स्त्री का निर्णय हो या पुरुष का.....! तो इस प्रकार चार सर्गों का सूत्रात्मक परिचय यह रहा...और अब हम पांचवे सर्ग का परपंच

बतियाएंगे...! देखिए सर...! उम्र संख्याओं की गणना मात्र है..... और सीखने वाले हमेशा बच्चे ही रह जाते हैं..... बच्चा बने रहने में ऊर्जा ढेर रहती है.....! आज की मरियल पीढ़ी पाठ्यक्रम भी सांगोपांग नहीं समझने लायक रही है..... ऐसे दुर्दिन में हम लोग ही अध्ययन-व्यसन से कभी न अघाने वाले हैं..... ढेर आत्म-प्रशंसा तो नहीं हुई जा रही है.... सर! चलिए भूल-चूक-लेनी-देनी... अब पांचवें सर्ग... मतलब प्रज्ञा पर्व में प्रज्ञा जगाते हैं....! वैसे प्रज्ञा को शास्त्रों में नव-नव उन्मेष करने वाली और तीनों कालों को जानने वाली कहा गया है....! तो समझ जाइए कि इस प्रज्ञा पर्व के विश्लेषण में हमें अपनी प्रज्ञा को जगाए रखने के कई सूत्र मिलने वाले हैं.....!

अनिरुद्ध सर....! बस एक रंगमंच ही समझिए इतिहास का.... जो केवल डॉ. अमरेंद्र के मनोजगत की उपज है। पहले परशुराम-अधिरथ की वार्ता होती है, फिर कर्ण-परशुराम की अध्ययन-वार्ता और विविध घटनाओं के नियोजन में ही मन्दार महिमा का बखान है। चूँकि यह महाकाव्य इतिहास के अंधेरे का विलक्षण दिग्दर्शन है.... अतः इसमें मनोभावों का बारीक अध्ययन है.....! सूत्र शैली में बुद्धि के साथ ही बाहुबल का महत्त्व समझाया गया है.....! लोकरक्षा का व्यापक उद्देश्य निहित है इस विशिष्ट प्रज्ञा पर्व में.....!

अनिरुद्ध सर.... मैं आपसे ही बात कर रही हूँ...., यहाँ प्रज्ञा पर्व का ही प्रसंग है। कवि डॉ. अमरेंद्र स्वयंभू भी हैं और परिभू भी....! इनकी मनीषा में एक आस है...., इतिहास 'हो चुकी' घटनाओं का संग्रह है जबकि साहित्य 'कुछ नया हो सकता है, कुछ सार्थक एवं श्रेयस्कर होना चाहिए' ऐसी उम्मीद जगाता है। कवि ने इतिहास के आश्रय में कविता लिखकर.... बदलाव की संस्थापना की है। अब आप मां गए न... कि डॉ. अमरेंद्र परिभू भी हैं और स्वयंभू भी.... वैसे आपका तो चार दशक का याराना है....यह सब तो आपके सान्निध्य में ही परिपुष्ट हुआ होगा..... न! सच कहें तो बिखराव और असंलग्नता के बीच ध यानस्थ कवि ने कर्ण के माध्यम से सत्य की प्रतिष्ठापना की है....! इतिहास के अंधेरे में देखकर कवि ने परम्परागत अंधेरे पर आघात किया है। यह कवि-दृष्टि ही कवि-विवेक है। यह अंधेरे का अवलोकन ही मानवीयता को जगाने का आह्वान है.....! अब क्रम से कथावस्तु समझते हैं....!

...तो परशुराम अचानक अधिरथ को अपने आश्रम के समक्ष देखकर जिज्ञासु बन जाते हैं.....! पवन, खग, मेघ जैसे अतिथियों का सत्कार करने वाले परशुराम अधिरथ को देखकर आने का कारण पूछते हैं....! यहीं से मंदार की महिमा का बखान आरम्भ हो जाता है–

तपियों का यह स्वर्ग, धरा पर निधि-सा मन्द्राचल है,
मोक्ष-मुक्ति का धाम, स्वर्ग का खिलता नील कमल है!

परशुराम ऐकान्तिक के स्वाध्यायी हैं.... प्राकृतिक अवयवों में ही रमने वाले हैं। वे अधिरथ से सविनय... आगमन का कारण पूछते हैं..... अधिरथ के साथ आए हुए किशोर का परिचय जानना चाहते हैं....! अंगप्रदेश की इकाई हैं अधिरथ.... और परशुराम शास्त्र और शस्त्र के बली हैं.... लेकिन वार्ता में परशुराम के विराट व्यक्तित्व में लघिमा सिद्धि दिग्दर्शित है–

बोलो अधिरथ, अंग के मुकुट, अंगभाग्य, अवनीश्वर,
जिसका यश ही अग्नि, हवा, जल, गाते रहते अम्बरय
कौन कामना चाह यहाँ तक सीधे ले आई है ?
कहीं नहीं कुछ सरल जहाँ, पर केवल कठिनाई है।

यहाँ फले हुए वृक्ष की नम्रता है परशुराम के चरित्र में..... भरे हुए ज्ञान के गुरुत्व-गाम्भीर्य में दबी हुई विनम्र भाषा निःसृत है। यहाँ... इस प्रसंग में व्यवहार-प्रबन्धन सीखने का सुअवसर मिल रहा है...! बात करने का तरीका अत्यधिक महत्त्व रखता है... यही प्रस्तुतीकरण ही व्यक्तित्व का परिचायक है, जिसमें अहंकार का लेश भी नहीं है....! परशुराम आग्रह करते हैं... कि निःसंकोच होकर आगमन का कारण बताइए... अभिलाषा की पूर्णता हेतु कवि ने दृष्टांत दिया है किकृ

जहाँ सूर्य का पुण्य, वहाँ क्या ठहरा काजल होगा ?

यह एक वाक्य वाचक की व्यंजना का विस्तार सहेजे है....! कर्ण ही तो सूर्य का पुण्य है.... न! इसी पुण्य के प्रकाश में जन्म-रहस्य की सामाजिक कालिमा महत्त्वहीन हो जाएगी....! मंदार अमृतदेश का गर्भगृह है.... यहाँ इच्छाओं के अंकुरण से पूर्व ही वरदान आकार लेने लगता है.... इस प्रसंग में नाटकीय तत्त्व 'बीज' का नियोजन प्रतीत हो रहा है.. क्या अनिरुद्ध सर...! 'इच्छा उठने से पूर्व वर का सँवरना' इसी सिद्धांत वाक्य के प्रतिफलन हेतु.... कतिपय पंक्तियों के पश्चात ही... भृगु द्वारा विष्णु के वक्ष पर पद-प्रहार से धैर्य-परीक्षा पर सूत्रात्मक पद्य है। खैर.... परशुराम द्वारा इस तरीके से आग्रह करने पर अधिरथ मुनि का सत्कार करते हैं... और कर्ण का परिचय देते हुए उसकी खूबी बताते हैं कि 'कर्ण गुणों का कोश-व्योम' है.... मतलब कि कर्ण के गुणों का संग्रहालय अनन्त आकाश जैसा है, अपने कर्मों से कर्ण सूर्य है... सुंदर रूपक अलंकार से अभिव्यक्ति दमक गई है...! और वचन से कर्ण शरद का चंद्रमा है... कर्ण की वाणी से अमृत झरती है....! पुत्र-प्रेम का यह रूप दशरथ की याद दिला देता है.... 'जियत राम

विधु बदन निहारा'। कहते हैं कि अपने बच्चों की प्रशंसा कभी नहीं करनी चाहिए. ... नीतियां बेबस हो जाती हैं.... एक पिता गुरु के समक्ष अपने सुयोग्य पुत्र का परिचय देता है... यह परिचय ही गुणगान बन जाता है। पिता की अभिलाषा है कि पुत्र आत्मनिर्भर हो–

निज भविष्य और बाहु-भाग्य का अब से बने विधाता!

कवि की अंतर्दृष्टि में वर्ण व्यवस्था गुणों पर आश्रित है, तभी तो वे कहते हैं कि–

क्षत्रिय है तो क्षात्र धर्म भी इसमें दिखे अनल-सा,
दान-दया के साथ-साथ ही हो शरदेंदु विमल-सा।

अनिरुद्ध सर....! डॉ. अमरेंद्र सर का भाव-विवेक देखिए...., अभी तक परशुराम अधिरथ से आगमन का प्रयोजन पूछ रहे थे..... और जब अधिरथ ने प्रयोजन बताया तो वे कह रहे हैं कि–

हे अंगेश, दृष्टि से मेरी कुछ क्या छिपा कहीं है ?

यह विद्वान ऋषि की दिव्य-दृष्टि है, और इसमें लोकव्यवहार का सुंदर संयोजन करके संवाद गढ़ देना... कवि की कारीगरी है...! कवि मात्र कुम्भकार की तरह आविर्भूत भावों की कविता ही नहीं करता अपितु कवि एक कुशल बढ़ई की तरह शब्दों, वाक्यों और प्रसंगों की नाप-जोख करके... काट-छाँट करके.... एक मनभावन रूप में भावों को भरकर कविता बना देता है....! सच में.... कवि भावों का कुम्भकार और शब्दों-प्रसंगों का शिल्पकार होता है...! देखिए अनिरुद्ध सर.... आपको ईर्ष्या तो नहीं हो रही है... न! मैं आपके मित्र की प्रशंसा लिखे ही रही हूँ..., अरे मैत्री में ही तो अभिन्न व्यक्तित्व निखरता है... यह सब आपकी संगति का ही असर है.... सच कहें तो यह प्रशंसा आपकी ही है.....!

कर्ण महाकाव्य इतिहास की धारा को सत्य की राह पर ले जाता है। रचनाकार का दायित्व बहुत व्यापक होता है वही भविष्य गढ़ता है....! महाभारत के आदिपर्व में वर्णित शकुंतलोपाख्यान में दुष्यंत हृदयहीन शासक है.... जो स्त्री जाति का सम्मान नहीं कर पाता... उसे भला-बुरा कह जाता है...! इसी प्रसंग की नाटकीय अभिव्यक्ति में महाकवि कालिदास ने दुर्वासा शाप का नियोजन करके एक राजा को धीरोदात्त प्रेमी बना दिया है.....! इतिहास की खामियों को पाटने के लिए ही कवि अमरेंद्र ने अंधेरे का अवलोकन किया है। डॉ. अमरेंद्र कर्ण के माध्यम से विकासवाद और बाजारवाद की चक्की में पिसते हुए मरियल युवा को अस्तित्व की महत्ता समझाते हैं–

यह किशोर, यह बालक अपना परिचय स्वयं कहेगा,

हमें स्वयं से जुड़ना ही होगा...तभी हमारा अस्तित्व सुरक्षित रह सकेगा.....! आत्म-पलायन ही भयावह है.... आश्रयमुक्त होकर... आत्मिक शक्तियों को साधकर.... ही स्वयंप्रभा में आलोकित होना सम्भव है। अधिरथ हर्षित मन से कर्ण को परशुराम के पास छोड़कर जा रहे हैं.... विदा से पूर्व अधिरथ कृतज्ञता ज्ञापन हेतु हाथ जोड़कर... सिर झुकाकर.. परशुराम को प्रणाम करते हैं.....! शिष्टाचार और नैतिकता का सौंदर्य अनुपम होता है... लेकिन कवि इस भाव-दृश्य को भी उपमा में आवृत कर देता है–

नभ में उदित सूर्य के सम्मुख कुमुद झुके हों जैसे।

निश्चिंत अधिरथ प्रस्थान हेतु परशुराम से अनुमति मांगते हैं... पुत्र का दायित्व सौंपकर उनका अंतर्मन उज्ज्वल है... इस उज्ज्वलता का निरूपण कवि करता है.... अमूर्त भावों को शब्दों से साध लेने में डॉ. अमरेंद्र सिद्धहस्त हैं–

अब तो तम के रोम-रोम में फैली हुई छटा है 'अंधेरे का रोयां-रोयां' लिख जाने वाला कवि अवश्य ही जीवन की बारीकियों को भरपूर जिया होगा..! 'अंधेरे में' कविता में मुक्तिबोध ने समाज और व्यवस्था के अंधेरे के साथ ही मन और विचारों के अंधेरे में खोते-बिलबिलाते हुए अस्तित्व को आइना दिखाया था. ... यहाँ डॉ. अमरेंद्र 'तम के रोम-रोम' में छटा बिखेकर नवनिर्माण कर रहे हैं. ...! सच में असाध्य कुछ भी नहीं है....! मुनि परशुराम आशीष देने के लिए हाथ उठाते हैं...कर्ण पिता और गुरु के पैर छूता है.... मन्द्राचल रोमांचित है और दसों दिशाएं हर्षित हो रही हैं....! यह आचारसंहिता का दृश्यविधान है....! सत् आचरण से समाज निखरता है और वातावरण पुलकित रहता है....! वहीं जिस समाज में शिष्य-गुरु-पिता सब साथ बैठकर सिगरेट पी रहे होते हैं... वहाँ हवाओं का दम घुटता है... वातावरण में भारीपन रहता है.... और अस्तित्व संशयात्मक बना रहता है.... यह आज का दृश्य है... अब चेतने की जरूरत है... समाज की हर इकाई का दायित्व है कि वह नैतिक उत्कर्ष की ओर उन्मुख हो....!अधिरथ का रथ ऊपर उठता है... 'घरघर' नाद लिखकर कवि ने ध्वनि बटोर ली है कविता के लिए.... ध्वनि तरंगों से दिशाओं का सिहर जाना.... शक्ति के रहस्य को अनावृत करता है...! नभ में तिरोहित यान की तुलना 'जल में उछलकर अलोपित हुए मीन से' करके कवि ने आकाश और पाताल को जोड़कर कर कविता का क्षितिज चित्रित किया है....., यह मेल बौद्धिक भावुकता की उपज है। अब शुरू होता है परशुराम और कर्ण का संवाद.... 'ज्ञान का राग कुहुक पंचम' है। नवीन विद्या में शिष्य कर्ण का मानसी-मन उत्साहित है...!

देखिए... अनिरुद्ध सर...! अब तक बस यही परिचर्चा मिलती है कि

"कर्ण की जांघ पर सिर रखकर सोए परशुराम चौंककर जगे... उन्होंने देखा कर्ण को कीड़ा कुतर रहा है.. उन्हें ज्ञात हुआ कि यह शिष्य अधीर हो जाने वाला ब्राह्मण नहीं धैर्यवान क्षत्रिय ही है.... उन्होंने क्रोधित होकर ब्रह्मास्त्र वापस ले लिया...." यही कहानी बढ़ती-घटती परम्परा में चली आ रही है....!! समर्पण में ही कवि कह देते हैं कि जो ग्रन्थि से ग्रसित न हों उनके हाथों में ग्रन्थ....., क्योंकि प्रबुद्ध-चौतन्य कवि ने इतिहास के अंधेरे को दिव्य-आभा में देख लिया है, कबीर ने भी तो यही कहा है–

तू कहता कागद की लेखी
मैं कहता आँखिन की देखी

सकारात्मकता को संवर्धित करते रहना ही श्रेयस्कर है...! अहर्निश विद्या-व्यसन होना चाहिए... तभी लेटते, बैठते, टहलते गुरु शिष्य को ज्ञान-दान देते रहते और उसका प्रायोगिक परीक्षण भी दिखाते....! व्यावहारिक अनुप्रयोग के बिना शास्त्रीय ज्ञान जड़वत है। इन्हीं प्रयोगों से ही तो मस्तिष्कीय सम्भावनाएं बाहर आती हैं...! कवि ने इस ज्ञान-सामर्थ्य के प्रकटीकरण की उपमा दी है कि जैसे घोंसले से चिड़िया के बच्चे डाली पर बैठ जाएं वैसे ही विकसित मेधा व्यक्तित्व-आचरण-व्यवहार में प्रस्फुटित होती है। गुरु की नेह-वृष्टि चातुर्मास की मेघावलियाँ हैं....! अस्त्र विद्या का विविध प्रकारक ज्ञान कर्ण सीख चुका है... बिखरी विद्याएं स्वयं विद्यार्थी का वरण करती हैं...! गुरु के सान्निध्य में ही विद्या का बोध सम्यक होता है...! ऋक, यजु, साम का साक्षात्कार.... हाथी-घोड़े-रथ को विविध प्रकार से साधने की कला में कर्ण दक्ष होता गया...! प्राचीन काल में विद्या डिग्री तक सीमित नहीं थी... अपितु व्यापक रूप से जीवन को आच्छादित कर लेती थी.....! इन विद्याओं के संधान से व्यक्ति अपने सामर्थ्य का विस्तार करता रहता है.... यही असीम बनने की राह है।

अनिरुद्ध सर..... कर्ण अकेले मन्द्राचल पर बैठे-बैठे प्रकृति का रहस्य समझता है....! हवा साँस ही नहीं देती अपितु सांसों की आयु बढ़ाती है...! परशुराम के यहाँ रहने का रहस्य कर्ण समझने लगता है.....! कर्ण इतिहास पुरुष नहीं अपितु आज का वेत्ता है....! सहसा राजभवन में रहने वाले द्रोण याद आते हैं....! परशुराम और द्रोण की तुलना एक शिष्य के लिए मानवसुलभ व्यापार है। एक आचार्य द्रोण हैं जो वित्तपोषित है और दूसरे आचार्य परशुराम हैं जो विद्या से परिपुष्ट होते रहते हैं...! कर्ण को आचार्य द्रोण 'ज्ञान से पूरित' तो दिखते हैं लेकिन उनकी उज्ज्वलता उसे कालिमा के घेरे में दिखती है...! राज्याश्रय में ज्ञान का वातावरण नहीं रह जाता.... द्रोण द्वारा मिली उपेक्षा कर्ण याद करता है...!

सुख के दिनों में दुःख की रातें कहानी बनकर स्मृति पर छाई रहती हैं....! मन्द्राचल के ऊँचे वृक्ष गुरु का ऊर्ध्व व्यक्तित्व दर्शाते हैं....! इसी क्रम में ज्ञान के ह्रास का रहस्य कवि कह जाता है–

राज कृपा से जिनका जीवन-में होता अनुशासित,
फिर तो राजमुकुट से होगी, निश्चित मति-गति बाधित।
अपने और पराए का गुरु भेद करेंगे निश्चय,
अंगूठे का ले दान भक्ति में छेद करेंगे निश्चय।

एकलव्य प्रसंग गुरु के पक्ष में निंदनीय ही है....! योग्यता का यही मोल गुणवत्ता से रहित पीढ़ी तैयार कर रहा है....! राजव्यवस्था के अधीन शिक्षा-व्यवस्था बाजार की वस्तु बनकर रह गई है....! "अंगूठे के दान" भले ही गुरु-भक्ति की पराकाष्ठा हो.... लेकिन यह कवि अमरेंद्र को स्वीकृत नहीं है.... यह काव्य निष्पक्ष इतिहास है...! 'कर्ण' महाकाव्य जैसे साहित्य के आधार पर ही इतिहास का संघर्ष मिटने लगता है और नई संस्थापना प्रतिष्ठापित होती है। दो गुरुओं का तुलनात्मक अध्ययन साहित्य के अंतर्विरोध का खात्मा करता देता है...! गुरु को... शिक्षा व्यवस्था को राजकृपा से मुक्त होकर स्वायत्तता के साथ अध्ययन-अध्यापन करना चाहिए....! परशुराम विद्या के साथ ही बल के महत्त्व को बताते हैं... इस समन्वित शक्ति में सामाजिक संघर्ष मिट जाता है और सामाजिक समरसता बनी रहती है। परशुराम कहते हैं कि–

इसी परशु से जाने कितनी बार झुके हैं क्षत्रिय,
ज्ञान और बल से ही होता शमन भुजा का निश्चय;

अनिरुद्ध सर..! व्यवस्था में निर्बल का ज्ञान पूजित नहीं हो पाता न..! तभी तो ज्ञान के साथ ही भय दिखलाकर धरा पर शांति बनाए रखना सम्भव है न....! लेकिन आजकल तो हथियार अशांति फैलाने के लिए ही प्रयुक्त होता है न...! दुराचारियों ने परशु मतलब हथियार पर कब्जा जमा लिया है... समस्या दोगुनी हुई है.... ऐसे में हथियारों के सही उपयोग का पाठ पढ़ाना आवश्यक है. ... न! हथियारों के उत्पादन पर भी विचारना अपेक्षित है... न! मानवीयता का हनन हथियार ही कर रहे हैं आजकल....! खैर.. परशुराम की दृष्टि में... अरे मतलब डॉ. अमरेंद्र की दृष्टि में वर्णव्यवस्था का गुणात्मक स्वरूप देखिए–

फिर कहते हैं 'कर्ण एक तुम क्षत्रिय पूत अमल हो,
और विप्र के श्रेष्ठ गुणों से उज्ज्वल-शुभ्र-धवल हो।

ये कर्ण महाकाव्य ज्ञान-दर्शन का निदर्शन है, एक सामान्य-सी जिज्ञासा है कि "ज्ञान क्या है?" एक वाक्य में जवाब देखिए–

ज्ञान सेतु सिद्धि-शक्ति का, शान्ति और समता का

ज्ञान के बिना शक्तियों का दुरुपयोग अवश्यम्भावी है–

शास्त्र बिना तो अस्त्र, शक्ति के हाथों में है आसव ।

ज्ञानशाला में राजनीति से कवि मन व्यथित है,सच्चाई उजागर कर देता है–

राज-सिंहासन-छाया में जब ज्ञानीमन ही सोए,

बुद्धि, मनीषा, चिन्ता, मति ऐसे ही क्यों न रोए !

अब देखिए... कवि की दृष्टि में गुरु कैसा होना चाहिए... पीएचडी, नेट-जेआरएफ पास अथवा इन कागज के टुकड़ों से इतर भी गुरु की योग्यता अभीप्सित है। कागज.. मतलब डिग्रियां लेमिनेट कराकर आलमारी में कैद रहती हैं जबकि समृद्ध व्यक्ति की उपलब्धि में ही गुरुत्व है–

गुरु तो वही, गगन मन जिनका, ज्ञानय वृक्ष का फल हो,

राजनीति से दूर अमल जीवन निर्मल-निश्छल हो ।

अष्ट सिद्धियों में जो 'गरिमा' है उसकी साधना से अर्जित सिद्धि ही व्यक्तित्व में गुरुत्व का सन्धान करती है।

गुरु वह शोभित, झुका स्वर्ग हो जिनके द्वय चरणों पर

रैक्व ऋषि ने धन-बल के साथ आए राजा जानश्रुति को ज्ञान देने से मना कर दिया था... यह स्वतन्त्रता है विद्वान की... जो पुरस्कार और मंच के लिए लालायित न रहे वह गुरु है.....! अनिरुद्ध सर... भावों की प्रवहमानता में अमरेंद्र सर इतिहास के तम-अवलोकन का रहस्य उजागर कर दिया है–

बिना गढ़े इतिहास कभी भी आगे बढ़े न जाए ।

मानवीयता को सुरक्षित भविष्य देने हुए इतिहास का यह गढ़न अति-आवश्यक है। ऐसे नव-इतिहास लेखन से सभ्यताओं के अवशेषों को संरक्षण मिलता है। गुरु-महिमा, गुरुकुल की महिमा के क्रम में ही मंदार-महिमा चमकने लगने लगती है...! अंगपुत्र डॉ. अमरेंद्र के लिए यह जन्मभूमि और कर्मभूमि स्वर्ग से बढ़कर ही है–

सचमुच में मंदार धरा पर फैला स्वर्ग मनोहर ।

क्षीरसागर के मंथन में मंदार पर्वत मथनी बना था.... कवि को समुद्रमंथन का लय-नाद आज भी सुनाई देता है, जोकि बहुत हद तक सम्भव है.... झांसी में रानी लक्ष्मीबाई की आवाज गूंजती है कि "मैं अपनी झांसी कभी नहीं दूँगी" तिरुपति बालाजी की मूर्ति में समुद्र की हिलोरें सुनाई देती हैं....! अवशेष जीवन्त रहते हैं... यही प्रकृति की चेतनता है...! मंदार-महिमा बताते हुए कवि समुद्रमंथन को जीवंत कर देते हैं–

अब भी स्थिर दशों दिशाएं लगतीं नाद वही सुन,
फेंक रहा हो ज्यों ऊपर रत्नों को चुन-चुन ।
लहराता हो शेषनाग ही अब भी नीचे-ऊपर,
मंथन क्या, ज्यों युद्ध सजा था भारी भूतल भू पर ।

समुद्र से निकले रत्नों के आवंटन के लिए मचा उपद्रव कवि को व्यथित कर देता है..! देव-दानवों का मूक-युद्ध आज भी जारी है...बस दृश्य अलग है..! बाजारवाद की महामारी में विकास की गति कवि को नहीं दिखती....! राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा में सभ्यता सिसकती रहती है। गरीब... सज्जन... सुयोग्य ही पीड़ित हैं व्यवस्था के प्रहार से...! कवि एक दार्शनिक की भाँति अपने कथन देता है...

श्रम का हिस्सा अगर बराबर सबमें नहीं बंटेगा,
होगा ही संग्राम, किसी का धड़ से शीश कटेगा ।

ऐसी परिस्थिति के परिणाम में इतिहास की पुनरावृत्ति होने की संभावना प्रबल है–

और हलाहल जब निकलेगा, बोलो कौन बचेगा ?
जो कुछ हुआ, नहीं क्या इससे बोलो लोक हँसेगा !

यहाँ कवि महोदय सभ्यता के संरक्षण हेतु चेता रहे हैं....! मन्द्राचल को बखानते हुए बहुत सी अनुश्रुतियां याद आने लगती हैं! यही अनुश्रुतियां लोकजीवन का विश्वास हैं–

मधुसूदन के मोद-रास का मणिमय यह तो आश्रय,
उनकी महिमा की विराटता का सिमटा-सा आशय ।

अनिरुद्ध सर...! ई महतारी का बखान कभी ओराता नहीं है...! अब मंदार की महिमा में भृगु ऋषि वाला आख्यान उद्धृत करके कवि अंग-निवासियों को धैर्यशील बता रहे हैं....! पौराणिक कथा है कि भृगु ने विष्णु के धैर्य की परीक्षा हेतु उनके वक्ष पर पद-प्रहार किया....! विष्णु ने पैरों को सहर्ष स्वीकारते हुए कहा कि इन सुकोमल पैरों में चोट तो नहीं लगी...? विष्णु का धैर्य मानित हुआ....! वार और प्रहार के सहन में भी व्यक्तित्व की ही दृढ़ता उभरती है....! आज जरा-सी बात पर लोग आगबबूला हो जाते हैं.... अपहरण, कत्ल सब आम बात है... लोगों का संकुचित आत्मसम्मान सतही हो गया है...! अब धैर्य और सहनशीलता व्यक्तित्व के कोश में मिलते ही नहीं हैं....! विष्णु को लात मारने के पश्चात भृगु ऋषि को जो ज्ञान हुआ वह कवि के शब्दों में देखिए–

समझ गए क्षण में ऋषिवर भी महिमा मन्द्राचल की,
जहाँ शक्ति-संग शांति-विभूषित होती इस भूतल की;

समझा ऋषि ने क्षमा तेज होती बड़ी भुवन में,
और यही तो यहाँ बसी है जन-जन के ही मन में ।

क्षमा और दया व्यक्तित्व की बड़ी विभूतियां हैं....! मंदार-महिमा में समुद्रमंथन और भृगु आख्यान बताते हुए कवि "क्षमा" के माहात्म्य को प्रतिष्ठित कर देते हैं....! इसी क्षमा-माहात्म्य की पृष्ठभूमि पर कर्ण-परशुराम का प्रसिद्ध विवाद तराशा गया है। कर्ण अपनी गलती का साक्षात्कार करता है...! यह तो अनजाने में हुई त्रुटि थी कि एक कीड़े के काटने से निकले रक्त से भीगकर गुरु की निद्रा भंग हो गई...! कर्ण के इस आत्म-चिंतन में एक तरफ धैर्य की पराकाष्ठा दिखती है दूसरी तरफ धैर्य की ही अतिशयता में गुरु का क्रोधित होना स्वाभाविक जान पड़ता है।

अनिरुद्ध सर... अति के माहात्म्य में देखिए... काजल की अतिशयता कैसे मुख में पुती कालिख बन जाती है..! इसी तरह कर्ण का अतिशय धैर्य ही गुरु के क्रोध की कालिमा बना गया....! कर्ण का परिस्थितिजन्य मनोविश्लेषण घटना को सुलझा देता है.....! समझ और चिंतन-मनन का विस्तार घटना को कभी बड़ी नहीं बनने देता.....! जहाँ चार बर्तन हों वहाँ खट-पट होती ही है.... इस खटर-पटर को तूल देने की अपेक्षा परिस्थितियों का बारीक विश्लेषण करते हुए... स्वभाव-विज्ञान को समझना चाहिए....! दर्द से कर्ण की आँखों में अंधेरा छाने लगा और क्रोध से गुरु की आँखें रक्तिम हो गईं.....

उतरी थी आँखों में मेरी कैसी रात घनेरी;
चमक रहे थे नेत्र उधर खिलते पलाश-से गुरु के,

क्रोधित गुरु करुणा से भर जाते हैं और वात्सल्य लुटाते हैं....! जैसे माँ चोट खाकर.... खून बहाते हुए बच्चे को देखकर उसके उत्पात से क्षुब्ध होकर क्रोध में दो चाटा मार देती है... फिर स्वयं ही रोती हुई दवाई आदि का इंतजाम करती हुई बच्चे को दुलराती-पुचकारती है....! गुरु के स्वभाव की इस बारीकी तक पहुँचने से ही इतिहास के विवाद पर मानवीयता समन्वित हो सकेगी....! दृश्यदेखिए–

उतर गए गुरु की आँखों में फिर तो मेघ सजल थे,
रुके हुए पलकों के कोरों पर कितने ढलमल थे ।

गुरु के इस रूप की गुरुता में मातृभूमि का ही योगदान है, इस भाव के आलोक में डॉ. अमरेंद्र पुनः मातृभूमि की महिमा गाते हैं.....! यहाँ भावों की पुनरुक्ति नहीं अपितु प्रेम का नवनवोन्मेष है। अनिरुद्ध सर... मेरा भी मन मचल रहा है मंदार घूमने हेतु.., चलिए दीपावली के बाद सब लोग मिलते हैं। कभी मंदार कैसा था... यह देखिए अंगभूमि की महिमा–

धन्य भूमि यह, धन्य यहाँ के लोग शील से शोभित,
बाँहों में है शक्ति खेलती, नेत्र नहीं पर लोहित;
यहाँ योग का जन्म ही नहीं, योग फूलता-फलता,
इसीलिए तो सागर-मंथन का भी पंथ निकलता ।

और देखिए–

अहंकार से मुक्त, वायु के साधक, अंगनिवासी,
इनके लिए जगत का वैभव माया, घोर उदासी;
सब कुछ छोड़ यहाँ गुरुवर हैं, कारण खुला हुआ है,
अंगदेश के नर का मन अमृत से धुला हुआ है ।

अपने आप के साथ समय बिताने में ही सच का दिग्दर्शन होता है, यही प्रसंग यदि कर्ण इधर-उधर घूमते हुए प्रचारित करता या किसी से दुखड़ा रोता... तो समाधान भी न मिलता और वह स्वयं से दूर होता चला जाता....! अतः कवि डॉ. अमरेंद्र ने एकांत-चिंतन की महत्ता का सलीके से प्रायोगिक अनुप्रयोग किया है। काव्य के प्रयोजन में आचार्य मम्मट "व्यवहारविदे" शब्द का प्रयोग करते हैं. ... काव्य-सेवन से व्यवहार-प्रबन्धन में कुशलता अर्जित की जा सकती है....! अनिरुद्ध सर...! आप बोर तो नहीं हो रहे हैं... न! फिर देखिए तो इतिहास के रंगमंच पर डॉ. अमरेंद्र के नाटक का अगला दृश्य क्या होता है....! परशुराम कर्ण को बुलाते हैं, चरणस्पर्श के लिए झुके कर्ण को... स्पर्श से पूर्व ही उठाकर गले लगाते हैं...! यह गले मिलना गुरुत्व की साम्यता का परिचायक है। शिक्षण-अवधि पूर्ण हो गई... परशुराम कहते हैं कि–

गुरु प्रहार हो तप का, तो फिर क्या न चूर्ण होता है ?

इस वाक्य में क्रोध का परिताप पश्चाताप में धुला हुआ दिखता है। समग्र ज्ञान को सुयोग्य शिष्य में अर्पित करके गुरु की गरिमा धन्य हुई है.... ज्ञान-दान का सही निवेश ही श्रेय के प्रसार में सहायक है। इतिहास के मटमैले पन्ने को देखिए.... जिसे इतिहासकार कभी मुखरित ही नहीं होने देते हैं... , परशुराम कर्ण से कह उठते हैं–

आह तुम्हारे धैर्य और भक्ति का मूल्य नहीं है,
नर का यह ऐसा आभूषण जो कि तुल्य नहीं है;
उस दिन जो भी हुआ अघट, मैं सोच नहीं पाता हूँ,
मन-ही-मन पीड़ा से लगता है मैं चिल्लाता हूँ ।

वेदना को आत्मसात कर लेना इसे कहते हैं.... जिसमें आत्मीयता आपस के दुःख-दर्द को हर लेती है...! अब आश्रम आकर गुरु-शिष्य परस्पर वार्ता कर

रहे हैं....! गुरु समग्र ज्ञान उलीच दे तब भी उसके पास अक्षय-स्रोत रहता ही है। एक गहरी चुप्पी के बाद परशुराम बातें आरम्भ करते हैं....! शिष्य के साथ बिताया सुखद समय अतिशीघ्र बीत गया.....! एक नई सुबह आती है जीवन की....

देखो कर्ण निकल आया रवि, लिए करों में प्रात।

सूर्य के हाथों में सबेरा... प्रकृति के इस दृश्य में मानवीकरण के साथ ही जन्यजनकभाव भी दिखता है....! सुबह का कर्ता भी तो सूरज ही है.... न! प्रातःकालीन दृश्य में फैलती-बिखरती किरणें देखकर ऐसा लगता है जैसे–

स्वर्णविभा को स्वर्णकोश से लेकर कोई उलीचे;

गुरु शिष्य को स्वर्णिम भविष्य का आशीष देते हैं....! जीवन प्रकाश-स्वरूप होना चाहिए... जिसमें तम छंटता रहे...! कर्ण को आशीषते हुए परशुराम कहते हैं कि–

इसी क्षात्र पर खिले तुम्हारी उज्ज्वल नई मनीषा,
मणि-सा वह भी चमक उठे जो काजल का है शीशा!

'काजल का शीशा' दो भावों का व्यंजक है, एक तो लोक द्वारा अस्वीकृत अपरिणीता कुन्ती का पुत्र होना दूसरा समाज द्वारा अप्रतिष्ठित सूतकुल में पोषित होना। मनीषा का उज्ज्वल रूप इन दोनों कालिमाओं को प्रक्षालित करने में समर्थ है....! साथ ही गुरु यह भी कहते हैं कि–

कर्ण, तुम्हारा क्षात्र कभी भी नहीं बुद्धि संग छोड़े,
शक्ति कभी भी मनन-बुद्धि की बाहें नहीं मरोड़े !

परशु से क्षत्रियों को क्यों भय देते थे परशुराम.... यह मर्म उपरियुक्त पंक्तियों में निहित है। जब बुद्धिविहीन होकर बाहुबल का उपयोग होगा तो ऐसे क्षात्र-धर्म को धरा से मिटा देना ही श्रेयस्कर है....! शक्ति सम्पन्न होने का यह मतलब नहीं है कि तक्षशिला का पुस्तकालय जला दिया जाए....! इसी नीति का पाठ पढ़ाते हैं कवि अमरेंद्र....! बुद्धि और शक्ति का समन्वय होना चाहिए.....इसी में जन-जन का कल्याण है... यहीं आत्म-प्रतिष्ठापना है...! यह शर्त थी परशुराम की... ब्रह्मास्त्र तब वापस गुरु के पास लौट आएगा जब कर्ण अनीति की राह धरेगा.....! इतिहास की व्याख्या करना ही समय की मांग है....! परशुराम कहते हैं कि–

कर्ण, आज से लोक-हितों में विचरो, जागे सोए,
मुझसे प्राप्त शक्ति से कोई देव-वंश न रोए ।

अनिरुद्ध सर...! बस थोड़ा-सा और....! देव-वंश की व्याख्या में कवि अमरेंद्र एक आदर्श मनुष्य का मानदण्ड रखते हैं। तो देव-वंशी कौन है....

देखिए–

देव-वंश जो न्याय-नीति के पथ का है अनुगामी,
नर में नारायण के सारे दिव्य गुणों का स्वामी ।

पशु से पति बनने की यात्रा हमें देव-वंश की ओर ले जाती है....! कर्मों से अर्जित सिद्धि ही हमें देववंशी बनाती है। विदा के पल कारुणिक हो जाते हैं...! कर्ण के मुख से आवाज नहीं फूट रही थी...! जैसे स्वर्णशैल पर मेघ की मलिनता छा गई हो....! गुरु को प्रणाम करके हवा की गति से मंदार से उतर गया कर्ण....! अंगप्रदेश का सौंदर्य पल-पल नवीन हो खिलता है....! सूर्यपुत्र की आभा और प्राकृतिक सौंदर्य की सुषमा से अंगप्रदेश लावण्य सोने पे सुहागे जैसा दमक रहा है....! हम तो इस सौंदर्य को बस पढ़कर महसूस कर रहे हैं–

फैला है स्वर्णिम प्रकाश, है सोने का साम्राज्य,
रवि का है या अंगराज के कंचन-मणि का राज्य ।

अनिरुद्ध सर...! इस प्रज्ञा पर्व में बद्ध-बुद्धि की जड़ता ढीली पड़ गई... न! सच में यह प्रज्ञा पर्व प्रज्ञा को जगाने वाला मन्त्र है.....! मनोविज्ञान की सूक्ष्मता में तो समझ ही सूक्ष्मदर्शी बन जाती है न....! चलिए, अब आप कुछ खा-पीकर विश्राम करिए.....! बस, किसी तरह यह दिव्य-इतिहास-दर्शन नई पीढ़ी को समझ आए और इससे समाज की प्रज्ञा सही दिशा की डोर थामकर विकास की राह धरे... यही हम मानविकी विषय-अध्येताओं की एषणा है... न!

सर..! अपना खयाल रखिए... और प्रकृति से सेवित रहिए....! निःशुल्क सुगन्धित समीर और पावस का पानी ही असली धन हैं....! अरे एक बिरहा सुनेंगे... थोड़ा सा–

पवन बेनिया डोलावय... मेघ पनिया पियावय... अइसन देसवा हमार...

मतलब हमारे देश में ऐसी आत्मीय दृष्टि है.... बाकी तो नैसर्गिक सौंदर्य तो पूरे ब्रह्मांड की आभा है....!

पत्र का जवाब लिखिएगा–

प्रतीक्षा रहेगी–

प्रत्युत्तर की आशा में

आपकी शिष्या... अरे मैं तो आपकी बेटी जैसी हूँ न...!

तो... आपकी बेटी,
कल्पना दीक्षित

रथेन्द्र नन्हें जी के लिए चिट्ठी.....!

आदरणीय ताऊ जी...!

सादर प्रणाम....!

हफ्तों पहले सोचे थे कि आपके लिए पत्र लिखें...., लेकिन इधर इतना व्यवधान रहा कि बस अभिलाषा स्वप्नलोक में ही सिमट कर रह गई....! आप बताइए... स्वास्थ्य कैसा है...? विभाग से सेवानिवृत्ति मानसिक सुख तो देती ही होगी... न! आपको ताऊ कहने के पीछे यही रहस्य है.... मेरे पिताजी भी पिछले महीने ही आपके विभाग से ही सेवानिवृत्त हुए हैं...प्रदेश अलग है तो क्या हुआ. .नातेदारी तो बनती है....! मल्लाह ने राम से रिश्तेदारी जोड़ ली थी... यह कहकर कि "प्रभु आप सबको संसार के भवसागर से पार उतारते हैं और हम लोगों को इस नदी के पार उतारते हैं...! तो हम दोनों ही खेवइया ही हैं... इसीलिए बिरादरी में उतरवाई नहीं लेंगे... यही लोकसम्मत है....!'' इस पुलिस विभाग के दाँव-पेंच का भँवर भी न..., जनसेवा के उत्साह को सोख लेता है.... न! राजशाही का दबाव और वरिष्ठ अधिकारियों के आदेश में जीवन कठपुतली बन जाता है.... न! यही समाज-विज्ञान की संरचना का व्यूह है....! तो अब ताऊ जी कहना न्यायसम्मत हुआ... न!

तो ताऊ जी... अब कर्ण महाकाव्य के "भंवर पर्व'' पर ही आज बातचीत करेंगे....! संसार के रंगमंच पर एक मानवीय अस्तित्व कर्ण की जीवन यात्रा में... समाज के विविध विकृत-विद्रूप भाव-क्रिया का आना ही भंवर है...! नहीं बुझाया न...? दो भागलपुरी चादर कलकत्ता भिजवा दीजिएगा....पेंशन जब मिले तभी..! तो फिर से सुनिए.... कर्ण के धरती गिरने पर..... पेटी में नवजात को संरक्षित करके.... बेबस माँ उसे गंगा की धार पर अर्पित कर देती है...., यहीं से कर्ण महाकाव्य का प्रथम सर्ग "जनुष पर्व" आरम्भ होता है... जिसमें कुन्ती के मनोभाव-संसार की बारीकी उघरी हुई है....! द्वितीय सर्ग... मने "प्रारब्ध पर्व'' में सूर्य राधा के समक्ष अपने कृत्य को स्वीकारते हैं....! तृतीय सर्ग "बीज पर्व'' में सूर्य कर्ण के मन-जीवन में शिक्षा और रहस्य का बीज-वपन करते हैं...! चौथे सर्ग "चन्द्रातप पर्व'' में अधिरथ और राधा की वार्ता है... जिसमें राधा का विचार ही अंतिम निर्णय बन जाता है.....! पांचवे सर्ग "प्रज्ञा पर्व'' में परशुराम के सानिध्य में कर्ण की शिक्षा-दीक्षा का निर्वचन है.....! अब कर्ण जब वापस अंगप्रदेश में आ जाता है.... तो समावर्तन के बाद समाज से परिचित होता है.... यह समाज ही भंवर है.....!

देखिए ताऊ जी... यह ठीक बात नहीं है..... हमने इतनी बातें कर लीं और अभी तक कवि डॉ. अमरेंद्र का नाम भी नहीं आया..जबकि हमारे सम्बन्धों के सूत्रधार वे ही हैं....! तो अब देखिए... सुशिक्षित कर्ण जब वापस आते हैं गृहनगर तो वहाँ के उल्लास में कवि ने चम्पा नगरी के सौंदर्य को शब्दों में बांधने की कोशिश की है....! यह चम्पा नगरी वर्तमान चम्पारण (चम्पा-अरण्य) ही है। खैर... अभी चम्पा में छाईं अनन्त खुशियों की प्रभावोत्पादकता देखिए–

चम्पा के कण-कण में जैसे सूर्य समाया लगता,
इतनी शोभा है धरती पर स्वर्ग अघाया लगता;
अधिरथ के मन की उमंग की आज नहीं है सीमा,
किस अछोर की पुलक भरी जाती है धरती भीमा !

रथेन्द्र ताऊ.... कर्ण की महतारी तो चाह रही हैं... तुरन्त कर्ण का राज्याभिषेक हो... और वह अपना दायित्व निभाए....! लेकिन माँ की भावुकता पर अधिरथ ने काल की गति का हवाला दिया.....! अब कृष्णपक्ष में तो कोई शुभ काम होता नहीं है...बस यही कारण है राज्याभिषेक में होने वाले विलम्ब का...! अब यहीं कालचक्र का भँवर देखिए.... इसी कृष्णपक्ष में ही अधिरथ को धृतराष्ट्र का आमंत्रण मिलता है.... वे कर्ण को लेकर जाएंगे....! अधिरथ के मन की गति में तो यह है कि.... कर्ण हमजोली धृतराष्ट्र-पुत्रों से मिलेगा....! कौरव-पाण्डव भी अध्ययन पूर्ण कर चुके हैं...तो एक तरह से फ्रेशर्स का गेट-टू-गेदर हो जाएगा...! पिता अधिरथ की यह भी अभिलाषा है कि इस बार रथ संचालन करते हुए यह मेरी अंतिम यात्रा होगी... इसके बाद तो पुत्र कर्ण ही सब सम्भालेगा.....! लेकिन युवा पुत्र कर्ण अब मित्रवत् हो चुका है.... वह स्वयं रथ हाँकने को आकुल है.....! पिता अधिरथ को पीछे हटना पड़ा.... लेकिन पिता तो इसमें भी खुश हैं.... कि रथ हाँकते हुए पुत्र की संचालन कुशलता को साथ रहकर देखने का सुयोग मिल रहा है....! पुत्र रथ हाँकेगा इस खबर से माँ राधा तो इतराने लगीं...! अब इस प्रसंग में सुसज्जित रथ के सौंदर्य वर्णन में कवि-मन के अतिशयता की थाह टटोलिए आप–

सुन राधा के आनन पर मुचकुन्द खिले सौरभ से,
उतर रही हो स्वर्ण रश्मियाँ एक साथ ही नभ से ।
उधर द्वार पर सजा हुआ रथ अश्वों से सज्जित है,
जिसे देखकर दिव्य दिवस का नभ में रथ लज्जित है ।

मर्म देखिए..... एक तरफ रथ हाँकने चले पिता अधिरथ पीछे हट गए..... दूसरी तरफ रथ की शोभा को देखकर सूर्य का सात अश्वों वाला रथ भी

लज्जित है....! यही नई पीढ़ी की कमान है..... जिसमें काल में नवनवोन्मेष हो जाता है.....! चिंता भी है कि युवावस्था का उत्साह कहीं घातक न बन जाए–

दिशा-दिशा है, सावधान तो काल हाथ को जोड़े,
पौरुष का रत्नाकर फेनिल कहीं नियम न तोड़े ।

रथ की गति में काल पीछे रह जाता है....! अब ताऊ जी काल को तो हमने वेद (कालसूक्त) और वाक्यपदीय (काल-समुद्देश्य) में पढ़ा है....! लेकिन डॉ. अमरेंद्र ने इस विवेच्य काव्य में 'रथ की गति के समक्ष काल के संकुचित' हो जाने का प्रायोगिक चित्रण किया है....! रथ जब शून्य में... तीव्र गति से ऊपर उठता है धरती के सभी अवयव लघुतम दिखते हुए अदृश्य हो जाते हैं.....! रथ की गति में काल का प्रवाह ठहर-सा जाता है–

सिकुड़ गया था काल समेटे अपनी विस्तृत सीमा,
लघु-लघु में सब बदले थे जो कुछ थे भीमा-भीमा।

अब देखिए..... हस्तिनापुर में कर्ण पहुँचता है तो...रंगमंडप में द्रोण की विद्या और विदुर की नीति डगमगा जाती है। आपस में कानाफूसी होती है.... द्रोण कृपाचार्य से कहते हैं कि–"यही है जिसने भीम को बाँधकर उफनती नदी में छोड़ आया था....!" द्रोण के भी गुरु परशुराम ही थे... और कर्ण भी परशुराम से ही दीक्षा लेकर आया है....! भँवर देखिए...जहाँ गुरु-भाई होने का रिश्ता निभाना चाहिए... वहाँ आचार्य द्रोण स्वयं राजनीति का हिस्सा बने हुए हैं..... यहीं नीतिमार्ग मूर्छित होने लगता है.....! कर्ण में आचार्य द्रोण परशुराम को देखते हैं. ...! कर्ण अपनी शक्तियों से प्रकृति पर नियंत्रण रखने में सामर्थ्यवान है....!

कर्ण अगर चाहे तो वन में क्षण में आग लगा दे,
अंतरिक्ष के शून्य विवर में सोया मेघ जगा दे;
बरस पड़े सावन वसुधा पर आँधी फिर लहका दे,
एक तीर से अग्नि-हवा को चाहे तो बहका दे ।

इसी प्रसंग में कर्ण की खूबियों का वर्णन करते हुए कवि एक महायोद्धा के गुणों को भी कह जाता है....! आचार्य द्रोण ने पांडवों को वही सब सिखाया जो वे परशुराम से सीखकर आए थे...! यहाँ पांडवों का ज्ञान फोटोकॉपी है, जबकि कर्ण का ज्ञान ओरिजनल प्रिंटआउट है.... क्योंकि वह सीधे परशुराम से ही सीखकर आया है..... ज्ञान की निरंतरता में कुछ नया भी एडिट हुआ होगा.... अतः द्रोण भयभीत हो जाते हैं.....! अब ज्ञान को पराजित करने का भँवर गढ़ा जाता है.....! चूँकि द्रोण ने कर्ण को ज्ञान देने से वंचित रखा था... अतः यहाँ कर्ण द्रोण की किसी बात का मान तो रखने वाला नहीं है....! अब द्रोण की आशंका

को कवि ने कितनी खूबसूरती से शब्द दिया है.... देखिएगा–

सचमुच में यह कठिन काल है पांडव-पथ का रोड़ा,
घुन बन सकता है काया का, तिल भर का यह फोड़ा;

घुन जैसे गेहूँ की राशि को खोखला कर देता है.... वैसे ही कर्ण.... जोकि कुछ भी नहीं है लेकिन उसका तेज पांडव की जीवन-नौका में छिद्र करने में सक्षम है....! एक तरफ 'घुन' शब्द के प्रयोग ने एक ग्रामीण बखार खोल दी मन के रंगमंच पर...., दूसरी तरफ एक ही वाक्य में 'तिल भर का फोड़ा' कैंसर हो सकता है, जोकि प्राणघातक है.... यह सम्भावना दर्शायी गई है....! ऐसे में आचार्य द्रोण कूटनीति की राह सुझाते हैं.... कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजव्यवस्था के संचालन में साम, दाम, दण्ड के बाद अंतिम विकल्प के रूप में भेदनीति अर्थात् कूटनीति की व्यवस्था की...! लेकिन विडम्बना देखिए.... जल्दबाजी में मनुष्य ने उछलकर बीच की सीढ़ियां छोड़ दीं और अंतिम बिंदु पर पहुंच गया.....! यहाँ कूटनीति मानवीयता के उत्सर्ग को कलंकित कर देगी यह भी न सोचा आचार्य द्रोण ने..... क्योंकि उनकी जीविका राज्य पर आश्रित थी.....! गुरु की गुरुता बनी रहे इसलिए उसे मुक्त बौद्धिकता का स्वामी होना ही चाहिए...! योग्यता अपना परिचय स्वयं देती है... कर्ण भी कंचन के पर्वत सदृश मंडप की ओर बढ़ा तो–

सबकी आँखें उसी ओर हैं, विस्फारित, अति विस्मित,
प्राणों की हलचल है ठहरी, साँसें सब की विरमित ।

ऐसे में कृपाचार्य और द्रोण कर्ण के मन पर वार करके उसका मनोबल गिराने की युक्ति निकालते हैं..! मन के क्षरण से ही तन भी निस्तेज हो जाएगा. .इसीलिए–

क्षत्रिय है तो क्या होता है, सूतकर्म तो इस्थिर,
इस नाते तो कर्ण ठहरता, सूत पुत्र ही आखिर ।

यही समाज है जिसे स्वतन्त्र प्रतिभा की पराकाष्ठा बर्दाश्त नहीं होती..! जिस कर्ण के लिए कुन्ती विकल थी उसी के 'तेज-हरण' की योजना बन गई है... जिसमें सूर्य ने विद्या के बीज का सन्धान किया वही कर्ण सूतपुत्र कहलाएगा.....! जिसे राधा और अधिरथ ने अपना सर्वस्व समर्पित करने के लिए पोषा... वही सूतपुत्र कहकर अपमानित किया जाएगा....! जिसे परशुराम ने दीक्षा दी उसी का मन चोटिल होता रहेगा.... यह समाज का भँवर है.....! लोग कोसेंगे शल्य को.... लेकिन शल्य तो बस चाभी भरा हुआ खिलौना मात्र है उसका अपना विवेक कहाँ बचा....! सच कहें ताऊ जी तो यही आपका पुलिस विभाग है... जिसमें अपना विवेक बचता ही नहीं....! जनता गरियाती है सिपाही-दरोगा को..

लेकिन जनता की नजर में आने वाले वर्दीधारी तो बस शल्य हैं.... जो आज्ञापालन मात्र कर रहे हैं.... दबाव तो कहीं और से रहता है न....! खैर विभागीय भँवर का प्रपंच आपको दुःखी करने लगा न...! तो अब यह बात नहीं करेंगे...! कितनी चालाकी से यह जाल बुना हुआ है... देखिए–

खले अगर तो सिर्फ कर्ण को, नृप को कभी खले न,

अब देखिए...भीम को कर्ण ने बाँधकर डुबोया था...तो आचार्यों ने भीम से ही ही सूतपुत्र का सम्बोधन आरम्भ करवाया...! भँवर देखते जाइए...भँवर पर्व का...! भीम से सूतपुत्र कहवा करके आचार्य द्वय कर्ण के मन की पीड़ा नापने को तैयार रहते हैं..! भँवर में मानवीयता का क्षरण देखिए..पशुता का उत्कर्ष देखिए..!

कूटनीति तो कूटनीति है, अच्छी या मैली हो ।
सुनकर आँखें चमक उठी थीं कृपाचार्य की ऐसे
दबी राख में लहक उठी हो आग अचानक जैसे ।

अब कृपाचार्य कर्ण को रोककर... अर्जुन का कुल-वंश बताकर... कर्ण का वंश पूछते हैं और तभी दुर्योधन भड़क उठता है..! आदरणीय रथेन्द्र नन्हे.. . ताऊजी... यही प्रसंग रश्मिरथी के प्रथम सर्ग का है....! यों कहंक इस भँवर पर्व से रश्मिरथी का आरम्भ है...! दुर्योधन की गर्जना के साथ ही... तीन बाँस की दूरी पर एक कातर ध्वनि की झंकार गूँजी थी–

तेजपुंज जब प्रकट, यही तो क्षत्रिय की पहचान;
कहे नहीं क्या स्वर्ण कवच-कुंडल की आभा परिचय ?
देववंश का प्रकट अंश है, शक क्या। यह तो निश्चय ।

एक स्त्री-ध्वनि का रंगमंडप में गूंजना... कर्ण को ऊर्जस्वित कर जाता है.....! कुंती को सब ज्ञात है... चम्पा नरेश अधिरथ और रानी राधा से पोषित यह कर्ण ही अंगनरेश होगा....! काल का भँवर ही है.... जो राज्याभिषेक के समय कृष्णपक्ष का विचार हुआ और उसी समय हस्तिनापुर आना पड़ा....! ऐसे भँवर में गैरजरूरी बातों को महत्त्व न देकर जो जीवन को गति दे उसपर केंद्रित होना चाहिए.....! कर्ण ने भी कृपाचार्य की बात को छोड़कर... नारी स्वर के प्रति जिज्ञासा साध ली....! यही जीवन-प्रबन्धन है.... संसार के भँवर में...! अब भीम जोकि एक अपरिपक्व योद्धा है.... ने वाचालता दिखाई... और बकने लगा–

क्या हविष्य का अधिकारी है श्वान, पतित की जात ?

ऐसे कोलाहल में यद्यपि कर्ण का मन पिस चुका था... तब भी 'देव वंश का अंश' ही उसमें गूँजित रहा.....! भीम-कृपाचार्य ने जो जहर उगला था उसके

विष को यही वाक्यांश उतारता रहा...! इसी बीच कौरवों ने अंगराज की जयजयकार की....! यह बाहरी दुनिया का जयकारा था.... सोने का मुकुट और सिंहासन मन की पीर नहीं हरते हैं...! बाह्यजगत का कोलाहल अंतर्जगत तक नहीं पहुंच पाया.... कर्ण भीतर ही बिलखता रहा–

'अंगराज की जय हो' करता नाद तुमुल कौरव-दल,
कर्ण-शीश पर क्षत्र रखे दुर्योधन पागल-पागल,
पर इस सबसे दूर अभी भी कर्ण कहीं है खोया,
किस-किस की बातों से कितना तड़पा, कितना रोया ।

ऐसे दुर्दिन में प्रकृति का सान्निध्य ही मन का मरहम बन जाता है...? मौन साधना करते हुए... बन्द आँखों को आकाश में उन्मीलित किया.... और सप्तरश्मियों में पितृत्व के एहसास मिलने लगे....! ब्रह्माण्ड का विस्तार कर्ण में उतरने लगा.... यह पितृत्व का असर है... जिसमें समग्रता है... कर्ण में समग्र लोक-ब्रह्माण्ड प्रविष्ट होने लगा... ऐसे में मृत्युलोक के सीमित आयु वाले मरणशील प्राणियों के तानों की क्या बिसात....! डॉ. अमरेंद्र ने जीवन को साधने का सलीका दिया है... जिसमें रोने-धोने के बाद का व्यापक विकल्प प्रकृति का विस्तार ही है...! प्रकृति में समन्वित जीवन का नजारा देखिए–

लगा कर्ण को वही इंद्र है, विवस्वान है, पुष है,
अपना ऐसा रूप निरख कर कितना प्रमुदित खुश है,
वही प्रकृति के रोम-रोम में भास्वर बना समाया,
जड़-चेतन का हर्ष-शोक उसके ही मन की छाया।

अनुभूतियों के उपरियुक्त स्तर में वेदांत का रहस्य है... कर्ण अहम्ब्रह्मास्मि का साक्षात्कार करता हुआ दीखता है....! वेदांत के जटिलतम ज्ञान का यह सहजतम प्रयोग दुर्लभ है....! यहाँ व्यष्टि और समष्टि का सायुज्य है! अब देखिए... मन का मौसम के साथ ही अटूट सम्बन्ध कैसे जुड़ा हुआ है...

वही चौत, बैसाख, जेठ है, ऊर्जा का है आश्रय,
क्या आषाढ़य वही सावन है, भादो है रस अक्षय;
आश्विन अगर समाहित उसमें, कार्तिक-अगहन संग हैं,
पूस, माघ, फागुन के सारे खुले-खुले से रंग हैं...!

इससे संक्षिप्त बारहमासा मुझे अब तक कहीं नहीं मिला....! इस बारहमासा के मानव-व्यक्तित्व से अन्तर्सम्बन्ध पर कभी विस्तृत लिखेंगे...! अभी बस इतना ही कि.. जहाँ भँवर का उलझाव है वहीं काल की व्यापकता में ही इन उलझनों से परे रहने का मार्ग है....! तभी तो–

रोमांचित हो गये कर्ण के रोम-रोम हो पुलकित,
जाग उठे हों सारे गुण ही पूर्व जन्म के संचित।

प्रकृति के स्पर्श में विषाद बह जाता है.... एक अदृश्य स्पर्श का सम्भल थाम लेता है...और वही भँवर सहज रूप में स्वीकृत हो जाता है...! यहाँ कवि ने मानवीय सामर्थ्य के विस्तार हेतु प्रकृति को सहचर बनाया है। भँवर के बीच ही हमारी दृढ़ता दोगुनी होती जाती है....! एक तरफ कौरवों के दल में खुशी है दूसरी तरफ पांडव और कृपाचार्य व्यथित हैं...! ऐसे दोहरे वातावरण से..विलग होकर कर्ण रथ भगाते हुए गृहजनपद अंगप्रदेश पहुंच गया... अब कौरव-पांडव आपस में उलझें...! यही समाज का... संसार का... जीवन का और मानव मन के रंगमंच का चलचित्र है–

कहीं हर्ष है, कहीं व्यथा है, कहीं मौन-कोलाहल,
कहीं तमस की छाया छायी, कहीं ज्योति है झलमल ।

ताऊ जी आश्चर्य है न.... एक कवि इतने भावों को एक साथ लिए हुए जीवन की व्यापकता के गीत गा रहा है.. न! खैर... यह चिट्ठी हम बहुत शॉर्टकट में लिखें हैं..... अरे... बच्चे हमारे डॉक्टर्स के लिए अबूझ-पहेली बने हुए हैं! इसी सीमित सांसारिकता से विस्तृत मेधा हारने लगती है... तभी प्रायोजित कार्यों में विलंब हो जाता है..! समग्र कालचक्र के अधीन है..! आप अपना ध्यान रखिएगा... और पेंशन में मेरा हिस्सा सुरक्षित रहना चाहिए..... भागलपुरी ओढ़ने वाली चादर जाड़े से पहिले भेज दीजिएगा....! बाकी इधर हम एमए अंतिम वर्ष के बच्चों को नेट परीक्षा की तैयारी के लिए एक बैच आरम्भ कर दिए हैं...! अरे हम फीस आदि नहीं लेते बच्चों से.... अर्थार्जन मेरा उद्देश्य नहीं है... विद्यादान महादान है.... न! वैसे भी मेरी क्षमता लोगों के कल्याणार्थ जितनी सुलभ होती रहे... उतनी ही अस्तित्व की सार्थकता है..! बाढ़ में बहुत बीमारी फैलेगी...बचकर रहिएगा...!

पेड़-पल्लव..फूल-पत्ती...से रिश्तेदारी खूब निभाइए...उम्र को ऊर्जा मात दे देगी..! आशिर्बाद भेजते रहिए....

आपकी बिटिया
डॉ. कल्पना दीक्षित

सखी सुशीला ओझा जी के लिए चिट्ठी.....!

प्रिय सखी....!

सुशीला जी...!

सप्रेम भेंट-अंकवार...!

अबकी कलकत्ता में सावन भले मद्धिम है... लेकिन मन के ताप में अन्तस् पिघलता जाता है... और जिंदगी सैलाब में गोते लगाए जा रही है....! उपनिषदों का आत्मज्ञान जीवन-यात्रा को साधे हुए है.....तभी तो समय की गति में सामंजस्य बनाकर....नियति के खेल में हर बाजी मैं ही जीत लेती हूँ...! इस आत्मिक प्रबोध में ही कर्ण महाकाव्य के "प्रबोध पर्व'' की परिचर्चा औचित्यसापेक्ष है... न! मानवीय-अस्तित्व जन्म से ही बोध और अवबोध की अनन्त यात्रा का पथिक है...! जनुष, प्रारब्ध से लेकर ज्ञान-विज्ञान के अर्जन के उपरांत सांसारिक भँवर में चेतना उलझने लगती है....! इसी उलझाव में आत्मिक चेतना को अवसाद-विषाद का पाश आश्रय देता है....! देखा भी यही जाता है कि एक तरफ इहलौकिक दम्भ-द्वेष का भँवर है तो दूसरी तरफ विषाद का पालना है....! सांसारिक भँवर से क्षुब्ध होकर ज्ञानी-विज्ञानी भी विषाद के पालने में विश्राम पाने लगते हैं....! चेतना अचेत होने लगती है.... जीवन-यात्रा के इसी पड़ाव पर मन-बुद्धि के संतुलन से जन्य आत्मिक प्रबोध ही भँवर के जाल और अवसाद-विषाद से ऊपर उठा सकता है... न! खैर... अब आपको पहेली नहीं बुझाएंगे... कर्ण महाकाव्य के सातवें सर्ग में उदास हृदय वाले कर्ण के जीवन-अध्याय के तमस को... कवि डॉ. अमरेंद्र की प्रज्ञा-दृष्टि के आलोक में देखेंगे.... बस समझिए अतीत का एक एलबम खुल गया है.... सच कहें तो मौन इतिहास मुखरित है...!

तो सखी...! परशुराम से विद्या पाकर... पिता अधिरथ के साथ कर्ण हस्तिनापुर घूमने गए तो थे... लेकिन वहाँ राजव्यवस्था में उलझे द्रोणाचार्य... कृपाचार्य... पाण्डव...आदि की भेद-नीति के वाचिक प्रहार से चोटिल हो गए...! अब सखी देखिए... प्रज्ञा-पर्व में डॉ. अमरेंद्र ने बहाने से कह ही दिया था कि गुरु को प्रकृति-सेवित परशुराम की तरह होना चाहिए... द्रोण की तरह राजव्यवस्था का अंग बनकर शिक्षा का कल्याण सम्भव नहीं है...! मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है... लेकिन समाज का भँवर-जाल बुद्धि-विवेक के लिए घुन भी है और दीमक भी....!

प्राकृतिक उपादानों से मन तो परिपुष्ट हुआ कर्ण का... लेकिन हृदय को वेध रही कटाक्ष... तिल-तिल तड़पाती रहती है....! पीड़ा का वैभव यही है.. कि

व्यथित मन हो तो आँखों पर परदा पड़ जाता है... प्रात का उजास... भरी आँखों से धुंधला ही दिखता है.... आँखों में उमड़ते दर्द के सामने... सागर भी लघुतम बन जाता है... कर्ण की तकलीफ का अंदाजा लगाइए–

विभा से फूटती है कालिमा-कालिख, उजागर,
बहुत गुमसुम, विरल नद-सा दिखाता सिंधु सागर ।

किसी से सामना होने पर सायास आई बनावटी हंसी को भी...सुगन्ध-विहीन फूल समझिए... जिसकी तात्त्विकता संदिग्ध ही रहती है...! हस्तिनापुर के रंगमंडप... का दृश्य ही कर्ण के मन पर हावी है....! और साथ ही रनिवास से आई एक अनजान स्त्री की आवाज "प्रकट यह देववंशी' मथे जा रहे हैं कर्ण के मन को...! सारे विषाद झड़ने लगते हैं.... कर्ण जिज्ञासु की भाँति सोचता है कि–

उठी थी कौन मेरे पक्ष में लेकर गवाही,

यह जो "कौन'' शब्द है... न सखी...! ई हमको ऋक् संहिता के हिरण्यगर्भ सूक्त की याद दिलाता है....! बीज पर्व में कर्ण के मन में जन्म-रहस्य का बीज वपन हो चुका है... फिर भी जिज्ञासा अवशिष्ट ही रहेगी...! कब तक रहेगी बता दें... जब कि सत्य से साक्षात्कार न हो जाए तब तक...! अब इस "कौन'' शब्द से हमें हिरण्यगर्भ सूक्त की याद काहे आई... बता दें...! तो सुनिए. . हिरण्यगर्भ सूक्त के सभी मन्त्रों का अंतिम चरण हैक–'कस्मै देवाय हविषा विधेम' ऋषियों ने मन्त्रों का साक्षात्कार किया था... समग्र ज्ञान-विज्ञान के बाद भी वे कहते हैं कि–किस देवता का हम हवि से विधान करें..? कर्ण सांसारिक प्रपंच के भँवर में उलझा हुआ भी...उस नारी स्वर के प्रति जिज्ञासु है...यहीं से प्रबोध का प्रथम सोपान आरम्भ होता है....! उस निराकार-निर्विकार परंब्रह्म की राह भी कः अर्थात् कौन से ही आरम्भ होती है। परंब्रह्म का अंश जीव है... कुंती का अंश कर्ण है...! संसार के मायाजाल में जीव उलझता जाता है... हस्तिनापुर की रंगशाला में भेद-नीति और व्यंग्यात्मक प्रहार ने कर्ण को जकड़ लिया है....! सखी... डॉ. सुशीला ओझा...! बोर तो नहीं हो रही हैं....? अरे... हम तो कवि की चालाकी प्रकाशित कर रहे हैं.... जिन्होंने साहित्य के बहाने... दर्शन पिरोया हैं महाकाव्य में. ...! चलिए... अब माया और ब्रह्म की बात नहीं करेंगे....! बस यही समझिए की उदात्त-मानवीयता से शून्य लोगों के बीच फंसा बेचारा कर्ण वैसे ही लाचार है... जैसे झाड़ियों में फंसा हुआ हिरण-शावक....! "कौन" शब्द पर जिज्ञासु कर्ण फिर उलझने लगता है... भाग्य और नियति के फेरे में...! नियति की कोठरी में कर्ण का भाग्य साँकल ठोंककर छिपा है.....! अपने भाग्य को पाने के लिए कर्ण को नियति से ही जूझना होगा... न! जीवन का संघर्ष... कई स्तर पर होता है... लोगों

से... से जूझना सहज है लेकिन स्वयं से जूझते रहना...सबसे जटिलतम युद्ध है...! कहीं एक जगह से से उठकर... कहीं दूसरी जगह जाने पर भी... बीती यादें साये की तरह चिपटी रहती हैं...! अतीत की मीठी यादें बेवफा होती हैं.... और कड़वी यादें ही बढ़ते जीवन को सहारा देती हैं...! अकेला कर्ण.... विराट प्रकृति के आश्रय में भी नितांत अकेला कर्ण....

चला आया सँभाले मन को वह गंगा किनारे,
विगत की भग्न, मैली, श्याम सुधियों के सहारे ।

अब कर्ण गंगा से अपनी जीवन-कथा पूछता है...! विज्ञान के अनुसार पृथ्वी पर सर्वप्रथम जलचर जीव ही अस्तित्व में आए.... कर्ण भी गंगा में ही जन्मकथा के अनुसन्धान हेतु प्रवृत्त होता है...! बीज पर्व में मन्दार-पर्वत पर यद्यपि जन्म-रहस्य का सूत्र मिल गया था... लेकिन सामाजिक रहस्य यह है कि यह कथा... बिना रथ-अश्व के हस्तिनापुर भला कैसे पहुँची....! अरे... सखी... ऐसी बातों की गति त्वरित होती है...! कर्ण भी अब सामाजिक परपंच वाला बुझउअल बूझ ही जाएगा...! आँख मूंदकर.. हाथ जोड़कर... स्थिर कर्ण... आज रहस्य जानने हेतु दृढ़ हैं...! जानना चाहते हैं कि.... खुशियां... व्यथा की सहेली काहे बन गईं.....! अब प्रबोध की पूर्वपीठिका तैयार हो गई है....! सखी... यहाँ कवि डॉ. अमरेंद्र की शिल्पकारी देखिए.... हाथ जोड़े.. आँख मूंदे... पत्थर बन कर्ण जब आँख खोलता है तो–

खुली आँखें तो सम्मुख रश्मियों का ही पुरुष था,
नहीं कोई कहीं था क्षोभ मुख पर, बहुत खुश था ।

ध्यान दीजिएगा सखी...हस्तिनापुर की रंगशाला में...माँ चीख उठी थी... कि–''प्रकट यह देववंशी'' और अब एकांत में सूर्य ने सम्भल दिया है... .पुत्र को...! जायज-नाजायज का हिसाब लगाने वाली सामाजिक इकाइयों को... इतिहास के इस मर्म को समझना चाहिए न...! ये समझ लीजिए सखी... कि इस प्रबोध-पर्व का मुख्य आकर्षण है–अवसाद-विषाद से मुक्ति, सूर्य-कर्ण की वार्ता के अंतर्गत 'दुर्योधन-भानुमति' विवाह परिचर्चा, कुन्ती का आवाज का रहस्योद्घाटन...! कर्ण पैर छूने झुके... सूर्य ने उठाकर सीने से लगाया....और एक पत्थर के आसन पर बैठाया.... इस अवसर पर व्यथित कर्ण और सन्तप्त सूर्य के भाव शब्दों की सीमा से परे हैं.... बस उन्हें अंतर्मन में चित्र खींचकर महसूसा जा सकता है...! सूर्य कहानी सुनाते हैं पुत्र को....कोई काल्पनिक कथा नहीं... बल्कि यथार्थ वृतांत...! इस कथा में सूर्य अकेले नहीं हैं... अपितु मन-नयन-वाणी में कुन्ती समाई है...! अर्द्धनारीश्वर खाली भोलेनाथ ही नहीं हैं.... सूर्य भी समयसापेक्ष

अर्द्धनारीश्वर हैं, तभी तो शिव-आराधना के साथ ही सूर्य-आराधना का भी विधान है लोक में...!

लगे कहने किरण के देवता हर इक कथा को,
रखे मन में, नयन में, बोल में सम्मुख पृथा को;
'सुनो वषुसेन, उस दिन रंगशाला में सुना जो,
तुम्हारी माँ पृथा थी, झूठ कुछ न था, हुआ जो ।

यहाँ सूर्य कर्ण को यह भी बताते हैं कि यह रहस्य केवल सुयोधन को ज्ञात हो चुका है...! जबकि अन्य सभी हार-जीत के द्वंद में उलझे चेतना-शून्य थे. ...! परिस्थितियों की परतें खोलते हुए... सूर्य कर्ण को समझाते.. बताते... हैं कि. .. द्रोण को ज्ञात ही नहीं था कि... अधिरथ आमंत्रित हैं हस्तिनापुर में....! द्रोण के समझ में तो यही आया कि कर्ण अचानक रंगशाला में आ गया कहीं से... और इसी से युद्ध-कौशल की व्यूहरचना में व्यवधान पड़ गया...! सूर्य... दुर्योधन की महत्त्वाकांक्षा बताते हैं.. कि वह (दुर्योधन) तो तुम्हारे (कर्ण के) पृथ्वी पर शासन करना चाहता है...! सही यह भी है कि दुर्योधन के एहसानों से मुक्त होना भी सहज नहीं है...! अतः जो हो रहा है... और जो होगा...उसी यात्रा-प्रवाह में... समझ खिल उठेगी..! सखी... कवि की पंक्ति देखिए–

सुनो, वषुसेन, जो भी घट रहा, जो भी घटेगा,
उसी के वेग से छाया हुआ कुहरा छटेगा ।

सखी.. देखिए... उपरियुक्त पंक्तियों में कवि गीता का उपदेशक लग रहा है.... न! ऐसा है... प्रबोध-पर्व है ही ऐसा... जिसमें वेदांत का मर्म निहित है...! अब सूर्य... कर्ण को कुंती से जुड़ी हुई.... कुछ और कथाएं बताएंगे...जिससे दुर्योधन का वास्तविक चेहरा सामने आए...! और कर्ण को दुर्योधन के प्रति सचेत भी करेंगे... लेकिन नई पीढ़ी... कितनी भी आज्ञाकारी क्यों न हो... कुछ न कुछ तो अपने मन का करती ही है...! कर्ण भी प्रबुद्ध होकर भी मनमानी करेगा.... वजह भले ही दृढ़ ढूंढ़ ले...लेकिन पिता के सुझाव की अवमानना हो ही जाएगी. ..! खैर.. पहेली नहीं.... इतिवृत्तात्मक कथावस्तु देखिए–

लाक्षागृह की बातें बताते हुए... सूर्य कर्ण से कहते हैं कि... वर्णावर्तत में जब कुंती...लाख के बने महल में थी...तभी उसने सोचा था कि भले ही कष्ट हो.. लेकिन भगदत्त की पुत्री के ब्याह होने तक वह(कुन्ती) उसी लाख के महल में ही रहेगी...! पृथा... मने कुन्ती... भानुमती का स्वयम्बर देखना चाहती थी... ! कुन्ती ने जानबूझ स्वयम्बर से पाण्डवों को दूर रखा था...! भगदत्त की छोटी बेटी वृषाली कर्ण को पसंद करती थी... ऐसे में बड़ी बेटी को पहले ब्याहना समाजोचित

था..! कुन्ती को भय था कि... जल्दबाजी में भगदत्त की बड़ी बेटी किसी दुराचारी से न ब्याह दी जाए...! और हुआ भी वैसा ही...! कर्ण स्वयम्वर में भानुमती को जीतकर दुर्योधन को सौंप देते हैं...! सूर्य कर्ण को ही उसके कृत्य याद दिलाते हैं... यह भी प्रबोध ही है...! यह भी सत्य ही है कि भानुमती को स्वयंवर में जीतना दुर्योधन के लिए असम्भव ही था...! भानुमती के स्वयंवर में कर्ण ने मगध के राजकुमार को पराजित किया था... सूर्य कर्ण को याद दिलाते हैं कि... उस स्वयंवर में–

सुदर्शनचक्र पौरुष, तब तुम्हारा जग गया था,
तुम्हारा तेज अनजाने ही मुझसे लग गया था।

देखिए सखी.... माँ ही नहीं कहानी गढ़कर सुनाते हुए बच्चे को सुलाती है..., अपितु पिता भी पौरुष याद दिलाते हुए... अवसाद से मुरझाए हुए पुत्र को जगाता है....! बच्चों को उनका समय देना ही चाहिए... न! नहीं बच्चे अकेले पड़ जाते हैं जिंदगी की भँवर में...! सखी... यही शास्त्रों का कांतासम्मित उपदेश है...! बाकी वेद तो गुरु/प्रभुसम्मित हैं और पुराण मित्रसम्मित है...! तो कहने का मतलब यही है कि... साहित्य कांतासम्मित लोकव्यवहार सिखाता ही है....! और आज के समाज को ऐसे ही प्रसंग दिशा भी देते हैं....!

अब देखिए सखी... कवि की शिल्पकारी... सूर्य की वाक्चातुरी में...! सूर्य बताते हैं कि– बेटा कर्ण! भानुमती स्वयम्वर में तुम्हारी वीरता की चमक से आकाश में एक उज्ज्वल रेखा खिंच गई थी... लेकिन अफसोस कि वह प्रकाश कुंती न देख सकी...! क्योंकि उसे उसी समय गंगापार करके पलायन करना पड़ा. ...! अब इस पलायन का कारण बताने में ही सूर्य कर्ण को दुर्योधन की दुर्बुद्धि से अवगत कराएंगे...!

सुयोधन को मिला क्या लाह का घर क्षार करके?

महाभारत के प्रसंग में कर्ण दुर्योधन को आत्मीय... मित्र समझता है... दिनकर ने भी सहोदर भ्राता से बढ़कर.... माता से अभिन्न लिख दिया है। लेकिन कवि डॉ. अमरेंद्र ने इतिहास के गर्त में यह साफ-साफ देखा है कि कर्ण को दुर्योधन के मन-मस्तिष्क का पूर्ण ज्ञान था...! अर्जुन से बैर का कारण दुर्योधन नहीं अपितु खांडव वन का दाह है...! बहुत स्पष्ट अंतर्दृष्टि है कवि की.... बिना किसी उलझाव के...चेतना प्रबुद्ध है...! सूर्य कर्ण को दुर्योधन की सीमित परिधि वाली बुद्धि दर्शाते हैं–

भला वह क्या समझता था कि पांडव जल मरेंगे,
बड़े निश्चिंत होकर श्राद्ध पाँचों का करेंगे ?

राजव्यवस्था की बारीकी बताते हुए सूर्य.... कर्ण को भविष्य की झांकी दिखाते हैं–

समझना पांडवों को दीन, भारी भूल होगी,
वही कल भूप होगा आज वन-वन जो वियोगी;
लगा तो काल का टीका सुयोधन-भाल पर है,
तभी विपरीत मति-चिंता, नियति की चाल पर है।

कौरवों की भावी विनाश-गाथा सूर्य कर्ण को कह सुनाते हैं... साथ ही पुत्र को सजग भी करते हैं–

तुम्हारा मन सुयोधन के लिए जितना तरल है,
कहाँ तुमको पता इसका लगेगा, यह गरल है;

इन्हीं दो अर्द्धपंक्तियों में ही प्रबोध-पर्व का तत्त्वज्ञान निहित है..! दुर्योधन के साथ कर्ण की आत्मीयता ही कर्ण के जीवन हेतु विष है...! पिता ने पुत्र को तो सबकुछ बता डाला... लाक्षागृह में आग लगाने वाले प्रसंग का उदाहरण देकर दुर्योधन का असली चेहरा अनावृत किया है... अब बेटे की मर्जी... वह जो उचित समझे करे...! सूर्य कहते हैं कि–

भरम ये हो रहा तुमको, तुम्हारा मित्र है वह,
भयानक स्वप्न का चलता हुआ सा चित्र है वह ।

सूर्य कर्ण को कौरव-पांडवों की अंर्तकथा की परतें उघारते हुए.... बहुत कुछ बताते हैं...! लाख के महल को जलाने के प्रारब्ध का फल तो दुर्योधन को भोगना ही होगा...! अब राज्य पर एकाधिकार दुर्योधन के लिए आकाशीय स्वप्न मात्र है...! वैसे भी जब पांडवों के साथ कृष्ण हैं तो... दुर्योधन की कोई भी कुटिलता सफल नहीं हो पाएगी–

वहाँ क्या प्रेत कर लेगा, जहाँ पर कालभैरव?

कथानक की शिल्पकारी में ही कवि मानवीयता की प्रतिष्ठापना कर ही देता है...सूर्य प्रसंगवश कहते हैं कि मनुष्यता बनी रहे तो सूत होना ही श्रेष्ठतम है..! सूर्य अपनी रश्मियों के आलोक में भविष्य देखते हुए कहते हैं कि... कृष्ण कुछ भी नहीं करेंगे... सब कुछ स्वतः घटित होता जाएगा...! युद्ध की हवा बहेगी और मानवीयता के आकाश पर आच्छादित दुर्बुद्धि बादल स्वयं पखेरू की तरह उड़ते जाएंगे...! जब एक तरफ नागनाथ हों और दूसरी तरफ साँपनाथ तो किसका साथ दिया जाय यह समस्या स्वाभाविक ही है... ऐसे में सूर्य सही राह सुझाते हैं कि सन्देहध्संशय में धर्म का ही साथ देना उचित है....! धर्म का मान रखने हेतु परम्परा का ध्यान रखना आवश्यक है...! सूर्य कर्ण को धर्म की राह

चलने हेतु उदाहरण देते हैं–

यथा ज्यों तात तेरे अंग के हैं विश्वजेता,
धरा पर धर्म से ही राज्य के हामी, प्रणेता;
जिन्होंने पूर्वजों के मान को जोगा, सम्भाला,
नहीं होने दिया है आज तक धूसर या काला ।

सखी डॉ. सुशीला जी... कवि की कीमियागिरी देखिए....! कीमियागिरी मतलब... सोना बनाने की एक रासायनिक अभिक्रिया...! इतिहास के अंधकार में भविष्य गढ़कर...दिग्भ्रमित वर्तमान को...दिशा देने के लिए...संवाद...उदाहरण... प्रसंग... कथा-कहानी... सिद्धांत सबकुछ है इस महाकाव्य में...! तभी तो जो कहीं नहीं है वह अनुसन्धान इस मौलिक सृजन में है...! सूर्य... अपने पुत्र को स्वयं से भी बेहतर रूप में देखना चाहते हैं... हर पिता यही चाहता है.... न! देखिए... कर्ण से सूर्य कहते हैं–

तुम्हें तो और ऊपर उठ के चलना है यहाँ से,
बहुत आसान है चढ़ना अमरगृह तक जहाँ से ।

अब देखिए... सखी...! कवि की पच्चीकारी...! सूर्य अपने पुत्र कर्ण को सामाजिक जाल की बुनावट समझाते-बुझाते... उसके व्यक्तिगत जीवन पर वार्ता करने लगे....! अंगप्रदेश में त्रेतायुग की मर्यादा है... इस मर्यादा के बने रहने का कारण पूर्वजों का पुण्य ही है...! इसी मर्यादा के वशीभूत होकर कर्ण ने पिता अधिरथ की आज्ञा का अनुपालन किया...! पुनर्नवी हस्तिनापुर के सारथी की कन्या है... जिससे अधिरथ ने कर्ण का ब्याह किया है...! इसी प्रसंग पर सूर्य कर्ण से विमर्श करते हुए कहते हैं भले ही पुनर्नवी हस्तिनापुर से अंगप्रदेश आ गई है, लेकिन वहाँ की तुलना में उसे अंगप्रदेश मलीन प्रतीत होगा...! पुनर्नवी कभी चम्पावासिनी न बन सकेगी... उसका मन हस्तिनापुर में ही लगा रहेगा...! यहाँ कवि स्वाभाविकता का विश्लेषण करते हैं... कि पुनर्नवी परिवार को तो मन से अपना लेगी लेकिन अंग की प्रकृति को अपना न बना सकेगी...! हस्तिनापुर के राजवैभव का सुख भोगी हुई कन्या... नैसर्गिक सुख का मोल भला कैसे समझ सकेगी....! इतिहास की यह प्रासंगिकता ही कृति को कालजयी बनाती है... यही इस महाकाव्य का कालजयीपन है....! राजसी मनुष्य लोहे के पिण्ड हैं... उन्हें धन-वैभव का चुम्बक आकर्षित करता ही है... ऐसे मनुष्य को मिट्टी की सोंधी महक... तुलसीचौरे का अक्षत... हवन का धुंआ... रास नहीं आता...!

अयस है जो मनुज तो धन है चुम्बक का ही पर्वत,
कहाँ फिर मिट्टी का सौरभ हवन का हविश-अक्षत !

पालक पिता अधिरथ की मर्जी से पुनर्नवी से विवाह हो चुका है कर्ण का.... उसके बाद जनक सूर्य गृहस्थी की बारीकी समझाते हुए.... दूसरे विवाह का सुझाव देते हैं....!

पराई भूमि की माया से जिसका मन बंधा हो,
उसे स्वदेश बाँधेगा कभी, उम्मीद क्यों हो !
इसी से कह रहा हूँ, तुम वृषाली को वरोगे,
तुम्हारे तात का आदेश जो है, वह करोगे ।

सूर्य कर्ण का हित चाहते हैं.... वे कहते हैं कि यह केवल मेरी इच्छा नहीं अपितु अधिरथ भी यही चाहते हैं...! पिता की इस आज्ञा को सुनकर कर्ण पसीने से तरबतर भीग जाता है...! लेकिन सूर्य समझाते हैं कि वृषाली राजा भगदत्त की कन्या है..., वह शासन-प्रबन्धन भलीभांति सम्भाल लेगी....! दो पत्नियों से होने वाली जीवन की दुश्वारियों पर विचार मत करो.... अपितु एक राजा के व्यापक दायित्वों को सोचो.... इसी में लोकहित है...! सूर्य कर्ण से कहते हैं कि–''तुम्हारा और वृषाली का पुत्र ही अंगप्रदेश का भावी सम्राट होगा... अतः वृषाली का वरण श्रेयस्कर है....! सूर्य कर्ण को यशस्वी पुत्र होने का आशीष देते हैं... इसी बहाने कवि का प्रकृति-चित्रण देखिए... कालिदास भी मौन लगते हैं इस भावाभिव्यक्ति के समक्ष–

इसी का पुत्र होगा अंग का सम्राट भावी,
सुयश-गोदावरी से चीर, पद्मा, सिंधु, रावी;
मलय की गंध से सुरभित बहेगा भुवन भर में,
उसी की बात होगी लोक में, ऊपर अमर में ।

इतनी बातों के बाद तो कर्ण का अवसाद-विषाद उड़न छू हो गया...! अब सूर्य कर्ण को निकटतम भविष्य दिखा रहे हैं..., जिसमें कर्ण के राज्याभिषेक का दृश्य है... साथ में राजरानी की भी उपस्थिति है....! इस काल्पनिक दृश्य का रोमांच जीवन के प्रति लालसा जगाता है...! इसी अवसर पर सूर्य वृषाली के अनन्य रूप... गुण... को बखानते हुए... एक और रहस्य उद्घाटित करते हैं... कि वृषाली ने मन ही मन कर्ण का वरण कर लिया है...इसी लिए कर्ण का चित्त किंचित् इतर है..! फिर सूर्य कर्ण को कुन्ती की याद दिलाते हैं...कि जब तुम्हारा राज्याभिषेक होगा... तो हो सकता है तुम्हारी माँ वन-वन भटक रही हो... इस प्रसंग में कवि का उपमा-विधान देखिए... सखी–

भटकती तारिका-सी नीलकंठी धुर गगन में ।

कर्ण माँ की याद में दुःखी न हो... इस नाते सूर्य कहते हैं कि.... माँ

कहीं भी रहे उसका आशीष तो तुम्हें मिलता रहेगा..... न!

जगत में ख्यात, माँ का प्यारय ऊपर नील अंबर ।

अब पिता-पुत्र के विलग होने की घड़ी आ गई... तो सूर्य ने कहा कि अब कोई संभावना... आशंका... मन पर न ठहरने दो.... प्रबोध के ताप में तो सब पिघल ही जाता है... न! पिता... पुत्र को गले लगाने के लिए पास बुलाते हैं...! युवा पुत्र का तेजस्वी पिता से गले मिलना.... जैसे भावों की गंगा में... धड़कनों का कलरव हो...! पिता के स्नेह में तो पुत्र आनन्दित हुआ... लेकिन पिता के जाते ही फिर.... संकल्प-विकल्प घेरने लगा...! यही आज की पीढ़ी है.... जिसमें निश्चयात्मकता का अभाव है....! यहीं तार्किक होना खतरनाक रहता है....! बड़ों की बात को आप्तवचन समझकर मां लेना चाहिए...! लेकिन कर्ण तो सोचने लगा कि पिता ने दुर्योधन को गरल क्यों बताया...! उन्हें इस मित्रता में कमी क्यों दिख रही है...! दुर्योधन के उपकार का प्रतिदान तो देना ही होगा... लेकिन इससे पिता की आज्ञा का उल्लंघन भी हो ही जाएगा...! अब दोराहे पर खड़ी नई पीढ़ी... पिछली पीढ़ी की बात को एक तरफ रखकर.... अपने ही निर्णय को पोषित करने हेतु तमाम तर्क बटोर लेती है...! कवि ने भी यहाँ इसी लोकाचार की परिपुष्टि हेतु "मैत्री-महिमा" का आख्यान संयोजित किया है।

हाँ... सखी... मैत्री-महिमा आप भी ध्यान रखिएगा... थोड़ा...! कर्ण कहता है कि भले ही दुर्योधन असली मित्र नहीं बल्कि मित्रता की फोटोकॉपी हो लेकिन उसमें मेरी आत्मीयता बस गई है...! अपने भलाई के लिए.. दोस्त को छोड़ना ठीक नहीं है... यह मानव-धर्म के विरुद्ध है...! चाहकर भी ऐसा सम्भव नहीं... यह मित्रता का सम्मोहन है सखी...! तंत्रविद्या वाला सम्मोहन.... कभी इस पर चर्चा करेंगे...! खैर... कवि विरचित मैत्री-महिमा देखिए–

विपद में मित्र को जो छोड़ देता, घोर पातक,
भले ही क्वार कुछ छोड़े न छोड़े, पर न चातक ।
मेरा जीवन समर्पित मित्र की खातिर, सही है,
बड़ा इससे नहीं यह राजवैभव या मही है ।

अब देखिए... सखी...! कर्ण का आत्मालाप....! यहाँ मित्र की महिमा के समक्ष पिता का प्रबोधज्ञान पीछे रह गया... लेकिन वृषाली को स्वीकारने मन बना लिए हैं कर्ण...! तात्पर्य यह है कि... नई पीढ़ी पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं है... थोड़ा बहुत वह बड़ों का मान रखती है....! कर्ण स्वयं को तुष्ट करता है कि सुयोधन से मैत्री रखना उचित है क्योंकि उसी ने कहा था... 'नहीं है सूतवंशी', इसका ऋण तो उतारना होगा न...! जहाँ इतिहास में सूतवंशी कहकर अपमानित

किया गया है, वहीं इस अर्वाचीन साहित्य में 'रथ बनाने की कला' कवि की दृष्टि में सम्माननीय है–

कहो क्या सारथी होना नहीं होता कला यह ?

आगे देखिए कविदृष्टि –

जरूरत जब पड़ेगी सारथी सुर तक बनेंगे,
मनुजता के विरोधी उस समय तब क्या कहेंगे ?

प्रबोध पर्व में प्रकृति भी परिवर्तित हो जाती है, प्रकृति का मानवीकरण देखिए–

हुई नीलांबरी-सी सृष्टि जो अब तब सलेटी,
लगा स्यामा ही जैसे केश खोले नभ पे लेटी ।

कवि २० हर्त्ज से कम आवृत्ति वाली ध्वनियां भी सुन लेते हैं...! ध्वनिविज्ञान और जीवन विज्ञान में संतुलन यह है कि सामान्य मनुष्य २० से लेकर २० हजार हर्त्ज तक की ध्वनियां ही सुन सकता है... लेकिन ओस के बून्द की मद्धिम ध्वनि भी सुनने का सामर्थ्य रखते हैं–

उसी के बीच ही पदचाप कुछ ध्वनियाँ हुई थीं,
बहुत मद्धिम कि जैसे ओस की बूँदे चुई थीं ।

अब आत्मिक प्रबोध का मूर्त रूप देखिए–

लगा यूँ कर्ण को वह नींद में था, जग गया है,
नई है सृष्टि जो कुछ भी दिखे, सब कुछ नया है,

यह एक यथार्थ था.... जिससे बाहर आकर कर्ण की समाधि टूट गई... यह समाधि 'अजपाजाप' वाली साधनावस्था थी...! इस पर भी अलग से बात करेंगे सखी.... 'अजपाजाप' सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात समाधि के प्रसंग में आता है...! इस चिन्मय जागरण... प्रबोध में कर्ण महसूसता है कि प्रकृति से आशीष बरस रहा है...!

यह सही है सखी... कि कर्ण के जीवन की खुशियों में व्यथा जड़ी हुई है.... लेकिन इसी विडम्बना का रहस्य कवि उद्घाटित करता है–

जगत को दे रहा आलोक है जल कर दिवाकर,
उठो तुम सूर्यवंशी, सृष्टि की विपदा उठाकर;

यहाँ भी.... जड़-चेतन को प्रकाशित करने के लिए... सूरज का जलते रहना... उदाहरण है... और कर्ण द्वारा 'सृष्टि की विपदा' को ढोने से तात्पर्य स्वयं के सृजन की लोक-विपदा है... जो कर्ण के सत्कर्मों की सहचरी है....! महानता की यही त्रासदी है....! तभी तो चिराग तले अंधेरा रहता है...! कर्ण के अस्तित्व की

सार्थकता में मानवीयता का श्रेयस है। कवि के भावों में–

सम्भालो अंग का शासन धरा पर पुण्य लाने,
झुकी जो पाप से धरती, उसे ऊपर उठाने ।
इसी से लोक आलोकित बनेगा, भूमि सारी
नहीं मैं ही तुम्हारे साथ हूँ, माँ भी तुम्हारी ।

अस्तित्व की इस सार्थकता को सुनकर कर्ण मौन हो जाता है.... भावों के समंदर में उफनते विचार.... मन में ही विलीन हो जाते हैं....! सब जानकर मौन हो जाना ही प्रबोध है....!

तो सखी सबेरे का पांच बजने वाला है अब आपके भी प्रबोध का समय हो गया है...! जो भूलचूक हो चिट्ठी में उसे याद दिलाना... जिससे संशोधित कर लें.....! और हाँ... इसी बरखा में ऊन-सलाई-क्रोशिया सब निकाल लिए हैं... कहो तो आपके लिए एक ब्लाउज बीनना शुरू कर दें....! कभी कलकत्ता आओ तो कालीघाट... दक्षिणेश्वर.... तारकेश्वर... तारापीठ... गंगासागर... घूमते हुए शांतिनिकेतन चलें....!

चिट्ठी का जवाब जरूर लिखना-

अगोरा में...
डॉ. कल्पना दीक्षित

सखी मिसराइन के लिए चिट्ठी.....

प्रिय पूजा मिश्रा जी....

का हाल है जी...? सावन में सब ओर अँखुआए हुए बीज किलकारी मार रहे हैं... और मेरे मन में मदमस्त बसन्ती नवकिसलय फूट रहे हैं....! भरे सावन में बसन्ती बहार के संयोजन का रहस्य खोलें सखी... तो बात यह है कि कर्ण महाकाव्य के आठवें सर्ग पर मन अटक गया है....! इसमें कर्ण-वृषाली का संयोग शृंगाररस को रसराज के रूप में परिपुष्ट करता है...! साथ ही प्रेममय वातावरण में प्रकृति भी विलासात्मक होकर चमक उठती है.....! इसी चिन्मय संयोग में ही पति-पत्नी के रिश्ते भी निखरते हैं..जिसमें कर्ण-वृषाली परस्पर मन की बातें करते हैं....! कर्ण वृषाली को अपनी जन्मकथा बताना आरम्भ करते हैं तभी वृषाली राज्यारोहण के सौंदर्य पर बात करते हुए उन्हें सूर्यपुत्र कह देती हैं. ...! कर्ण चौंक जाते हैं कि वृषाली को यह सब कैसे ज्ञात हुआ... वृषाली बताती है कि शिवभक्त पिता भगदत्त कालदर्शी हैं... वे ही यह रहस्य माँ को बता रहे थे... तभी मैंने सुन लिया था....! यह गोपनकथा और इसकी अगोपनीयता पति-पत्नी के रिश्तों पर भारी नहीं पड़ती अपितु इन्हीं प्रसंगों में ही तो पति-पत्नी एक दूसरे के पूरक हैं....! फिर वृषाली की कांतासम्मित चतुराई यह है कि वह तुरन्त...विवाह से पूर्व की कर्ण विषयक अपनी प्रेमावस्था को बताने लगती है... और कर्ण इस प्रेमवृष्टि में भीग उठता है....! सखी... मिसराइन.... ऐसे ही रिश्तों को बाहरी-भीतरी खंरोच से बचाया जाता है....! तो सबसे पहले सुनो....इस आठवें सर्ग का नाम ''प्रमदवन पर्व'' है...! परफ्यूम, डियोरडेन्ट, इत्र की महक से ऊपर देह के मद की महक होती है.... क्योंकि कृत्रिम संसाधन मात्र आकर्षित करते हैं, लेकिन नशा तो ओरिजिनल मद से ही सम्भव है....! जीवन का हर अध्याय... पर्व अर्थात् उत्सव ही है न...! इस आठवें सर्ग... मने पर्व को प्रमदवन कहकर कवि डॉ. अमरेंद्र ने कर्ण-वृषाली के प्रणय की संस्थापना की है. ..! यहाँ 'प्रमद' अर्थात् प्रकृष्ट मद वन में मुक्त है.... यह उन्मुक्तता प्राकृतिक उपादानों के मध्य ही निखरती है..! मिसराइन... ध्यान रहे... प्रमाद न समझ लेना. .. इस उत्सव को...! यह तो ऐसा ऐकान्तिक नशा है.... जिसे कर्ण वर्षों बाद याद करता है.....! इस प्रमद... मने विशिष्ट नशे की सात्विकता यही है कि यह समय बीतने के साथ ही और अधिक चढ़ता... बढ़ता... जाता है...! इसी भाव से कवि इस अध्याय का अथ लिखते हैं–

पक्ष बीते, मास बीते, वर्ष बीते काल के,
पर नहीं धूमिल कहीं कुछ मन-हृदय महिपाल के;
दीठि में अब भी है चंचल रूप की वे रश्मियाँ,
स्वर्ण के प्रासाद पर वह कौमुदी की उर्मियाँ।

तो बहिनी...प्रमदवन का आरम्भ देखो...वर्षों बाद भी कर्ण का प्रेम फीका नहीं पड़ा ! कवि का शब्द-चयन देखो.... वे लिखते हैं कि कर्ण का मन और हृदय 'धूमिल' नहीं हुआ....! धूमिल तो दृष्टि होती है... न! लेकिन प्रेम की जुड़वा आँखें तो मन और हृदय ही हैं.... न! चक्षु से दुनिया भले ही देख लिया जाय.... लेकिन प्रेम को महसूस करने के लिए मन और हृदय को पारदर्शी होना चाहिए न....! अब तुम्हें बता दें कि मन-हृदय धूमिल कैसे पड़ता है....! तो बस ये समझ लो कि जब किसी बात की गाँठ पड़ जाए..मन पर चोट लग जाए... तो यही निशान प्रेम को पीछे छोड़ देते हैं....! कर्ण के मन में तो वर्षों बाद भी वही वृषाली ठहरी है जो पहली बार प्रकृति के बीच ऐकान्तिक मिली थी...! उस प्रथम मिलन में वृषाली के मन और समझ के रूप की डोर ने कर्ण को ऐसे बाँध लिया था जैसे सोने के महल पर चन्द्रमा की किरणें आच्छादित हों....! कवि का चारुत्व देखो सखी..... सूर्यपुत्र के लिए रूपक का प्रयोग किया ''स्वर्ण का प्रासाद'', यही कवि विवेक है. ... जिसमें भावों की गति में महक भी है और झंकार भी.... साथ ही मस्तिष्क को पोषित करने वाले शब्दवैभव और उनके संयोजन की कुशल कारीगरी भी है....!

सखी... सच कहें तो मधुरा-भक्ति के दर्शन पक्ष को कवि डॉ. अमरेंद्र ने कर्ण और वृषाली के आश्रय में व्याख्यायित किया है...! शृंगार की मधुरिमा को समझने के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि होनी चाहिए...! इसी अनुकूल पृष्ठभूमि की निर्मिति में कवि ने अमूर्त हवा का मानवीकरण किया है....! विज्ञान कहता है हवा रंग-रूप विहीन है..... केवल अनुभवसंवेद्य है...! लेकिन कवि कहता है–

साँस तक रोके पवन भी पाँव रखता रुई-सा,

हवा अरे मतलब पवन... की साँसों को टटोलने वाले.... और हवा पाँव की दाब बताने वाले कवि प्रकृति के चिकित्सक भी हैं और भौतिकीविद् भी....! यह प्रतिभा सृजन में ही सम्भव है... यहीं सर्जना... साधना है..... जिसमें कवि तपस्वी बनकर असम्भव को भी कह जाता है....! अभी हवा की 'साँस' और 'पाँव' देख ली... न! अब वर्ष के महीनों का 'मन' भी देखो–

पूस का मन चौत होता बुढ़िया आँधी, गंध वह,

शृंगारिकता की यही विशेषता है... यहाँ प्रतिकूलता भी अनुकूल बन जाती है....! 'पूस का मन' नहीं समझ आ रहा है...न? प्रेमचंद की कहानी 'पूस

की रात' याद करो... अब खुले आकाश के नीचे की ठिठुरन महसूस हुई... न! ऐसे ठिठुरते पूस महीने का मन... मन मतलब तासीर समझ लो.... चौत की तरह प्लीजेंट... सुखद...हो जाता है..! चौत महीने में ग्रीष्म की गर्भावस्था होती है...! पूस महीने के मन में गर्भस्थ चौत का वास...प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थ को एक समाधान देता नजर आता है..न! हलकू और झबरा कुत्ते का खलिहान में सोना. ... मनुष्य और पशु की परिस्थितिजन्य यह आत्मीयता... दर्शाती है न.... कि पूस का मन चौत होता.....! खैर..., यहाँ कर्ण-वृषाली का प्रसंग है...अंगप्रदेश के मेघवन में जीवन का यह रास क्रीडित है...! कर्ण के शासन में.... सबकुछ इतना सुव्यवस्थित है कि समग्र तबाह करने वाली बुढ़िया आँधी भी अंग की सीमा तक पहुँचते-पहुँचते गन्धवह वायु बन जाती है....! यह व्यवस्था की खूबी है.... जिसमें आपदाओं को आमंत्राण नहीं है.... अपितु नैसर्गिक ताप को भी अनुकूल परावर्तित कर लेने की कुशल कारीगरी है..! पूर्णिमा की उज्ज्वल छटा में...मद से पूरित रतनार आँखों के संयोजन में रात कजरारी बन जाती है....! सखी... बिहारी याद आ गए... जो नायिका की आँखों के बारे में कहते हैं कि–

अमिय हलाहल मद भरे श्वेत स्याम रतनार।
जियत, मरत, गिरि-गिरि परत जेहि चितवत एकबार।।

परिस्थितियां इतर हैं लेकिन बात वही है....! ऐसी ही परिस्थिति में कर्ण को कुछ याद आता है...! कवि की दृष्टि में बातों के भी रंग होते हैं...! प्रणय के आरंभिक काल की 'चटक' बातें 'चम्पई' बनकर खिल रही हैं मन में...! अब कर्ण जेवर-गहनों में लदी वृषाली को याद करते हैं...! इसी प्रसंग के बहाने कवि ने पारम्परिक आभूषणों की भी सूची दे दी है....! यहाँ तो बस नाममात्रा का परिचय है... लेकिन कभी इसी सूची को सांस्कृतिक संग्रहालय में चित्राानुवाद किया जाएगा....

टीका, टिकुली, खौर, नथ, कुंठा औ सिंकुली, चंचला
कुहनी, तगड़ी, बाज की वह बाँक की स्वर्णिम कला।

टिकुली पहले सोने की ही लगाई जाती थी....! ई आज का दरिद्दर जमाना आ गया है... जिसमें इस प्राचीन वैभव की जगह कूड़े-कबाड़ जैसे आभूषणों ने ले ली है... मैचिंग... फैशन के फेर में...! टिकुली और टीका में भेद है.... टीका मतलब माँग-टीका और टिकुली लिलार (ललाट) पर लगाई जाती है. ..! कुंठा-सिंकुली-चंचला गले में पहने जाते हैं... इनके डिजाइन और आकार परस्पर भिन्न होते हैं...! 'नेकलेस' शब्द इन आभूषणों के रूप को दर्शाने में असमर्थ है...! सखी..., कृष्ण की रास-स्थली वृंदावन तो जानती ही हो न....! कर्ण

जोकि कौरवों के कृष्ण माने गए हैं... उनकी प्रेम-स्थली जानती हो...? नहीं न.. . कर्ण की प्रेम-स्थली है—अंगप्रदेश का मेघवन...!

मिसराइन... ई चिट्ठी हम आरम्भ किए थे सावन में... बीच में अंतराल हुआ और अब कार्तिक अंजोरिया छाई हुई है...! ठीक भी है, कार्तिक का चंद्रमा अमृतवर्षी... कामोद्दीपक होता है.... अतः इस प्रमदवन पर्व में मादकता बढ़ती जाने की सम्भवना सिद्ध हो सकती है...न! कर्ण अपनी मधुर स्मृति के सहारे मेघवन पहुँच जाता है... यह मानव मन की गति है सखी...! इस मेघवन का सौंदर्य देखिए.... कवि ने सहज स्वाभाविकता में नाद सुना है..., जिसमें खिले हुए फूल विहँसते..अर्थात् विशिष्ट ढंग से हँसते हैं... और यह विशिष्ट हँसी मन को झँकृत करती है...! कर्ण के अंतर्मन के इस भाव तक पहुँचने के लिए कवि ने 'छुम छनन' ध्वन्यात्मक शब्द प्रयोग करके काव्य में ही वाद्य को ही अनुस्यूत किया है....! शृंगारिक पृष्ठभूमि में माधवी-बेला की लताएं भी माया का इंद्रजाल बुन डालती हैं. ...प्रकृति मधुरिम होकर मोहित कर लेती है.... ऐसे में कचनार की प्रभावोत्पादकता कवि की अर्न्तदृष्टि में वंशी की तान छेड़ देती है...! कवि डॉ. अमरेंद्र कर्ण और वृषाली के महारास के द्रष्टा बन जाते हैं...! ऐसे में कवि को हरिदासी कहना समीचीन है...क्योंकि स्वामी हरिदास ने भी तो राधा-माधव की दिव्य केलि-लीला का दिग्दर्शन करते रहते थे...!

प्रकृति प्रेमी डॉ. अमरेंद्र इस मेघवन का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए... प्राकृतिक सुषमा को महसूस करते हैं...! मानव-जीवन में गीत-राग का सन्धान प्राकृतिक उपादानों से ही सम्भव है...! तो सखी...मने मिसराइन...हरीतिमा का महत्त्व समझो..... इस मेघवन में केतकी के प्रभाव में रोमावलियाँ झँकृत होती रहती हैं... रोमावलियों के प्रकम्पन में संगीत का उत्स है.... यहीं से सप्त सुरों का साम्राज्य विस्तारित हुआ लगता है... न! मेघवन की निशा में चाँदनी की अठखेलियाँ रास ही हैं....., यह रास 'रस' को उत्पन्न भी करता है... उदीप्त भी करता है.. .. साथ ही यही रास रोशनी का लास्य भी है। मेघवन में मुचकुंद की महक और वकुल की उज्ज्वल आभा गिरते हुए को संभाल लेने वाली मादकता से भरपूर है. ..! ये यादें इतनी मधुर होती हैं कि झरते हरसिंगार के मन में वकुल के पुष्प की पवित्रता ठहर जाती है....! सखी कवि पागल होते हैं... तभी तो यहाँ....हरसिंगार के मन में कवि को वकुल का फूल दिखा है....

हों वकुल के फूल, हरश्रृंगार के मन में तभी;

ऐसे में चेतना का बेसुध हो जाना कितना सुखद होगा न... सखी! सच में प्रेम में पल-पल पहाड़ बन जाता है...और निमिष मात्रा मन्वन्तर बन जाता

है.... प्रमदवन में यह मन्वन्तर अतीव दुःसह होगा न.....यही तो प्रेम की पीर है सखी.... जो न कहते बनती है... और न ही सहते बनती है....! ऐसे में समय के पर्वत को पार पाने के लिए स्मृतियों का सहारा लेना स्वाभाविक है...! कवि ने भी वही किया... कर्ण के इस दुःसह मधुर पल में वृषाली से मिलन की स्मृतियाँ सँजो दी...! काव्य की रोचकता गझिन हो गई...! कर्ण को भगदत्त की कन्याओं में से.... वृषाली और भानुमति आदि का भेद-विस्तार ज्ञात ही न था.. .., कर्ण तो वहाँ स्वयम्बर में अप्रत्याशित पहुँचा था.....! इस प्रसंग के लिए कवि ने रोचक रूपक का नियोजन किया है.. जिसमें कर्ण आकाशद्रुम का कुसुम है... .मतलब जो अस्तित्व विहीन है...लेकिन शब्द-सामर्थ्य में उसका अस्तित्व सुरक्षित है.....!

मैं कुसुम आकाशद्रुम का, शून्य में जो कि टिका;

अब कर्ण वृषाली के समक्ष अंतर्मन अनावृत कर देता है....! यद्यपि कर्ण वृषाली के प्रति आकृष्ट था... फिर भी मन को नियंत्रित ही किए रहा...। कवि के शब्दों... मतलब भावों में कहें तो... एक तरह कर्ण को मोह खींच रहा था तो दूसरी तरफ कर्ण ने मन को अंकुश के पत्थर से दबा रखा रखा था....! मानव-मन के इस अतीव आंतरिक अंतर्विरोध के प्रबंधन में कवि अत्यधिक सफल हुए हैं....! वृषाली को कर्ण भानुमति समझ रहे हैं.... मित्र दुर्योधन से शर्त थी कि स्वयम्बर जीतेंगे कर्ण और ब्याह होगा दुर्योधन का...! मैत्री की प्रगाढ़ता भी है और अंतर्मन का द्वंद्व भी....! मानविकी में मनुष्य की भीतरी सतहें समाई रहती हैं... इसी को कवि ने करीने से उद्घाटित किया है....! स्वयं को संयत रखने के लिए कर्ण वृषाली के साये से बचता रहा... जबकि मन ही मन स्वयं से ही संवाद चलता रहा! तभी भानुमति स्वयम्बर में कर्ण ने कुलपुरोहित से एक रहस्य जान लिया.. . वह रहस्य यह कि भगदत्त की बड़ी बेटी भानुमति है और छोटी बेटी वृषाली है. ..! यह जानते ही कर्ण की व्यथा जो कवि की दृष्टि में मेरुपर्वत सदृश है वह विलीन हो जाती है...! स्वयम्वर में कर्ण भानुमति को जीतकर जब दुर्योधन को सौंपता है... तो समाज की दृष्टि में यह कर्ण की पराजय है... लेकिन कर्ण के समक्ष वृषाली की प्राप्ति का मार्ग सुगम है... अतः यह कर्ण के अंतर्मन की जीत बन जाती है.....! मूर्त हार में अमूर्त जीत का नियोजन एक विलक्षण क्रीड़ा की ओर इंगित करता है न....! मिसराइन.... मानव-मन कितने पाटों में पिसता रहता है न....! लेकिन जीत हमेशा सच की ही होती है...! अभी तक कर्ण का स्वयं से संवाद था....जिसमें एक द्वंद्व था.... पुरोहित की वार्ता के पश्चात द्वंद्व दूर हुआ...कर्ण की भावना विजयिनी हुई....! अब दूसरा पक्ष देखिए.... वृषाली भी

एक रहस्य अनावृत करती है....! इस रहस्य में... कर्ण द्वारा जीती गई भानुमति का को सौंपा जाना सार्थक हुआ है...! वृषाली बताती है कि... उसकी दीदी भानुमति कर्ण के मित्र यानी कि दुर्योधन को मन ही मन चाहती थी...! दुर्योधन के चित्र को भानुमति हृदय में संयोए रहती थी...! भावों की विजय सराबोर कर देती है.....! निर्णय की सार्थकता का बलवती हो जाना प्रसन्नतावर्धक होता है. ....! इन्हीं बातों को याद करते हुए पुनः कर्ण वर्तमान में आ जाते हैं...! सखि. ..यहाँ कवि क्रांतदर्शी...त्रिकालदर्शी....मनदर्शी...अन्तर्मनदर्शी.....और काव्य की प्रबंधन कुशलता में.... घटनाओं के विनियोजन में सिद्धहस्त हैं....!

तो मिसराइन.... अब कर्ण के जीवन में वृषाली का मिलना कितना आह्लादक है.... यह इसी रूपक से अनुमान लगाओ—

जेठ का आकाश था पर आज तो पर्जन्य हूँ;

शून्य आकाश.... अनन्त तक फैला हुआ... वह भी जेठ महीने की धूप में तपता हुआ....यही कर्ण के जीवन का यथार्थ है...लेकिन वृषाली से मिलकर.. . यह व्यक्तित्व एक सीमा में केंद्रित हुआ और भावों में उड़ने वाला भरा हुआ बादल बन बैठा है...! यह प्रेमा-शक्ति है.... जो उलटबासियों से कम नहीं.... मरु में उपवन खिला देता है प्रेम.... यही कवि ने भी देखा है.....! प्रेम के उज्ज्वल रंग में सूर्य-रश्मियों के सप्त-रंग समाहित हो जाते हैं...! अंग का राजा होना भी एक प्रेमी के लिए बड़ी बात नहीं लगती है....! प्रेमी सर्वोच्च बन जाता है... और बनता जाता है...! कर्ण का जीवन महानता की त्रासदी है... सामाजिक अवहेलना.... के साथ ही बहुत सारी विसंगतियों का संयोजन है यह व्यक्तित्व..! सूर्यपुत्र होकर भी सूतपुत्र का दंश....हो या सच का पुरोधा होकर कौरव के पक्ष में लड़ने वाला योद्धा हो... कर्ण जाति-वंश, सत्य-झूठ से ऊपर उठा हुआ व्यक्तित्व है....! ऐसे में प्रणय के पल कर्ण के जीवन को सुरभित कर देते हैं.... सुख के ये सीमित पल समग्र पर प्रभावी हैं...! यहीं कर्ण का जीवन पुलकित है.....! प्रियतमा के साथ में ही प्राणों में नाद झँकृत होता है... अन्यथा तो बस ठंडी साँसें चलती हैं....! प्रणय का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि इसमें सब उल्टा-पुल्टा हो जाता है....! यही पागलपन है... यही मदिरावस्था है....! प्राकृतिक उपादान मन के मद को जगा देते हैं... नशा मनुष्य में ही होता है... शराबादि में नहीं...! देखना... कवि ने क्या लिख दिया...! मिसराइन तुम तो हमारी सखि हो... सखी का रिश्ता अभेदपरक होता है... इसीलिए तुमसे हम यह सब साझा कर रहे हैं....! कवि का सूक्ष्म अवलोकन देखो.. प्रेम में पगे प्रेमी का—

नैन पीते, जागते हैं कान, तो नाचे अधर,
झुक गया है भूमि पर मंदार का ऊँचा शिखर;

नैन रूप के रस का पान करते हैं.... कान आभूषणों की खनक को सुनते... फिर कुछ गुनते हैं.... और होठ फड़कने लगते हैं....फिर तो प्रेम में लुट जाना... मतलब झुक जाना... ही प्रेमोत्कर्षक है... न! कर्ण ज्योहिं बेसुध होता... वृषाली की सुधि उसे जगा देती... प्रेम में मरता नहीं है कोई... प्रेम तो अमरता की ओर ले जाता है...! यह ऐसा नशा है जो कि बेहोश को भी होश में ला दे...मुर्दे में प्राण फूंक दे....! फिर इस सजग प्रेमालाप की बारीकियों के पोर-पोर को कर्ण महसूस करता है...कर्ण जगने वाले रोमांच और शिथिल कर देने वाले वैवर्ण्य का साक्षात्कार करता है..सखी.... ऐसा प्रेमी प्रेम-साधना का साधक बन जाता है.... ! प्रेम का यह उत्कर्ष उन्माद तक परिसीमित नहीं होता है सखी....! यह तो बुद्धि अनुशासित मन का खिल उठना है...! ऐसे आवेग... ऐसी सान्द्रता... क्षणिक नहीं होती... यह तो कालजयी नशा है....! समय की यात्रा ऐसे प्रेम को धूमिल नहीं कर सकती... यह हमेशा दमकता रहने वाला एहसास है...! यहाँ मृत्यु के भय से मुक्त जीवन का आनन्द विलसित है...! कर्ण फिर मेघवन में उसी जगह पहुँच जाता जहाँ वह वृषाली से पहली बार मिला होता है...! लोग विवाह की तिथि भूल जाते हैं, लेकिन कर्ण की स्मृति में एहसासों के दृश्य सुरक्षित हैं.... वह वृषाली को याद दिलाता है कि–

''यह वही तो है जगह जब तुम पहन कर चाँदनी,
मिल गई थी बस अचानक लाज से सिकुड़ी-सनी;
हाथ के वे धूप-दीपक थरथराए थे जरा,
स्वर्ग से उतरी हुई सम्मुख मेरे थी अप्सरा ।

नवोढ़ा नायिका हृदयगत प्रकम्पन से हाथ के धूप-दीपक का थरथराना... कवि ही देख सकता है....! यही इतिहास-गाथा है... इतिहास में भी कर्ण अतीत को याद कर रहा है...! मतलब इस प्रसंग में इतिहास का इतिहास नियोजित है....! यहाँ कवि की कुशलता में संरचनात्मक व्यवस्था की बुनाई हुई है...! मधुमय स्मृति को कवि ने कर्ण के माध्यम से चित्रित किया है...! ये मधु-स्मृतियां ऐसी होती हैं... जिन्हें न तो भूला जा सकता है... न ही भूल जाने की अभिलाषा ही होती है...! ये पल ही तो जीवन को मधुर और मदिर बनाए रखते हैं...! कवि-दृष्टि में वृषाली का चित्र देखिए–

सृष्टि का सौंदर्य सारा था खड़ा आकार ले,
नत नयन पर घिर गए अनुराग का मधुभार ले।

सखी.... रति के सौंदर्य को कवि ने आलंकारिक दृष्टि से देखा है...! वृषाली की प्रकम्पित देह पर उभरी पसीने की बून्द कवि-दृष्टि में जमी हुई चाँदनी सम्भावित है...! वृषाली के इस शृंगारिक सौंदर्य ने कर्ण को नई-दृष्टि दी... मधुमय पलों के इस सौंदर्य के समक्ष दिवस की आभा भी फीकी पड़ गई थी...! कर्ण वृषाली को माधवी के विलसित उन दिनों की याद दिलाता है तो वृषाली भावों में सांद्र हो बहती चली जाती है...! यहीं प्रेम में अनुभूतियों का बहाव समय की धार को पीछे छोड़ देता है....! इसी जीवन-प्रवाह में वेणु का नाद झँकृत है. ..! प्रकृति के सुरमई वातावरण में.. दमकती वृषाली.... लाज से पलकें झुकाए ऐसे लग रही थी जैसे दीपक की बाती हो, कवि ने यहाँ रूपक का प्रयोग किया है। 'मन-मजिठी' पद-प्रयोग वातावरण के लिए उद्दीपन बन गया है.... वृषाली ओस में भीगी-सी अभिसारिका बन गई है....! प्रेम का यही रूप पत्नी को प्रेयसी बना देता है.....! कवि ने दाम्पत्य सम्बन्धों में प्रेम की छटा का अवलोकन करके रस की सम्पूर्णता विन्यस्त की है। कवि सौंदर्य के चित्राण में दार्शनिक बन गया है... यहाँ उपनिषदों के आत्मज्ञान का साक्षात्कार किया है कवि ने–

नील नभ में हो सुहाती एक चंचल तारिका,
उपनिषद् की अनलिखी-सी, अब लिखी-सी कारिका;

अनिर्वचनीय सौंदर्य की सम्भवना सिद्ध हुई है कवि-दृष्टि में...! यहाँ कवि नए उपनिषद का द्रष्टा ऋषि बन गया है...! 'भावों की लहरों का उमड़ना' साधक कवि ही देख सकता है... मन की झील में आवेग उठते हैं तो भावों के सलिल प्रकम्पित हो जाते हैं..... ऐसे में बौद्धिकता के पक्षी अनन्त आकाश में विलीन हो जाते हैं....! कवि ने अकथनीय का कथन गाया है इस काव्य में....! गहन नीरवता में हृदय की गूँजित धुन जाग जाती है....! प्रसन्नता के दो पहलू दिखते हैं.... एक तरफ कर्ण के राज्यारोहण का दृश्य याद आता है तो दूसरी तरह यह शृंगारिक पल... यहीं काल-चक्र आनन्द-सागर में डूब जाता है...जोकि सुखद एहसास है...अफसोसजनक नहीं...! मोह को भारतीय दर्शन में त्याज्य बताया गया है... लेकिन जीवन-साहित्य के इस प्रसंग में मोह का प्रकाश परंब्रह्म की चिति शक्ति है, मन स्वर्णमय हो जाता है...और तन पर चम्पई अर्थात् उज्ज्वल निखार आ जाता है... ! इसी आनन्दोत्सव में कवि ने विविध वाद्यों की भी परिचर्चा की है, कंबु, तुरही पर पटह का नाद आकाश तक गूँजित है.... शृंगार के इस अनमोल पल में साँसों की धुन और हृदय की गति ही वाद्य-यंत्रा हैं....! प्रेम अपना असर छोड़ता है... ऐसे में समग्र सौंदर्यमय हो जाता है–

क्या मुदित नारी या नर ही, सूर्य से ले सोम तक।

शृंगार के इसी प्रसंग में कर्ण के राज्याभिषेक भी नियोजित है...! काव्य में कथानक गूंथा हुआ है। राज्याभिषेक में बजते वाद्य की धुन से शत्रु भयभीत हो जाते हैं... और अंधकार भी संकुचित होता जाता है...! यह प्रसंग अंगप्रदेश में कर्ण की लोकप्रियता और वीरता को भी दर्शाता है...! 'अवनि के रोम' हर्षित हैं कर्ण के राज्याभिषेक से...! अवनि के रोम अर्थात् वनस्पतियां... पेड़-पौधे... वन-प्रान्त. ..! आगे चलकर कर्ण ने अर्जुन द्वारा खांडव वन को जलाने के कारण ही बदला लिया... यह 'अवनि के रोम' की प्रसन्नता का ही प्रतिदान है....! प्रकृति चित्रण में कवि नेसफल श्रेष्ठता अर्जित की है... वातावरण की प्रसन्नता का प्रकृति पर भी प्रभाव पड़ता है... ऐसे में सातों समंदर प्रसन्नता में ऐसे उमगते दीखते हैं कि. .... लहरें सीमाओं का अतिरेक करती हूँ... खिलखिला उठती हैं....!

सखी... यह जीवन गति है, जब हर्ष का संचार होता है तो सभी दुःखों की कांटेदार झाड़ियां स्वतः उजड़ती जाती हैं... मन से उखड़े शोक शीघ्र ही सूख जाते हैं.....! सुख की छांव में दुखद यादों से भी शिकायत नहीं रह जाती है... .! यह वर्तमान का सामर्थ्य है.... जिसमें सूतपुत्र का अभिशाप अब कीर्तिगाथा में पर्यवसित हो गया है। राज्यारोहण का यही बल है... कि एक तरफ लोग केवल कर्ण की अच्छाइयों का ही गुणगान करते हैं तो दूसरी तरफ कर्ण के राज्यकार्य शुभ हों इस हेतु मंगल-मन्त्रों की धुन गूँजित है। कर्ण की योग्यता के सही मूल्यांकन से पूरा अंगप्रदेश लाभान्वित है....! योग्य राजा जनता को सहज ही मुदित रखता है...!

कर्ण वृषाली के साथ..., अतीत की मधुरिमा को याद करता है..., और वृषाली इस मधुरिमा से भी पूर्व... चली जाती है....! स्मृतियों के भंवर में जितने भीतर जाओ... आनन्द उतना ही अधिक बढ़ता जाता है.....! वृषाली स्मृतियों के झरोखे में देखती है–

स्वर्ण आसन पर सुशोभित स्वर्णगिरि नवजात-सा,
और स्वर्णिम सुखलहर पर भाग्य मेरा प्रात-सा;
भूल सकती हूँ भला क्या, मोदपूरित काल वह,
उठ गया था और ऊँचा अंग का रविभाल वह।

वृषाली कर्ण के राज्यारोहण सुखद स्मृतियों को अनावृत करती हुई.... 'रविभाल' के और उन्नत हो जाती है...! इस शब्द में अतीत की गहरी जड़ें हैं.! वृषाली कर्ण के जीवन में युवावस्था में आई है लेकिन वह कर्ण का जन्मवृत्तांत जानती है....! वृषाली कहती है.... कि राज्यारोहण के समय... कर्ण की आभा के अवलोकनार्थ आकाश भी नत हो गया था..। सूर्यवंशी रवितनय.... सूर्यपुत्र कर्ण

को अंगप्रदेश का राजा बन जाना अतीव आह्लादकारी है...! कर्ण चौंकता है, कि 'वृषाली को मेरे सूर्यवंशी होने की कथा ज्ञात है...!' मन में एक टीस उठती है.. . किंतु स्वयं को संभालते हुए वह कह ही जाता है कि.... 'ओह तुम्हें मेरे जन्म की सारी कहानी पता है.... मैं कौन हूँ, मेरे पिता कौन हैं... और मेरी माता पृथा है....!' कर्ण कहता है कि मैं तो यही जानता हूँ.... कि 'मेरी तीन माताएं और दो पिता हैं....!' कर्ण की श्रृंगारिक यादें..दर्दनाक हो चली हैं...! वह बहने लगता है. ..कर्ण बताता है कि... गंगा उसकी माँ है... जिसने लहरों के आँचल में उसे सम्भाले रखा.... और गंगा ने ही सबसे पहले उसकी जन्मकथा के रहस्य को बताया था....! मनुष्य प्रकृति का ऋणी रहता ही है....! यदि गंगा की चंचल लहरें. ... गम्भीरतापूर्वक नवजात कर्ण को थामे न रहतीं तो.... गति की प्रवहमानता में वह पता नहीं किस भंवर में उतर चुका होता.....! इस प्रसंग में गंगा के वैशिष्ट्य को कवि की लेखनी ने उकेरा है...जो आज के लिए भी प्रासंगिक है..! स्वच्छ गंगा. .. और गंगा बचाओ अभियान हेतु... गंगा की महत्ता को जन-जन याद रखे यह अपेक्षित है....

पुण्य की माता धरा पर सब दुःखों को हर रही,
सृष्टि के आरम्भ से ही स्वर्ग इसको कर रही;
जो मृत्यु को जीव देती, शक्ति देती, पाप हर,
जो क्षमाशीला रही है सुर-असुर के शाप हर।

यहाँ गंगा की महत्ता में.... सगर-पुत्रों के उद्धार से लेकर शापित अष्टवसुओं को पाप मुक्त करने वाले आख्यान सन्निविष्ट हैं....! कर्ण के मन की कथा... व्यथा को कहते हुए... कवि साथ ही.. तथ्यों को वर्तमान से जोड़ता जाता है....! यह कवि के अवचेतन मन की चौतन्य योजना की ही रूपरेखा है....! कर्ण बताता है कि गंगा उसकी दूसरी माँ है...., जिसने उसकी रक्षा की...! गंगा की कृपा से कर्ण सुरक्षित बच सका है... और तभी इस वृतांत के वर्तमान में कर्ण-वृषाली मिलन सम्भावित हो सका है....! कर्ण वृषाली से पूछता है कि उसके सूर्यवंशी होने की जन्मकथा वृषाली को कैसे पता चली....! वृषाली को समझ आ गया.... कि इस गोपनीय वृतांत का उन दोनों मध्य इस तरह आना कुछ इतर हो गया.....! यह कथा कर्ण स्वयं उसे बताता तो अधिक ठीक रहता....! भावनाओं के अतिरेक में वृषाली उसे रवितनय कह गई थी....! उसका मतलब बस इतना ही था... वह कर्ण को पूरी तरह से जानती है... लेकिन यह तो कर्ण की मार्मिक व्यथा को कुरेद देने जैसा ही था.... न! व्यथित वृषाली ऐसे लग रही थी जैसे-- 'ठंड की खिली धूप में मानो बादल छा गए हों' कवि ने मन के मालिन्य-चित्राण में सुंदर

उत्प्रेक्षा का सहारा लिया है। वृषाली की आँखें सहज न हो पा रही थीं...! संकुचित नायिका कह उठती है कि... इस घटना का प्रभाव अपने प्रेममय जीवन पर नहीं पड़ना चाहिए...! कवि के शब्दों में देखिए–

घन कभी सूखे नहीं, न तापपोषित सृष्टि हो !

मतलब बस इतना ही है कि... अब तो अनजाने में ही वृषाली ने कर्ण का दिल दुखाया है, लेकिन इस वजह से... दोनों के बीच प्रेम की सघनता कम न होने पाए.... और न ही क्रोध के ताप का ही सूत्रापात होने पाए...! क्षमा-याचना व्यक्ति को ऊपर उठा देता है...! कवि ने स्त्री मन की व्याख्या करने में पूर्ण सफलता पाई है..! आदि शंकराचार्य ने कहा है कि स्त्री के मन को कोई नहीं जान सकता... लेकिन कवि डॉ. अमरेंद्र वृषाली के मन की बात लिखते हैं–

नाथ, मैं चाहूँ क्षमा, कुछ भी अगर अनुचित हुआ,
क्या कहीं मैं छू गई, वह जो रहा है अनछुआ ?

लज्जित वृषाली स्पष्टीकरण देती है कि... उसने लोक में किंवदंती नहीं सुनी, अपितु वही कह गई...जो कुछ उसने अपने पिता भगदत्त के माध्यम से जाना है...! वृषाली बताती है कि उसके पिता भगदत्त शिव के भक्त होने के कारण कालद्रष्टा हैं....! उन्हें शक्ति का आशीर्वाद मिला है जिससे रहस्य भी सर्वज्ञात रहता है..! एक बार जब भगदत्त वृषाली की माँ को यह गोपन-कथा बता रहे थे... तभी वृषाली ने सब कुछ सुन लिया था...! और तभी उसने तमाम बातों में से इस रहस्य को समझकर.. कर्ण को अपने लिए चुन लिया था...! एक तरफ सौ कौरव.... दूसरी तरफ अकेला सूर्यपुत्र... पलड़ा कर्ण का ही भारी है.... यह जताती हुई वृषाली.... स्त्रीस्वभावजन्य चातुरी से कर्ण के विषाद को धो डालती है...! कवि की वाणी कितनी सहजता से अकथनीय को कह में समर्थ है–
वृषाली कहती जाती है–

''सच कहूँ, तब से ही मैंने चुन लिया था नाथ को,
माँ-पिता भी गिन गए मेरे हृदय की बात को;
प्रीति को अपनी छुपाना तब कठिन था हो गया,
था कहाँ कुछ ज्ञात, मन कब हँस पड़ा, कब रो पड़ा ।

सखी मिसराइन.... देखो... प्यार ऐसे ही होता है...! अनिर्वचनीय अवस्था यही है...कि कभी प्रिय से जुड़े कोई खयाल गुदगुदा जाते हैं...तो मन की कोई अधूरी आकांक्षा रुला जाती है.....! कर्ण की जन्मकथा विषयक रहस्य तो लोक में विश्रुत ही था....लेकिन वृषाली के अन्तर्मन की हालत तो बस वही जानती थी...और उसके माता-पिता समझ रहे थे...! कर्ण इस पूर्वराग से अनजान

था....! अतः कवि ने विदीर्ण सम्बन्धों में मिठास घोलने की जुगत भी बता रहे हैं. .. साथ ही स्त्रीशक्ति के चातुर्य का विस्तार भी झाँक रहे हैं....! कर्ण स्वयं के प्रति उपजे पूर्वराग की धार में बहने लगा....! उसके मन में घुले विषाद धुलते गए. ...! संसार में कटुता कहीं भी हो लेकिन पति-पत्नी सम्बन्ध पारदर्शी... उज्ज्वल. ... और मजबूत होने चाहिए....! वृषाली... अपनी हालत बताती है—कर्ण के प्रति अनुरक्त उसका मन...समय और शरीर से बेपरवाह हो गया था...! नेह के बंध ान ऐसे ही होते हैं... जिसमें बंधकर स्वयं से मुक्त होया जा सकता है...! वृषाली की बातों में... कर्ण की प्रशंसा के अतिरिक्त कोई विषय ही न रह गया था.....! प्रेम में प्रियतम कमाल का दिखता है... जोकि खूबियों का जखीरा होता है....! शेष चेतना पीछे छूटती जाती है...! मति पर प्रेम की शक्ति प्रभावी होती है....! समझ... बुद्धि... अवबोध.... सब लघुतर होते जाते हैं....! एक वक्त के बात अपने प्रेममय जीवन की आरंभिक अवस्था.... का चिंतन बहुत अजीब-सा लगने लगता है....! समय बीतने पर जब मति जगती है.... तो मन की मनमानी.... हास्यास्पद लगती है... कि अरे हम भी किस बचपने में पड़ गए थे...हाय...कैसे पगलाए रहते थे....! यही समय की धार पर मन की गति होती है....! लेकिन प्रेम की आरंभिक अवस्था.... समग्र को दिव्य बना देती है, वृषाली को कैसा लगता था, देखना—

रात नीलम-सी लगे और दिन लगे पुखराज से ।

मोह अतीव आकर्षक होता है... विदेह राजा जनक राम को देखकर ऐसे मोहित हुए कि उनका ब्रह्ममुखी मन....ब्रह्म-विमुख होकर संसार के सौंदर्य पर मुग्ध हो गया...! वृषाली प्रेम में पगने लगी तो मोह की मेघमालाएं हमेशा उसे घेरे रहतीं..... इन मेघमालाओं के टकराव में बिजली कौंधती तो शृंगार का सौंदर्य खिल उठता...! सखी... यह सब वृतांत कवि डॉ. अमरेंद्र ने लिखा है... वह भी उस प्रसंग में जब कर्ण वृषाली के मुख से स्वयं के सूर्यपुत्रा होने की गोपन कथा को जानकर क्षुब्ध रहता है तब..., तभी वृषाली एक रहस्य के अनावरण से उपजे दर्द पर मलहम लगाने के लिए...एक अत्यधिक मधुर रहस्य अनावृत करती जाती है....! कर्ण बहता जाता है.... वृषाली बताती जाती है....! कर्ण की सुधि में घिरी वृषाली जाने कितनी बार अभिसार हेतु तैयार होती.... तरह-तरह की योजनाएं बनाती.... बहुत सारी भावी कहानियां गढ़ती रहती....! सब कुछ कहा कहाँ जा सकता है भला....! यहीं वाणी मन की अनुगामिनी होकर भी... मन से बहुत पीछे छूट जाती है...! सखी...ऐसे में मुग्धा नायिका बहुत समझदार होने लगती है.. मैंने अपने प्रेमपत्रों वाले संग्रह में लिखा.. वह तुम्हें तो याद ही होगा न.... कि ''तुमने हवाओं में जो साँसें घोलकर भेजी थीं... उससे तुम्हारी चाहतों

का जायका मिल गया...'' वृषाली भी कुछ ऐसा ही करती है... डॉ. अमरेंद्र लिखते हैं कि–

भेजती थी मैं हवा को सौंप मन की बात को,
मेरी लीला थी, कभी सोने दिया न रात को ।

ऐसी यादें वर्षों बाद भी गुदगुदाती रहतीं हैं.... साँसें महकने लगती हैं और शरीर खिल उठता है..... कभी कहीं यह सब बताने भी लगो तो.... बातों को भी महकते भाव बहाए लिए जाते हैं...! पूजा... ऐसी बातें लिखने-पढ़ने में ही विभोर कर देती हैं.... कवि ने कैसे इसे गढ़ा होगा भला....! कर्ण तो भीगकर तरोताजा हो जाता.. अब कुछ दर्द अवशिष्ट ही कहाँ रह जाता है... यही पल भर के प्रेम का प्राबल्य है.... जो पूरे जीवन को सुरभित कर देता है... और यह सौरभ बढ़ता जाता है....! कर्ण वृषाली से कहता है–

सच कहा तुमने प्रिय, मधु गन्ध के मधुभार से,
प्राण तन-मन नत सभी हैं नेह के उपकार से ।

यही दो पंक्तियां इस अध्याय की प्राण हैं, जो 'प्रमदवन' शीर्षक को सार्थकता देती हैं..! इन्हीं पंक्तियों में से ही प्रमद... अर्थात् प्रकृष्ट मद निःसृत है....!

अब इस जीवन की सार्थकता को कर्ण समझने लगता है.... भावों के बहाव में कर्ण का वर्तमान वृषाली पर ही आश्रित होकर गोते लगाता है...! यहीं पति-पत्नी परस्पर पूरक हो जाते हैं.... प्रणय की सार्थकता प्रमाणित हो जाती है...! प्रेममय पल बहुत जल्दी व्यतीत हो जाते हैं.... कर्ण मौन में अनन्त विस्तार को पाने लगता है–

आज भी लगता समय उड़ता हुआ खगराज हो,
प्राण कुछ कहने को व्याकुल, काल कहता 'चुप रहो' ।

लोक कहता है... समय के पंख लगे होते हैं... कवि देखता है... समय खगराज है....! कालचक्र के कथन को कवि सुनता है.... काल का कहना.. एक विशिष्ट साधना का साक्षात्कार है.... और उस कथन को सुन लेना सिद्धि है...! मौन के विस्तृत आरम्भ में वृषाली सिहर उठती है.... यही चेतना का स्पंदन है...! उसे रात्रि के अत्यधिक बीत जाने का ध्यान आता है...यही ध्यान बेहोशी में होश है....! वृषाली कर्ण से वापस महल चलने का आग्रह करती है.....मध्य रात्रि की नीरवता में....पेड़- पौधे भी निद्रालीन हैं... बस कोई जगता है तो वह है... चंदना नदी की धार... जो अभिसार हेतु सतत चलती रहती है...! चाँद भी अपनी किरणों के साथ वापस जा रहा है... अतः अंधेरे में ठहरना ठीक न है...!

तभी हवा के हल्के-से झोंके में केतकी की महक आती है...यह अमूर्त महक जो मात्रा अनुभवगम्य है...वह कवि के लिए.. निर्जन वन में पैरों की आहट के समान है...! सच में...कवि प्रकृति के अत्यधिक निकट है... प्रकृति में बसा हुआ वेत्ता है...! केतकी की महक तरंगित होकर वृत्ताकार होती जाती है.... और फिर वातावरण में ही विलीन हो जाती है...! सखी... यहाँ वृषाली द्वारा महल वापस जाने की जल्दबाजी... वन में अब और ठहरने का निषेध... आदि सहज वाक्य नहीं हैं अपितु गहन व्यंजना के द्योतक हैं.....! जहाँ न में हाँ....विलम्ब में शीघ्रता. .... आदि भाव निहित है...! व्यंजनाओं को स्वतः समझती रहना... हमसे लिखा न जाएगा...!

पूजा... चिट्ठी के जवाब में यह जरूर लिखना कि कैसी लगी... मेरी अभिव्यक्ति....! तुम कितनी मधुरिमा में डूब सकी... इसे पढ़कर....! कार्तिक बीतने से पहले जल्दी ही हम साल्टलेक आते हैं मिलने....! इंतजार करना....

तुम्हारी सखी

डॉ. कल्पना दीक्षित

(तुम्हारे लिए तो बस दीक्षिताइन)

अमरेन्द्र होने के जितने मतलब हैं, उनमें एक है—अपराजेयता । आपने कलम को हूल में तब्दील कर दिया है । अंग महाजनपद आपका एहसानमंद रहेगा कि आपने नित नया रचकर और नवांकुरों से रचवाकर साहित्य को नया 'सैंडिस कम्पाउंड' दिया है ।

—उत्तम पियूष

विदूषी बहन कल्पना पांडेय को.....

प्रिय छोटकी ,

बरसों बाद तुम्हारा पत्र मिला तो मैं हर्ष की सरिता में स्नान करने लगी। भावों की सघनता भाषा की प्रांजलता में नदी की धारा की तरह बहती जा रही थी। न कहीं अवरोध न कहीं विचलन..... एक गति में बहती धारा अपने साथ समय की शाश्वत समस्या को लिए चलती है ।

छोटकी ....यह सत्य है कि साहित्य समाज का दर्पण है । उसमें वही दिखेगा जो समाज में घटित होगा । काल के अंतराल से समाज की बाह्य संरचना परिवर्तित हो सकती है किन्तु जो मूल तत्व है वह हमेशा एक ही रहता है । स्त्री और पुरुष से निर्मित समाज की समस्याएँ भी इन्हीं के बीच से उभरेंगी और निदान भी इन्हें ही करना है ।

प्रिय छोटकी .....''कर्ण प्रबंध काव्य'' में कवि ने एक पिता के रूप में सूर्यदेव की चिंताओं को प्रकट कर समाज की दुखती रग पर ऊँगली रख दी है । विश्व की समस्त नारी जाति के लिए यह पुस्तक वरदान बनकर खड़ी हो गई है। आज का हमारा पौरूषहीन समाज एक नाबालिग को अपनी हवस का शिकार बनाकर समाज रूपी यमराज के सामने दंड भोगने छोड़ देता है । उसके रक्त का हाहाकार तब पानी बन जाता है जब उसके ही पिंड को कुत्ते नोचते हैं .....वह कचरे की ढ़ेर पर तड़पकर दम तोड़ देता है .....अपना आकाश होते हुए भी अनाथालय में परवरिश पाता है । समाज के ठेकेदारों.....कर्ण को पढ़ो और सीखो ..... लोकलज्जा के डर से कुंती ने कर्ण का साथ छोड़ दिया किन्तु पिता के रूप में सूर्यदेव ने दृश्य अदृश्य कभी कर्ण का साथ नहीं छोड़ा।

प्रिय छोटकी .... आपने जिस जिस सरलता और तरलता से इस वृहद समस्या को ''कर्ण पत्रावली'' के माध्यम से समाज के सामने रखा है इसका दूरगामी परिणाम बहुत शुभ है । आज की नयी और युवा पीढ़ी के लिए यह

पत्रावली कल्पतरू की तरह होगी जिससे मनचाही कामना पूर्ण होगी ।

भाषा की बोधगम्यता पाठक को इसे पढ़ने पर विवश करेगी । जैसे ही यह पुस्तक के रूप में छपकर सामने आएगी पत्रावली की नई विधा में अपने मन की बात पढ़कर लोग इससे जुड़ते चले जाएँगें । मोदी जी को मन की बात पर प्रतिक्रिया मिले या नहीं आप प्रश्नों के उत्तर देने के लिए तैयार रहेंगी।

कर्ण प्रबंध काव्य के आलोक में समाज को नई दिशा देने के लिए अमरेन्द्र सर को और आपको अभी से ढ़ेर सारी शुभकामनाएँ और हृदय से आशीष।

प्रिय छोटकी .....अब तो मेढ़क के टर्राने की आवाज सुनाई नहीं देती । नाले भी ढँके हुए हैं । मेघ भी नदारद ... अब कोई मल्हार गाता भी नहीं । कोलकाता आने वाली हूँ । समय मिला तो जरूर मिलने आऊँगी .....प्रज्ञान और अन्वेषा को मौसी का ढेर सारा दुलार ।

कर्ण पत्रावली की प्रतीक्षा में .....

कश्मीरा सिंह

आपने हिन्दी में महत्वपूर्ण कार्य किया है, जबकि अंगिका के तो आप आधार- स्तंभ हैं । याद है आपने 'रुद्रावतार' का अंगिका में सुंदर काव्यानुवाद किया था ।

—उद्रभांत शर्मा

डॉ. अमरेन्द्र का महाकाव्य 'कर्ण'

—अनिरुद्ध प्रसाद विमल

२५६ पृष्ठों का 'कर्ण' काव्य तेईस सर्गों में विभक्त है। यद्यपि इसके पहले भी कर्ण पर कम नहीं लिखा गया है, परन्तु इतने व्यापक रूप में कर्ण के व्यक्तित्व को रेखांकित करने वाली निसंदेह यह प्रथम काव्य-कृति है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य 'रश्मिरथी' का कर्ण जहाँ महाभारत के ऐतिहासिक, धार्मिक एवं पारंपरिक तथ्यों से पूर्णतः बंधा है, वहीं डॉ. अमरेन्द्र का कर्ण इन तथ्यों के निर्वहन के साथ वर्तमान के सामाजिक सरोकारों से जुड़कर एक कालजयी पुरूष के रूप में उभरा है। यही इस काव्य-कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। कवि की यही विशेषता इस काव्य-कृति को एक अलग पहचान प्रदान करने के साथ ही इसे महाकाव्यत्व की गौरव-गरिमा से भी मंडित करती है। यह 'कर्ण' महाकाव्य समय, समाज के पटल पर साहित्यिक विमर्श की तरह है, महज लिख देना भर कवि का उद्देश्य नहीं है। खांडव वन प्रसंग को कर्ण की पर्यावरण-चिन्ता से जोड़कर कवि ने अपने इसी महती उद्देश्य की पूर्ति की है। न जाने, आज कितने अर्जुन पैदा हो गये हैं जो वनों को जला रहे हैं, यह जानकर भी कि वनों का नाश धरती के लिए, मनुष्य मात्र के लिए सबसे बड़ा संकट है। पथभ्रष्ट, दिगभ्रमित मानव मात्र के समक्ष यहाँ कवि पथ प्रदर्शक महान समाज-सुधारक कवि कबीर दास की भांति खड़े नजर आते हैं। कवि डॉ. अमरेन्द्र की यह तड़प, प्रतिबद्धता और मानवीय चिन्ता पाठकों को बांधती है, मुग्ध करती है और कवि को एक अलग विशिष्ट पहचान भी देती है।

देशकाल की समसामयिक परिस्थितियों-समस्याओं के प्रति भी कवि पूर्णतः सचेत और सचेष्ट है। कोई ऐसे ही महाकवि नहीं हो जाता है। एक महाकाव्य लिखने के लिए कवि को जिस अध्ययन, मनन और चिंतन की जरूरत होती है, वे सभी के सभी यहाँ मौजूद हैं। नारी सशक्तिकरण, जो आज हमारे समाज की सबसे बड़ी समस्या है, उसको लेकर दृष्टिसम्पन्न कवि डॉ. अमरेन्द्र ने कर्ण की पत्नी वृषाली को प्रमुखता से चित्रित किया है। अबतक कर्ण को लेकर लिखे गये सभी काव्यों में वृषाली उपेक्षिता ही रही है। यहाँ नारी-विमर्श की सभी संभावनाओं पर कवि की गहरी दृष्टि है। ठीक वैसे ही, अंगदेश का कर्ण अंगेश के रूप में शायद पहली बार डॉ. अमरेन्द्र के महाकाव्य 'कर्ण' में ही चित्रित हो पाया है। यहाँ कर्ण अंग की मांटी-पानी में घुला-मिला मिलता है। कवि की मानवतावादी दृष्टि की आँच में तपकर कर्ण भारतवर्ष की पीड़ित जनता की वेदना, सुखी जीवन के लिए उसकी अदम्य आकांक्षा तथा सामाजिक परिवर्तन के लिए संघर्ष करता हुआ साफ-साफ दिखता है। इक्कीसवीं सदी का यह निश्चय ही पहला महाकाव्य है, जिसमें कर्ण को एक महामानव, कालजयी पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है। ■

'कर्ण' काव्य है कि कैनवास पर इन्द्रधनुष ?

—रंजन कुमार

डाक्टर साहब, यह कर्ण महाकाव्य है या महाकाव्य नाटक ? इसमें आपने सिर्फ संवादों का ही नियोजन नहीं किया है, दृश्य-विधान भी खूब किया है, जैसा कि अंक के दृश्यों के आरंभ में होता है। कहीं एकालाप है, तो कहीं आकाशी-संवाद की व्यवस्था, और अधिकांश पर्वों में पात्रों के बीच के कसे-गुँथे संवाद। मैं तो नाटक का आदमी रहा हूँ, इसीसे उसकी बारीकी को ज्यादा समझता हूँ और मुझे यह आकर्षित भी करता है। कोई शक नहीं कि आपने कर्ण के व्यक्तित्व को इतना उदात्त बना दिया है कि कृष्ण का यह कहना कि कर्ण कौरवों का कृष्ण है, कहीं से किंचित नहीं अखरता। कोई कवि महाकवि क्यों कहा जाता है, यह मैंने आपके इस कर्ण काव्य को पढ़कर जाना। रूप का चित्र तो कोई भी मँजा चित्रकार गढ़ दे सकता है, लेकिन भावों की ऐसी साफ-साफ फोटोग्राफी तो आप जैसे सिद्ध कवि से ही संभव था। कहाँ रंग गाढ़ा करना है कहाँ हल्का, वाह! डाक्टर साहब । कमाल! भाषा की यह कलाकारी तो कोई आपसे सीखे। विविध पर्व (सर्ग) विविध रसों का रंगमंच, जैसे कैनवास पर बिखरे इन्द्रधनुष ! आपने एक साथ हिन्दी और अंग देश को गौरवान्वित किया है। वैसे एक बात कहूँ, आपने कभी 'गेना' काव्य लिखकर जिस तरह पुरुष-विमर्श का मार्ग तैयार किया था, अब 'कर्ण' काव्य लिखकर आपने यह भी बता दिया है कि स्त्री-जाति के लिए भी आपके हृदय में कितना बड़ा आकाश फैला हुआ है। ■

महाकाव्य 'कर्ण' की कालसापेक्षता

—डॉ. मृदुला शुक्ला

महाकाव्य जीवन के महनीय उद्देश्य को रेखांकित करता है। वह साहित्य का ऐसा फलक है, जिसमें युगधर्म की धड़कनें समाई होती हैं। पल-पल बदलते परिवेश में भी महाकाव्य अपनी रचनाधर्मिता के शाश्वत मूल्यों को संजोता है, जो मानवता की आधारशिला है। आज साहित्य का स्वरूप बदलता जा रहा है। समय की तीव्र गति ने शब्दों के आधार को संक्षिप्ततम कर दिया है। ऐसी परिस्थिति में अपने इतिहास, मिथ या परम्परा से कठते साहित्य-सृजन के दौर में डॉ. अमरेन्द्र द्वारा रचित दो सौ छप्पन पृष्ठों के महाकाव्य कर्ण ने मुझे चौकाया था। महाकाव्य के स्वरूप गतिशील रहे हैं, क्योंकि शास्त्रीयता की एक ही कसौठी पर उसे बार-बार नहीं कसा जा सकता, लेकिन उसका उद्देश्य कालसापेक्ष ही होता है।

महाभारत की अन्तरगुंफित कथा में, किसी एक पात्र पर अर्जुन की तरह दृष्टि रखना दुष्कर कार्य है, जिसे डॉ. अमरेन्द्र ने कर दिखाया है।

माहभारत युग वह संक्रमण-काल है, जहाँ से भारत अपने भव्य अतीत से आधुनिक युग के अंधेरे में प्रवेश करता है। नैतिकता के पतन, प्रदूषित और सुविधापरक राजनीति, स्त्री-अस्मिता का दमन, जातिवाद के गर्हित रूप, सबने वहीं से आकार लेना प्रारंभ किया, जो आज के युग में बड़े वीभत्स रूप में सामने हैं। महाभारत किसी काल या युग का नाम नहीं होकर एक मानसिकता का नाम है जिससे, दो पात्र सबसे अधिक पीड़ित हैं, द्रोपदी और कर्ण। द्रोपदी का दीपशिखा-सा चरित्र विपरीत परिस्थितियों में भी प्रज्ज्वलित रहा, लेकिन इतिहास ने कर्ण के साथ न्याय नहीं किया।

कर्ण का जीवन सामंतवादी परंपरा की त्रासद यंत्रणा से भरा है और अंग कर्ण का ऋणी है। अगर यह कहा जाए कि कवि ने उस कर्ज को ही उतारने का प्रयास किया है, तो गलत नहीं होगा। वैसे यह भी सही है कि कर्ण के चरित्र में ही महाकाव्यत्व का असीम विस्तार है। कर्ण महाकाव्य किसी विशेष प्रसंग की कथा न होकर अन्तर की सारी अच्छाइयों, कमियों, परम्पराओं और विद्रोह की कथा है। इसे गीत या काव्य की अन्य विधाओं में नहीं उतारा जा सकता था, उसके कलेवर को आकाश का विस्तार देना ही पड़ता, जो महाकाव्य के रूप-

विधान में ही हो सकता था।

लोकआस्था और लोकपरंपरा में समय का सत्य डोलता है, क्योंकि वहाँ किसी शाप का भय या शास्त्रीयता की धमक नहीं चलती। कर्ण के चरित्र को समझने के लिए कवि ने कई आयामों से संदर्भ लिए हैं। कर्ण की जीजिविषा, उदारता, द्वेष, मित्रता सभी कुछ का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, इस महाकाव्य में। कवि की सफलता इसमें भी है कि उसने पाठको के लिए कर्ण के चरित्र को अत्यन्त ही पारदर्शी बना दिया है, जो अभी तक दुरूह ही था।

अपने जन्म की कथा मानव के लिए सबसे अहम होती है, अपने को पहचानने, अपने अस्तित्व को समझने की शुरुआत वहीं से होती है। कर्ण के प्रसंग में दुखद है कि उसकी जन्म-कथा उसे पीड़ा देती है, लोगों के प्रति अनास्था से भर देती है, अकेलापन उसका संगी बनता है। लेकिन कर्ण का नायक इस सबसे उबरने की कोशिश करता है, इसका प्रमाण है कि अपनी माँ कुंती के प्रति जिस कड़ुवाहट को पूर्व साहित्य में स्थान मिला है, वह यहाँ लक्षित नहीं होता। कर्ण यहाँ एक गार्हस्थ्य प्राणी है, एक अच्छा पति और जिम्मेवार पिता भी है। प्रेम, करुणा, पीड़ा से भीगा वह माँ की छाँह पकड़कर खो जानेवाला भावुक बेटा है। कर्ण का मन भीष्म की तरह बँटा हुआ नहीं है। वह जो कुछ सोचता है, संपूर्ण हृदय से। पाप-पुण्य की दुविधा उसे ग्रस्त नहीं करती।

कवि ने कर्ण की इस पीड़ा को समझने की कोशिश की है कि वह कुंवारी माँ की संतान होने के बावजूद सारथी-घर पाले जाने के कारण उसकी अनदेखी ही नहीं की गई, बल्कि उसे कलंक का पुतला बताकर इतिहास के पन्नों से मिटाने की साजिशें रची गईं। कर्ण उस प्रतापी, तेजस्वी सूर्य का पुत्र होकर भी उपेक्षित है। विवाह की स्वीकृति न मिलने से क्या संतान की सारी गुणवत्ता और उसकी मानवीय संवेदनाओं को नकारा जा सकता है? प्रस्तुत महाकाव्य में सूर्य अपने और उसके उपर लगे लांक्षणों को धोने का प्रयास करते हैं कि कर्ण बलात्कार या घृणा का उत्स नहीं, प्रेम की उपज है। संवेदना के स्वर में सूर्य कहते हैं–

कर्ण दोनों के प्रणय का पुण्य फल है
पंक के ऊपर खिला उज्ज्वल कमल है। (कर्ण, पृष्ठ-१७)

वात्सल्य भाव से पूर्ण, पिता रूप में सूर्य की कल्पना इस काव्य की विशेषता है। यहाँ वैदिक देवता को बलात्कारी या शोषक की श्रेणी से निकाल कर एक आसक्त प्रेमी के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो अपनी पल भर की दुर्बलता के लिए पृथा के कष्ट के कारण से विह्वल है। पश्चाताप की इस अग्नि में जलते हुए सूर्य जैसे प्रखर, उदीप्त देवता भी अत्यंत मानवीय हो उठे हैं।

महाभारत के कर्ण की जीवन-यात्रा में वर्षों का अन्तराल बहुत कुछ सोचने को विविश करता है। परशुराम के निकट शिक्षा प्राप्त करने के पूर्व कर्ण की शिक्षा-दीक्षा कहाँ हुई, वह कैसे रहा, राजधानी और महानगर के लिए अपरिचित क्यों रहा, इन अनेक सवालों के उत्तर इस काव्य में जिस विश्वसनीयता के साथ विन्यस्त हैं, वे संतोष देते हैं। सूर्य अंधकार के पाश को काटते हैं, वह अपने पुत्र के भी भविष्य के अंधेरे को दूर करने के प्रयास में रत दिखते हैं। समय-समय पर दुर्याधन की विपरीत बुद्धि के विषय में बताते हैं। एक अनुभवी युगों से तपा पिता अपने पुत्र को सचेत करता है कि दोनों की मित्रता, व्यक्तित्व की भिन्नता के कारण मंगलकारक नहीं हैं। अंत में कर्ण को धर्म की राह पर चलने की सीख देते हैं। ऐसी भावनाओं को संप्रेषित करती पंक्तियाँ अत्यंत समर्थ बन पड़ी हैं। कर्ण का कथन भी कितना सहज और स्वाभाविक बन पड़ा है—

मुझे क्यों दे गये हैं तात यह आदेश ऐसा,
उन्हें क्या मित्रता में दोष दिखता शेष ऐसा
किया उपकार मुझ पर है, करूँ फिर क्यों नहीं मैं?
पिता की बात से विचलित लगूँ शायद कहीं मैं?(कर्ण, पृष्ठ-७१)

जातीय दंभ और कुल-श्रेष्ठता का आतंक जहरीली हवा में आज भी साँस ले रहा है, कवि को युग के जलते सवालों ने बहुत झकझोरा है, त्रस्त किया है, जाति के आधार पर, सामाजिक स्थिति के आधार पर जब प्रतिभा और पराक्रम की अनदेखी होती है, तब महाभारत का होना उसकी नियति है। त्यात्य है वह समाज जहाँ राजा होना या श्रेष्ठ कुल में जन्म लेना सारे मानवीय गुणों पर भारी पड़ते हैं। कर्ण जीवन भर उससे लड़ता है। एकाध स्थल को छोड़ उसका व्यक्तित्व कभी कमजोर सिद्ध नहीं होता।

कर्ण काव्य की विशेषता है कि इसमें नारी-विमर्श की स्वाभाविक प्रस्तावना है। द्रोपदी का प्रखर तेज, कुंती का मातृत्व, अथवा सत्यवती का सत्ता के शीर्ष पर रहना तो महाभारत के वर्ण्य विषय हैं ही, लेकिन इस महाकाव्य में कवि ने वृषाली, पुनर्नवा, राधा के स्वतंत्र चरित्र को जिस तरह से गढ़ा है, वह अद्वितीय है। दुर्योधन के बुलावे पर वहाँ जाने की सूचना देते हुए जब कर्ण बताता है कि द्रोपदी के स्वयंवर में दुर्योधन उसकी मदद चाहता था, तो वृषाली का आहत नारी मन प्रश्न पूछता है—

क्या पुतलियाँ हम कि नाचे परपुरुष संकेत
नर अचल है और नारी शून्य में बस रेत (कर्ण, पृष्ठ-८७)

वह यहीं नहीं रुकती है, कर्ण से चुनौती के स्वर में पूछती है—

मित्र का सम्मान होगा, या त्रिया का मान
देखती हूं दोपहर में डूबता दिनमान। (कर्ण, पृष्ठ-८७)

कर्ण के पास शायद इसका उत्तर नहीं है या कर्ण के मन का एक चोर कोना है, जो अपनी कमजोरी जानता है, नारी-सम्मान उसके स्वभाव में है, लेकिन परिस्थितियाँ विपरीत हैं। दुर्योधन के किये उपकारों को वह मित्रता की छाँह समझता है। अतीत की एक घटना का वर्णन कर द्रोपदी के पाँच वर माँगने के क्रम में पाँच पति होने की बात कर वह अपने को दोषमुक्त करना चाहता है, किन्तु यहाँ कर्ण को संदेह लाभ नहीं मिल सकता कि कर्ण की वह सोच. यही थी। यह उसके मन की चतुराई या कमजोरी है, जो वृषाली के कारण सामने आ गई है। वैसे यह भी सही है कि द्रोपदी के चीर-हरण के समय कर्ण अपने को वहाँ अनुपस्थित होने का जो तर्क देता है, वह मनोविज्ञान की भूमि पर इतना अकाट्य है, कि किसी का संवेदनशील मन उसके पक्ष में ही होगा। मनोविज्ञान की भूमि पर तो इस महाकाव्य की पूरी इमारत ही खड़ी है, लेकिन इस प्रसंग में कर्ण का चरित्र कुछ और निखर आया है। कोई शक नहीं कि काव्य में चरित्र का ऐसा रूप-विधान इस महाकाव्य को अहुत ही आधुनिक बनाता है।

द्रोपदी के प्रति कर्ण के मन में कोमल भावना है। वह उसके दिव्य रूप-प्रभा से सम्मोहित है, लेकिन उसके कल्याण का सोच कर द्रोपदी के द्वारा अस्वीकृत किए को अच्छा ही मानता है। अपने एकांत क्षणों में वह सोचता है—

जीत अगर मेरी होती तो कृष्णा की क्या होती।
मुझसे दूर सुयोधन-गृह के स्वप्न-भार को ढोती।

इन सबसे नारी-मुक्ति के चिन्तन का एक छोर और खुलता है। नारी-शोषण, नारी-अस्मिता की कई परतें महाभारत की कथाओं के साथ जुड़ी हैं, जिसकी छाप इस काव्य पर देखी जा सकती है। कर्ण की विवशताओं के साथ ही नारी-मुक्ति के चिन्तन की रेखाएं धुंधली हो जाती हैं। कर्ण जो नारी-सम्मान में युधिष्ठिर या अर्जुन के कृत्यों की भर्त्सना करता है, स्वयं स्त्री को सम्मान देने का पक्षधर है, वह स्वयंवर में द्रोपदी को जीतने के बाद मित्र को समर्पित करने के विषय में जब सोचता है, तो यह युग-प्रभाव है, जिससे कर्ण भी मुक्त नहीं है—

मेरा लक्ष्य सुयोधन हित था, कृष्णा के संग छल था,
हस्तिराज के लिए समर्पित मेरा कार्य विफल था।
अब भी हूँ मैं ऋणी सुयोधन का ही मित्र अकेला
मुझे तोड़ सकता यह कब है राजमुकुट का खेला।
(कर्ण, पृष्ठ-१३५)

कर्ण का काव्यकार मंथन करता है, शोध करता है, कथाओं के टूटे-बिखरे सुरों को जोड़ने का प्रयास करता है, इसी क्रम में वह सूर्य और कुंती की कथा को वायवीय नहीं बनने देता है, और न तो यह संबंध कर्ण के जन्म तक रहता है। आज समाज में एकल माता की धारणा परिपक्व हो चली है, जो कुंती के युग में नहीं हो पाया था। कवि ने कर्ण की आत्मा में प्रवेश कर इस कृति की रचना की है।

कर्ण अंग का राजा है। दुर्योधन की नकारात्मकता के अंधेरे में कर्ण का चरित्र छिप नहीं सकता। प्रेम जीवन का आधार है। संवेदना के घटते-बढ़ते ताप को इसीसे समझा जा सकता है। कर्ण के प्रणयी रूप का दर्शन इस काव्य में होता है, वह बहुत संयत,सहज, मैत्रीवत, प्रणय-संबंध जो दांपत्य की धूरि है। संयोग शृंगार का इतना मर्यादित वर्णन आज के युग को नई दिशा देता है। अपने हर्ष, उत्साह, शोक-पीड़ा को साझा करता करता कर्ण अत्यन्त विश्वसनीय है। युग-अभिप्रेय के बदलते स्वरूप और उसकी नकारात्मता से त्रस्त है। ऐसे भी कर्ण का सुखद वैवाहिक जीवन प्रीतिकर है। उसका जीवन सिर्फ युद्व की रणभेरी और दुर्योधन की परछाई भर नहीं है। वह एक पति और प्रेमी है, उसकी पत्नी मात्र रानी नहीं, प्रिया और मित्र है। यह सद्भाव भी अंग की मिट्टी से उपजी सुगंध है। वह पत्नी से सलाह लेता है, अपनी पीड़ा बाँटता है, मन के कोने में छिपे भय को दिखाता है और नारी के प्रति सम्मान की भावना को अभिव्यक्त करता है। द्रोपदी के प्रति उसके प्रेम की निष्फलता उसे दुखी करती है उसके मान को न बचा पाने पर पश्चाताप करता है।

कर्ण का पर्यावरण-प्रेम संक्रांति पर्व में उभरकर सामने आया है। प्रकृति का मंच, प्रणय के लिए उददीपन का कार्य करता रहा है, लेकिन प्रस्तुत काव्य में प्रकृति स्वयं मानो कर्ण की प्रिया बन कर उपस्थित हुई है। कर्ण उन वनवासियों से, नागकुल से भी प्रेम करता है, जिनका जीवन निश्च्छलता, नैसर्गिक प्रकृति की गोद में बीतता है–

प्रकृति के पुत्र का जो शत्रु है, उस पर दया क्या
यहाँ भी चुप रहा, तो जन्म लेकर भी लिया क्या ।

देश और समाज की समस्या से जुझता हुआ यह वह समय है जिसमें जंगल और जंगलवासी को हाशिये पर धकेल दिया गया है। जंगल का जलना मात्र जंगल का ही नहीं है–

नहीं केवल खांडव जला है देश की आत्मा जली है
निरीहों को सताये, क्या वही सचमुच बली है। (कर्ण, पृष्ठ-१२२) ■

'कर्ण' को पढ़ते हुए...

—डॉ. सुशीला ओझा

डॉ. अमरेन्द्र हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ कवि, आलोचक, निबंधकार हैं। उन्होंने गद्य एवं पद्य दोनों विधाओं पर अपनी कुशल प्रतिभा का परिचय दिया है। कर्ण उनकी अन्यतम् रचना है। यह एक प्रबंध-काव्य है, जिसमें कर्ण के सभी अनछुए, अनसुलझे रहस्यों को प्रकाशित किया गया है। तेइस सर्गों में कर्ण के जीवन से मृत्यु तक को एक नये कलेवर में रेखांकित करने का सफल प्रयास किया गया है। राष्ट्रकवि दिनकर ने भी रश्मिरथी में कर्ण के शौर्य, पराक्रम, दानशीलता का वर्णन किया है, लेकिन उसमें भी कृष्ण के वर्चस्व पर ज्यादा प्रकाश डाला गया है। कर्ण महाकाव्य में कवि का लक्ष्य कर्ण के उज्ज्वल पक्ष, उपेक्षित पक्ष का उद्‌घाटन करना है।

कर्ण का चरित्र बड़ा ही जटिल है, विविधताओं से परिपूर्ण है। वे कौन्तेय हैं तो राधेय भी हैं। दोनों की मर्यादाओं का पूर्ण रूप से निर्वहन किया है। कर्ण की दृष्टि में दोनों पूज्य हैं एक पूजा का फूल है, तो दूसरी नैवेद्य है।

एक कुमारी माँ की विवशता, करुणा आश्वस्ति, किंचितभय का, पीड़ा की, व्यथा का बड़ा मार्मिक चित्रण कवि ने किया है। प्रहरी के लौटने की प्रतीक्षा में कुन्ती की चिन्ता विषम से विषमतर हो गई है—

क्या हुआ जो लौटकर आया न प्रहरी?

अंग की सभ्यता संस्कृति पर कवि कवि को गौरव है। अपनी इस अभीप्सा, प्रेम के प्रति कवि पूर्णतः समर्पित हैं—

अंग के तुम भूप होगे यह तो निश्चित
पर भूलना ये बात किंचित
अंग के अनुकूल सारे आचरण हो
इस धरा पर स्वर्ग का फिर संचरण हो।

महाभारत युद्ध को गतिशील बनाने में कर्ण की अहम भूमिका है। वे दान देना जानते हैं प्रतिदान नहीं । उन्होंने ने दान की गरिमा को महिमामंडित

किया है। दान के लिए उनके हृदय का द्वार सर्वदा खुला रहता है। कर्ण को जन्मजात कवच कुंडल मिला है । इन्द्र ने विप्र वेश में कवच कुंडल की याचना की है, कर्ण ने निःसंकोच, सहर्ष इन्द्र को दान दिया है। दान का इससे बड़ा उदाहरण क्या हो सकता है?

मित्र के प्रति उनके मन में अगाध आस्था है विश्वास है। वाणी में प्रखरता है, निर्भीकता है, अडिगता है, प्रतिबद्धता है। उनकी वचनबद्धता, संकल्प का उदाहरण दर्शनीय है–

एक धर्म का, एक बचन का, एक शपथ का रवि सुत
मैं अपनी ही शील बुद्धि पर जमा रहूँगा अच्युत ।।

कर्ण ने माँ की महता, गरिमा को बहुत करीब से देखा है–

माँ ही सागर, धरा, अग्नि है और पवन आकाश
माँ के बिना कहाँ है, सृष्टि, गंध शब्द और प्यास!

शील, शूरता में कर्ण अद्‌भुत हैं। विश्व में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। सबलोगों ने मिलकर उसकी महत्वकाक्षाओं को कुचलने का प्रयास किया है, फिर भी वह अजेय है।

इस तरह हम देखते हैं कि कर्ण का व्यक्तित्व भव्य है, दिव्य है, प्रणम्य है।

कवि का लक्ष्य है कि उपेक्षित कर्ण के व्यक्तित्व को एक नई रोशनी, नई भूमिका को एक नए आयाम, नए प्ररिप्रेक्ष्य, नई प्रेरणा, नए कलेवर से सुसज्जित करके, नई ऊँचाई पर प्रतिष्ठित करना है और इसमें डॉ. अमरेन्द्र जी को सफलता भी मिली है। सहज, सरल, सरस शब्दों के माध्यम से कर्ण के अनसुलझे, अनछुए पहलुओं पर उज्ज्वल रोशनी से भींगाने का सफल प्रयास किया है। लेखनी को शत-शत नमन। ■

'कर्ण' प्रबंध काव्य और हिंदी साहित्य

—डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा

कर्ण के चरित्र पर आधारित रचनाओं में दिनकर का रश्मिरथी, शिवाजी सांवत का मृत्युंजय तथा नरेन्द्र कोहली का 'महासमर' के बाद स्वतंत्र रूप से कर्ण के ऊपर डॉ. अमरेन्द्र की पुस्तक 'कर्ण' बहुत ही विचारणीय है।

रामधारी सिंह 'दिनकर', शिवाजी सावंत और नरेन्द्र कोहली ने कर्ण के चरित्र को अंकित किया है। तीनों लेखकों का कर्ण के प्रति विचार अलग-अलग है।

'महासमर' में कोहली कर्ण को एक लंपट, चापलूस, वीरता का डींग मारने वाला, स्वार्थी और कायर योद्धा के रूप में चित्रित किया है।

कर्ण महाभारत का एक ट्रैजिक पात्र के रूप में जनता के समक्ष आता है। कर्ण के जीवन-चरित्र की त्रासदी को 'दिनकर' अपने खण्डकाव्य 'रश्मिरथी' में अभिव्यक्त करते हुए, उसके औदात्य रुप, दानवीरता आदि का उल्लेख करते हुए एक महान योद्धा के रूप में अंकित करते हैं।

डॉ. अमरेन्द्र ने इन सब से अलग 'कर्ण' काव्य लिखकर कर्ण के चरित्र के अनेक अनछुए पहलुओं से हम सब को अवगत कराते हैं। कुल तेईस सर्ग में रचित इस महाकाव्य में कर्ण के जन्म से लेकर कर्ण के चरित्र एवं उसके दानशीलता के साथ-साथ माँ के आज्ञा का पालन करने वाला पुत्र, सदा ही आदर्श को मानकर चलने वाला व्यक्ति के रूप में चित्रित किए हैं।

आज के बाजारवाद, भूमंडलीकरण, फरमाईसी आलोचना, समीक्षा आदि का प्रचलन जहाँ पर जोर-शोर से फैल रहा है, उस युग में तेइस सर्ग का काव्य रचना करना बहुत दुःसाहसिक कार्य है।

जनुष् पर्व, प्रारब्ध पर्व, बीज पर्व, चन्द्रातप पर्व, प्रज्ञा पर्व, भँवर पर्व से होते हुए पंचता पर्व तक यानी तेईस सर्गों में विभक्त है कर्ण काव्य।

डॉ. अमरेन्द्र एक गीतकार भी है। अतः भाषा की मधुरता, शब्द चयन, भाव प्रकट की भंगिमा इस कर्ण काव्य में पाठक को अपनी ओर आकृष्ट किये हुए है। सरल शब्दों में, आम बोलचाल की भाषा में रचित यह काव्य पाठक को अंत तक अपने साथ बाँधी रखती है।

अमरेन्द्र 'अंग' प्रांत की विशेषता का वर्णन करते हुए लिखते हैं--

''अंग उसका नाम है, उस देश का तो,
छू के बहती है कई नदियाँ, न सातो!

ऋषि-तपस्वी,मुनिवरों की भूमि है वह,
कुसुम-कंचन का खिला-सा, गंध महमह!''(१५)

कर्ण की वीरता का वर्णन करते हुए अमरेन्द्र लिखते हैं–

''कर्ण अगर चाहे तो वन में क्षण में आग लगा दे,
अंतरिक्ष के शून्य विवर में सोया मेघ जगा दे,
बरस पड़े सावन वसुधा पर आँधी फिर लहका दे,
एक तीर से अग्नि-हवा को चाहे तो बहका दे। (५६)
''श्रेष्ठ नहीं वह हो सकता है, जिसे मृत्यु की भीति,
उत्तम वही,निभाता जाए जो उदात्त की रीति।
मुझमें जो कुछ तेजपुंज है,वह तो माँ की देन,
माँ, कुछ ऐसा मत कहना, हो दीप्तहीन वसुषेन।''(२०७)

कर्ण की वचन बद्धता का परिचय देते हुए अमरेन्द्र जी का कवि हृदय देखने योग्य है–

''एक वचन का,एक धर्म का,एक शपथ का रविसुत,
मैं अपनी ही शील-बुद्धि पर जमा रहूँगा अच्युत।
मैं युयत्सु तो नहीं, लोभ में इधर-उधर हो जाऊँ,
एक पंथ पर रहा आज तक, अपना धर्म निभाऊँ।'' (२३५)

इस तरह से २५६ पृष्ठों की इस काव्य में डॉ. अमरेन्द्र ने कर्ण के जीवन, चरित्र से जुड़े तमाम घटनाओं का सजीव चित्रण करके हुए अंग प्रदेश, चंपा क्षेत्र के गौरवशाली इतिहास से जनसमूह का परिचय कराते है। अब कर्ण को लेकर जितने भी काव्य, उपन्यास आदि लिखे गये हैं। उन सभी से यह अलग और सम्पूर्णता के साथ है। कवि की भाषा, शैली एवं प्रस्तीतीकरण भी नयापन लिए हुई है। दिनकर ने जहाँ कर्ण के चरित्र एवं दानवीरता का केवल एक पक्ष ही उठाया है, वही अमरेन्द्र जन्म से लेकर मृत्यु तक का चित्रण करते हैं। नरेन्द्र कोहली की तरह प्रलाप या विकृत रूप में कर्ण के चरित्र को नहीं रखते। ■

दशकों बाद हिंदी में 'कर्ण' पर प्रबंधकाव्य

—कुमार कृष्णन

हिंदी में दशकों बाद, एक सही पात्र पर, एक श्रेष्ठ प्रबन्ध आया है, जिसका पात्र सिर्फ कर्ण है, सारे पात्रों की उपस्थिति की उपस्थिति के बावजूद, और सारी बातों को कहने के लिए प्रबन्धकार के पास एक उदात्त भाषा है....अगर इस कर्ण महाकाव्य के बारे में हिंदी के कोई वरिष्ठ समालोचक ऐसा कह रहे हैं, तो इससे इस प्रबन्ध काव्य की महत्ता के बारे में किसी प्रकार की कोई शंका ही कहाँ रह जाती है । ऐसी ही बात इस काव्य के लोकार्पण-अवसर पर डॉ. आर. डी. शर्मा ने भी कही थी कि काव्य की श्रेष्ठता बुद्धि और हृदय के संतुलन पर स्थिर होती है, और यही सन्तुलन इस काव्य को श्रेष्ठ बनाता है, छन्दयुक्त भाषा का लालित्य का तो कहना ही क्या, लेकिन जैसा कि कहा गया है, यह कर्ण काव्य कर्ण का ही काव्य है । इसमें कृष्ण, अर्जुन होते हुए भी नहीं हैं, जो हैं वे कर्ण के व्यक्तित्व के उद्‌घाटन निमित्त हैं, क्योंकि इनके बिना कर्ण की वह शालीनता, विराटता प्रकट ही नहीं हो पाती।

कर्ण काव्य के महाकवि ने कर्ण-जीवन से जुड़ी उन तमाम प्रख्यात कथाओं और लोकप्रचलित कथाओं को इसमें गूंथ दिया है, और उन्हें एक ऐसा रूप दे दिया है कि कहीं से भी वर उखड़ी हुई नहीं लगती हैं । शिल्प की दृष्टि से यह अद्‌भुत विधान कवि को महाकवि बनाता है । कभी-कभी मात्र एक पंक्ति से महाभारत के काल और पात्र को कह देने की कला सहृदय को इस कदर बांधती है, कि चमत्कृत हो जाना पड़ता है । यह पंक्ति द्रष्टव्य है,

है शिशिर भी शांत, जैसे भीष्म शर पर । (सर्ग २०)

ऐसी पंक्तियों की यहाँ कमी नहीं है । शिल्प की दृष्टि से यह महाकाव्य सिर्फ आचार्यों के मतों को ही पूरा नहीं करता, बल्कि इसमें पत्र शैली, पूर्व दीप्ति शैली, गत्वर बिम्बों के विधान से जिस तरह से कथावस्तु को कवि अपनी इच्छा के अनुसार आगे-पीछे करता रहा है, वह आधुनिक काव्य में शिल्प के सौंदर्य के अद्‌भुत उदाहरण हैं । कहना न होगा कि कथ्य को ऐसे विधान से काव्य को आकर्षक कसावट प्राप्त हो गई है । इसके सौंदर्य का एक मुख्य कारण इसमें वर्णन का संतुलन भी है । डॉ. अमरेन्द्र ने कर्ण के जीवन के अज्ञात इतिहास को

इतनी कुशलता से भरा है कि चमत्कृत रह जाना पड़ता है , और सबसे बड़ी बात है कि यहाँ प्रत्येक कार्य के कारण हैं, यहाँ चमत्कार की कथा नहीं है, उसे वैज्ञानिक, ऐतिहासिक दृष्टि प्राप्त है, इसी से अर्जुन के प्रति कर्ण का क्रोध भी यहाँ संगत लगता है, और घटोत्कच का वध भी । पूरे प्रबन्ध में कर्ण का अंतर्द्वंद्व इतना मनोवैज्ञानिक है कि शायद ही हिंदी के किसी महाकाव्य में ऐसा दिखता हो।

और आखिर में ''कर्ण'' महाकाव्य का महाकाव्यत्व आधुनिकता की अभिव्यक्ति में ही निहित है । यहाँ बुजुर्ग-विमर्श भी है, नारी-विमर्श भी है, और इसी तरह पर्यावरण-विमर्श ही नहीं, दलित-विमर्श भी कथा के प्रवाह में उठते-गिरते रहते हैं । राजनीति और शिक्षा की अधोगामी गतियों पर भी विचार है । सिर्फ इस रहस्य का उदभेदन करना कवि का लक्ष्य नहीं कि अंग देश के पर्वतों, नदियों, जंगलों और चम्पा के प्रति कर्ण का इतना लगाव क्यों है ? २३सर्गों का यह महाकाव्य पर्वों में बंटा हुआ है, तो इसलिए कि इसमें जो कथाएं हैं, वे महाभारत की ही हैं, बस इसकी व्याख्याएं महाकवि डॉ. अमरेन्द्र की हैं । महाभारत के छोटे-छोटे प्रसंगों को कवि ने वह प्रमुखता दे दी है कि मुख्य कथा की तेज गति के कारण बन गयी हैं । वैसे तो सम्पूर्ण प्रबन्ध ही करुणा के प्रवाह में बहता हुआ प्रबन्ध है, लेकिन ओज और शृंगार की भी जो यहाँ भव्यता है, वह तो शायद ही किसी आधुनिक प्रबन्ध काव्य या शृंगार के काव्य में दिखे । कारण कि शृंगार के चित्र-उदघाटन में कवि ने शील का कहीं भी साथ नहीं छोड़ा है । छंदों का संगीत नीरस हृदय को भी इस तरह संगीत में बहा ले जाता है, कि तेईस सर्गों के वृहत महाकाव्य को पढ़ते जाने का मोह कहीं भी, किसी भी क्षण क्षीण नहीं होता है । वात्सल्य से शुरू हो कर करुण रस में शोक में समाप्त होनेवाला यह महाकाव्य छंदों के संगीत का ही नहीं, जीवन के संगीत का भी महाकाव्य है। ■

(**'रचनाकार'** इंटरनेट पर सर्वाधिक प्रसारित, लोकप्रिय व समृद्ध ई-पत्रिका १७ सितम्बर २०१८ में प्रकाशित)

'कर्ण' काव्य को पढ़ने के बाद

—अनिल कुमार झा

भायजी प्रणाम।

बड़े भाई डॉ. शंकर मोहन झा से माँगकर आपका 'कर्ण' पढ़ लिया । पढ़ते हुए कई बातें मस्तिष्क में आईं और हर सर्ग में आपके काव्य कौशल पर रीझता रहा। कहीं कहीं तो सस्वर भी पढ़कर आनन्दित हुआ।

कर्ण के प्रति मन में बचपन से ही एक नकारात्मक दृष्टिकोण किस्से कहानियों से जो बना था वह पहली बार रश्मिरथी पढ़कर थोड़ा छँटा था और आपकी इस पुस्तक के पढ़ने के बाद तो बिल्कुल हट ही गया। कर्ण वीर था, दानी था, सदय था, ज्ञानी था,वीर था तो भक्त भी था,राजा था तो मित्र भी था, था क्या अब भी है,लोक जीवन में है, रोज-रोज की लोकोक्तियों में है, जिस होने की साहित्यिक प्रतिष्ठा का आपका श्रम प्रणम्य है।

इसके साथ ही जो बात मुझे इसमें दिखी वह यह कि कर्ण के उदात्त चरित्र के बहाने आपने पूरे अंग प्रदेश को गरिमापूर्ण प्रमाणित करने की कोशिश की है, अंग क्षेत्र के भौगोलिक महत्व को साहित्यिक स्थायित्व देने की आपकी यह कोशिश समय की शिला का वह अमिट आलेख प्रमाणित होगा जिसका रहस्य खोलकर आने वाली पीढ़ियाँ गौरवान्वित होगी।

इसे फिर फिर पढ़ने की चाह से ही अपनी तय समय सीमा में पुस्तक नहीं लौटाने का निर्णय कर मैंने डॉ. शंकर मोहन झा जी से और समय माँग लिया है। इसे फिर पढूँगा, अभी आनन्द लेने के लिए पढ़ा, फिर पढूंगा ताकि कुछ सीख लूँ।

अन्त में सृजन की बधाई सह उस लेखनि को नमन जिसने इस ऐतिहासिक महत्व का काव्य रचा। ■

'कर्ण' महाकाव्य : डॉ. अमरेन्द्र

—मुकेश दुबे

२५६ पृष्ठ का महाकाव्य जिसमें कुल २३ सर्ग हैं।

प्रथम सर्ग जनुषपर्व

महाभारत में अनेक पात्रों के साथ प्रश्नचिन्ह लगे हैं। पांडवों व सूर्यपुत्र कर्ण की माँ कुंती के अनेक निर्णयों पर आज भी बहस जारी है। महारथी व दानवीर के नाम से जाने वाले पुत्र कर्ण को स्वीकार न कर नदी में बहा देने की घटना को कभी स्वीकार्यता नहीं मिली। परन्तु इन बातों का एक सबल पक्ष भी है जिसे जाने बिना हम सत्य तक नहीं पहुंच सकते। महाभारत के अधिकांश चरित्रों कि पूर्वजन्म अथवा बचपन की अलग गाथा रही है, और वही उनके व्यक्तित्व व कृतित्व को प्रभावित करती रही।

श्रीकृष्ण के पितामह राजा शूरसेन की पुत्री 'पृथा' के 'कुंती' बनने की भी एक कथा है। शूरसेन ने अपने फुफेरे भाई कुन्तिभोज को जो संतानविहीन थे, वचन दिया था अपनी पुत्री गोद देने का। इस तरह पृथा को नाम मिला कुंती का।

कुंती की सेवा से प्रसन्न होकर ऋषि दुर्वासा ने कुंती को वरदान दिया था कि वो जिस देवता का ध्यान करके मन्त्र जाप का उच्चारण करेगी, उस देवता के सामान ही उसे पुत्र की प्राप्ति होगी। कुंती ने सूर्य देव कि उपासना की और पांडु से विवाह के पूर्व कर्ण पुत्र के रूप में प्राप्त हुए। कर्ण की छवि आज भी एक ऐसे महायोद्धा की है जो जीवन भर प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझता रहा। जिस स्थान का वह वास्तविक अधिकारी था उसे कभी मिला ही नहीं। दुर्योधन से शांति वार्ता विफल होने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने कर्ण से सम्पर्क कर उसका वास्तविक परिचय दिया था किन्तु कर्ण नें उनसे भी वचन ले लिया था उसके जीवन पर्यंत उसकी पहचान को गुप्त रखने का।

प्रस्तुत महाकाव्य "कर्ण" में डॉ. अमरेन्द्र ने बिखरे हुए सूत्रों को जोड़कर और विभिन्न संदर्भों के सहारे अंधकार में खुली आँखों से देखने का प्रयास किया है। अपने इस प्रयास में आपका मुख्य ध्येय रहा है कर्ण के उस रूप को शब्दों में साकार करने का जो दुर्भाग्य से आज भी विलोपित है। कुल तेईस सर्गों में विभक्त यह महाकाव्य अपने आप में इतना विशाल है कि इसको एक साथ शब्दों में बाँध सकना असम्भव है तथा यह इस महान कृति के साथ अन्याय होगा। इसके प्रत्येक सर्ग का हर बंद अपने अंदर अथाह गहरायी लिए कुछ कहता है।

प्रथम सर्ग "जनुष् पर्व" के ४१ बंदों में एक माता की विवशता की मार्मिक गाथा है जिसमें जन्म के पश्चात् पृथा अर्थात कुन्ती स्वर्ण सन्दूक में रख नवजात को नदी की धारा में प्रवाहित कर प्रहरी को गुप्त रूप से नजर रखने भेजती है। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है और प्रहरी वापस नहीं आता, कुंती का हृदय अधीर हो उठता है।

रात की बेला सघन थी, पृथा चिन्तित,
थी बहुत आश्वस्त लेकिन भय भी किंचित–
"क्या हुआ जो लौट कर आया न प्रहरी ?"
मन की शंका हो रही थी और गहरी-

ऐसे में मन अनेक प्रश्न करता है। स्वभाविक है ऐसे अवसरों पर पहले अशुभ विचार आते हैं,

"क्या हवा अनुकूल होकर बह न पायी ?
क्या वरुण ने राह में बाधा उठायी ?
क्या दिशा भटका गई संकेत-पथ को ?
कौन रोके यह खड़ा है समय-रथ को ?

वही प्रश्न... क्या हुआ जो लौट कर आया न प्रहरी !! उस वेदना व अधीरता का अक्षरशः प्रस्तुतीकरण हुआ है। कभी विचार आया स्वयं महल त्याग निकल पड़े....कभी उस शिशु की छवि आँखों में तैर उठती है।

ले रहा शिशुरूप, फिर किलकारियाँ हैं,
गीत मंगल गा रही-सी नारियाँ हैं ।
अंग ज्यों कंचन तपा-सा बहुत दपदप,
कर रहा है लघु करों से वारि छपछप।

रानी पर एक माँ की ममता भारी पड़ रही है। यह बंद बानगी है उस सौदर्य की–

भोर आँखों में जगा हो, रात सर पर,

गौर से देखा पृथा ने फिर ठहर कर;
लघु चरण ऊपर उठाता, फेंकता है,
और करवट लेके नीचे देखता है ।

अनेक दृश्यों की कल्पना में डूबी पृथा बहलाने का प्रयास कर रही है स्वयं को। कभी दिलासा पुष्ट करती है अनेक बिम्बों के माध्यम से कभी दृष्टि से अलोपित हो दृश्य मन कि धड़कनें तीव्र कर जाते हैं। एक ही आकांक्षा प्रहरी लौट आये, किसी युद्ध के विजेता सा हाल कह सुनाये। पुत्र की कुशलता का समाचार कह दे, मिल गया है ठौर उसको क्षेम कह दे। कभी सोचती है –

''स्वप्न था मेरा कि आँखों का भरम था,
जागता था दिवस-सा ही; घोर तम था;
रात भर तिगुनी रही थी गति मरुत की,
और तिगुनी धार चन्दन की अनोखी ।

अंततः प्रहरी आकर शुभ सूचना देता है,

"लौट आया हूँ यहाँ मैं वायु गति से,
बच बचा कर आँख नारी-नर से, यति से।
देवी, कुछ भी अब नहीं चिंता का कारण,
हो गया भवितव्य के दुःख का निवारण।''

प्रहरी के ही साथ सूर्य का आगमन हुआ था, कुंती का सिर श्रद्धा से विनयावत झुका था। सम्पूर्ण प्रकृति झूम उठी थी तब। सूर्य ने आकर ढांडस बंधाया, त्यागने को दुःख नया पाठ पढ़ाया। दी दिलासा तुम नहीं एकमात्र दोषी, पुत्र है यह हमारा, युगल प्रणय का फल है प्यारा।

"जो कवच-कुंडल दिया, पहचान है ये,
पाश-बंधनबद्ध मन के गान हैं ये;
तेज सम्मुख तुमसे है आकर पाकर
है प्रकृति सचमुच पुरुष से आज ऊपर।''

सूर्य के वचनों से कुंती को धीर आया। बुझ गया था रूप वो फिर झिलमिलाया। है यही तो रीत इस जहाँ की, चिंता रहती है यहाँ कहाँ की। इस सर्ग का अंतिम बंद निचोड़ है इसी भाव का।

झिलमिलाये फिर पृथा के रूप सुन्दर,
शांत पुलकित हो रही है ओढ़ अम्बर।
इन्द्रधनु की रश्मियाँय रवि का दिवस है,
वृक्ष पर सूखी लता भीगी-सरस है ।

अनेक बिम्बों में झलकता प्रथम सर्ग यहाँ पूर्ण हुआ। अभी २२ सर्ग शेष हैं। अमरेन्द्र जी ने पहले ही सर्ग में जिस शब्द-जाल में बाँध लिया है पाठक को, अंतिम बंद तक अब चौन न पायेगा मन..... जितना डूबेगा इस अतलांत सागर में, अनेक माणिक-मोती लाएगा गागर में। इक महारथी का स्वरूप कोमल, न देखा जिसे कभी वह छवि निर्मल। आज यहीं विराम लेकर वादा आपसे कि इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग का आनन्द लेंगे, अनुपम इस ग्रन्थ को यूँही भावांजलि देंगे। २३ में से प्रथम बधाई डॉ. अमरेन्द्र जी को। जब तक इसके सूत्रधार अर्थात प्रणेता या महाकाव्य से परिचय करने वाले अनुज अविनाश कुमार सिंह को धन्यवाद न ज्ञापित करूँ, बात अधूरी रहेगी। अनुज हृदय से आभार एक उत्कृष्ट सर्जना से जोड़ने के लिए। अनेकानेक शुभकामनाओं सहित, शुभाकांक्षी । ■

यदि त्रिलोचन हिन्दी सॉनेट के साधक और शिखर पुरुष 'कृत्तिवास' हैं तो डॉ. अमरेन्द्र हिन्दी सॉनेट के 'दत्तात्रेय' हैं।

—अविनाश कुमार सिंह 'अमेय'

डॉ. अमरेन्द्र का 'कर्ण'

—अमन सिन्हा

सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य ''महाभारत'' में भगवान कृष्ण के बाद 'कर्ण' सर्वाधिक पसन्द किये जाने वाले पात्र हैं, और वो एक एकलौते पात्र भी हैं जिन्हें शत्रु-पक्ष से लड़ने बावजूद भी पांडवों के समतुल्य सम्मानीय माना गया है।

कर्ण का नाम दानवीर, शूरवीर और अंगराज जैसे सम्बोधनों के बिना लिया जाना उनके व्यक्तित्व के साथ पूर्ण न्याय नहीं होता। पूरे महाभारत प्रकरण के दौरान वे अपने दानवीरता, युद्ध कौशल और पराक्रम के लिए जाने गए हैं, और कर्ण का यही व्यक्तित्व उन्हें लोक-कथाओं में, जन-मानस में तथा हिन्दी-साहित्य में एक कुशल नायक के रूप में उभरता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में भी कर्ण का चरित्र एवं जीवन-संघर्ष शब्द-ऋषियों के ध्यान को कई बार आकर्षित किया है और उन्हें इस महापात्र पर काव्य रचना हेतु प्रेरित किया है। रामधारी सिंह दिनकर की ''रश्मिरथी'' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। राष्ट्रकवि ने एक पूरा खंड काव्य अंगपुत्र के जीवन-गाथा, संघर्ष एवं महानता को दर्शाने हेतु रचा है।

आज अचनाक से मेरा यह सब लिखना अकारण नहीं है। इसके पीछे का कारण है डॉ. अमरेन्द्र के नये महाकाव्य ''कर्ण'' को पढ़ने और जानने का मौका पाना।

महारथी-सूर्यपुत्र-अंगराज कर्ण को एक अंगकवि के दृष्टि से देखने का सुख अनुपम है। जैसा कि मैंने पहले ही उल्लेख किया है कि राष्ट्रकवि ने इतिहास के इस विशाल-हृदय वाले नायक पर ''रश्मिरथी'' लिखते हुए उनकी महानता का समुचित गौरव गान किया है, लेकिन फिर भी उसके कई ऐसे पहलू अलिखित रह गये थे, जिसे कोई कर्ण के न सिर्फ व्यक्तित्व से परिचित, बल्कि उसके राज्य के भौगोलिक सीमाओं से भी भिज्ञ कवि की नजर एवं कलम की जरूरत थी।

भौगोलिक सीमा से मेरा तात्पर्य यहाँ अंग की धरती यानी भागलपुर से है, इस नगरी से सटकर बहने वाली गँगा और इसकी छाती पर कलरव करके बहती ''चानन नदी'' से है। कवि इन भौगोलिक वस्तुओं से पूरी तरह परिचित होने की वजह से कर्ण के चरित्र को गढ़ने में नई सफलता हासिल करते हैं।

डॉ. अमरेन्द्र से आज की हुई बात-चीत के दौरान उनकी इस रचना को रचने के पीछे उद्देश्य, रचनाकाल में लगा परिश्रम और उनका उत्साह, चुनौतियाँ आदि पर खुलकर बातें हुईं। इस दौरान उन्होंने कर्ण को देखने समझने का एक नया दृष्टिकोण मुझे सौंपा जिससे देखते हुए मैं अंग की धरती पर पलने बढ़ने को अपना सौभाग्य मानने लगा हूँ।

इस सवाल पर कि ये कृति अन्य कवियों द्वारा कर्ण पर लिखी कृतियों से कितनी भिन्न है, उन्होंने विस्तार से उन पहलुओं से रु-ब-रु कराया जिसकी वजह से उन्हें इस रचना को रचने की प्रेरणा मिली थी।

उन्होंने प्रेमस्वरूप अपनी ये किताब एक प्यारे संदेश के साथ मुझे भेंट किया। आज के इस मुलाकात के साथ महाअष्टमी का दिन शुभ और पूर्ण होता नजर आ रहा है।

किताब के किसी एक सर्ग का पाठ मैं जल्द ही स्वयं करने की कोशिश करूँगा ।

पुनःश्च—डॉ. अमरेन्द्र हिन्दी एवं अंगिका के जाने माने कवि-गजलगो-कहानीकार-उपन्यासकार हैं, जो अपने मातृभाषा अंगिका के प्रति समर्पण एवं उसके हित में दशकों से काम करने के लिए जाने जाते हैं। हिन्दी-उर्दू-अंगिका—तीनों भाषाओं में इनकी सत्तर से ज्यादा किताबें शाया हो चुकी हैं। ■

डॉ. अमरेन्द्र और मैं

—शम्भुनाथ मिस्त्री

लगभग ३५ वर्ष या उसके और पूर्व अंग क्षेत्र के साहित्यकारों के खेसर में डॉ. समीर की अध्यक्षता में हुए एक सम्मेलन में डॉ. अमरेन्द्र से पहली मुलाकात हुई थी या कि उसके पूर्व दुमका के साहित्यिक सम्मेलनों में, मुझे ठीक-ठीक याद नहीं । मैं महाकवि सुमन सूरो (साहित्यकार-संघ बाद में भाषा-संगम के महासचिव और उन्हीं दिनों मैं उक्त संस्था का साहित्य-सचिव हुआ करता था) के साथ प्रायः साहित्यिक सम्मेलनों में भाग लेने बाहर जाया करता था और दुमका में भी सम्मेलन हुआ करते थे जिनमें प्रायः डॉ. अमरेन्द्र का सान्निध्य और साहचर्य प्राप्त होता रहता था । कई बार सतीश-स्मृति-मंच के समारोहों में भी । उनके मुख से सुनी कविताओं से मैं अत्यंत प्रभावित रहा । उनका पूरा साहित्य पढ़ने का सौभाग्य तो मुझे नहीं प्राप्त हो सका किन्तु उनके सौम्य, उदार और संप्रेषणीय व्यक्तित्व से मैं अत्यंत प्रभावित रहा । अंगिका भाषा-साहित्य के प्रसार और संवृद्धि के प्रति उनकी कर्मनिष्ठा अद्‌भुत है। अन्य साहित्यकारों के लिए प्रेरक ।

शारीरिक अस्वस्थता के कारण तो मेरा लिखना-पढ़ना भी छूट गया था। यह उन्हीं की प्रेरणा थी जो मैं फिर से इस ओर अग्रसर हुआ । अंगिका बाल-गीत लिखने में उनकी प्रेरणा को भुला नहीं सकता ।

उनके साहित्य पर समीक्षा प्रस्तुत कर अविनाश अमेय जी मेरे हृदय में अतल तक उतर गये हैं । समीक्षक उनकी पुस्तकों की समीक्षा करें, मैं कोई समीक्षक नहीं हूँ, किन्तु उनके व्यक्तित्व से प्रभावित कुछ पंक्तियाँ उनके ७०वें जन्मदिन पर सॉनेट के रूप में लिखकर मैंने WhatsApp पर पोस्ट की थी, उन्हें यहाँ रख रहा हूँ :—

शायद रहबर था नहीं, स्वयं बढ़ना था
था जगह-जगह रण-क्षेत्र बना उस पथ पर

केवल अर्जुन था, कृष्ण नहीं था रथ पर
ऊँचे पर्वत के शिखरों पर चढ़ना था ।

सत्तर बसंत की याद जुड़ी जिन्दगानी
वर्षा की थी बौछार बाढ़ प्रलयंकर
था चौत-शिशिर का पावक-शीत भयंकर
अमरेन्द्र तुम्हारी है यह अमर कहानी ।

अविनाश अमेय जी को इस और ऐसे अनेक समीक्षा-आलेखों के लिए मैं साधुवाद देता हूँ । ■

डॉ. अमरेंद विरचित कर्ण महाकाव्य द्वापर की बोझिल परम्परा से मुक्त होता हुआ दिखता है.... और इतिहास-अन्वेषण का नया प्रयोग किंचित् भी भटकाता नहीं है....! यह स्वर्णिम वर्तमान का सन्धान है.....!

—डॉ. कल्पना दीक्षित

राग-रंग-ऋतु के गायक : डॉ. अमरेन्द्र

—डॉ. किशोर सिन्हा

आकाशवाणी, भागलपुर में पहली बार २००८ में कार्यभार संभालने के बाद, डॉ. अमरेन्द्र ऐसे पहले साहित्यकार थे, जिनका परिचय सबसे पहले मुझे समाचार-पत्र के माध्यम से मिला था। मैं वहां पटना से स्थानान्तरित होकर पहुंचा था। उस दिन वहां के एक अख़बार में आकाशवाणी, भागलपुर के कार्यक्रमों की समीक्षा छपी थी। उसे पढ़कर मैं लिखने वाले की भाषा-शैली, उसकी सलाहियत और बेबाकपन पर मोहित हो गया था। आमतौर से इस प्रकार की समीक्षायें लिखने वाले आलोचना-समालोचना तथा समीक्षा के बीच का फ़र्क भूल जाते हैं; परिणामतः या तो वे अनावश्यक ज़हर उगलते हैं या चाटुकारीयुक्त प्रशंसा करते दिखाई देते हैं। पर ये समीक्षा वस्तुनिष्ठ भी थी और तटस्थ भी। उस समय उसे पढ़कर उसके लेखक की एक सौम्य-सी छवि जैसे मेरे सामने आकर खड़ी हो गई थी। मेरी ये धारणा बाद में उनसे मिलने पर एकदम पुख़्ता हो गई और जिनकी मैं बात कर रहा हूं, वो व्यक्ति हैं, डॉ. अमरेन्द्र।

इसके बाद उनसे मिलने के लिये मैं उत्कंठित हो उठा। अपने ऑफ़िस में लोगों से पूछा तो उन्होंने जो कुछ भी उनके बारे में बताया, उससे उनसे मिलने की इच्छा और उत्कट होने लगी; और ये अवसर जब आया तो मुझे आश्चर्य हुआ कि इतने विद्वान व्यक्ति में विनम्रता भी कूट-कूट कर भरी है और समीक्षा पढ़ने के बाद मेरे मन ने उनकी जो सौम्य छवि गढ़ी थी, वास्तव में, ये कहीं उससे अधिक सौम्य निकले।

इसके बाद उनसे अक्सर होती मुलाक़ातों ने उनकी कार्य-क्षमता ही नहीं, उनकी विविधतापूर्ण सर्जना के सारे बंद खोल दिये, जिससे ये पता चला कि वे संवेद्य गीतकार हैं, गंभीर कवि हैं, अप्रतिम ग़ज़लकार हैं; कुशल गद्यकार और नाट्य-सर्जक हैं, सुद्रष्ट चित्रकार हैं, सुमधुर गायक-संगीतकार हैं, सुचिंत संपादक हैं; ये पूछिये कि क्या नहीं हैं; और इन सबसे ऊपर औघड़-अनुरागी हैं जो आज में, वर्तमान में विश्वास करते हैं, कल की चिन्ता नहीं करते।

तकरीबन पचास से भी अधिक पुस्तकों के प्रणेता डॉ. अमरेन्द्र आज के दौर के ऐसे साहित्यकार हैं, जिनके ऊपर न जाने कितने स्मृति-ग्रंथ लिखे जा चुके और विभिन्न विश्वविद्यालयों के न जाने कितने विद्यार्थियों ने इनकी रचनाओं पर शोधकार्य किये; फिर भी इनकी रचनाधर्मिता का प्रवाह आज भी पूर्व की भांति उद्दाम बना हुआ है। इतना ही नहीं, आज के कम्प्यूटर-युग की आभासी दुनिया

में, 'सोशल मीडिया' पर भी वे अद्यतन रचनाओं के माध्यम से अपनी धमाकेदार उपस्थिति बनाये हुए हैं।

डॉ. अमरेन्द्र के रचना-संसार को यदि हमें देखना हो तो उसके दो अलग-अलग ध्रुव दिखाई देते हैं। एक तो उनका वह लेखन है जो हिन्दी में है और दूसरा उनकी मातृभाषा और अंग-प्रदेश की सशक्त बोली अंगिका में। पर ये अत्यंत आश्चर्यजनक है कि विधा, विषयवस्तु, शिल्प और विविधता की दृष्टि से विश्लेषण करने पर हम ये नहीं कह सकते कि उनका लेखन किसमें श्रेष्ठ है—हिन्दी में या अंगिका में; क्योंकि दोनों भाषाओं में उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं को लेकर, समान अधिकार और उच्च कला-कौशल के साथ लिखा है। चाहे वो ग़ज़लें हों, कवितायें हों, गीत-नवगीत या प्रबन्ध काव्य हों; आलोचना या काव्यशास्त्र हो; कहानी, उपन्यास या नाटक, रेडियो नाटक या रेडियो रूपक- एकसाथ सारी विधाओं में एक-सी तल्लीनता, तन्मयता और रागात्मकता के साथ इन्होंने लिखा है। इसके अलावा बच्चों के लिये इन्होंने बालगीत और बुझौव्वल लिखे, हिन्दी की श्रेष्ठ रचनाओं का अंगिका में अनुवाद किया और अनेक पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन भी किया। अगर कोई एक व्यक्ति सर्जना के इतने सारे आयामों को छूता है, वो भी दो-दो भाषाओं में; समान सौष्ठता, सौन्दर्य, सफलता और अधिकार के साथ, तो वो कोई महामानव ही हो सकता है। मेरी दृष्टि में डॉ. अमरेन्द्र साहित्य के ऐसे ही महामानव हैं।

डॉ. अमरेन्द्र पर लिखित आधार-ग्रंथों तथा स्वयं उनके रचित मौलिक ग्रथों का जब मैंने अध्ययन-विश्लेषण किया, तो पता चला कि उन्होंने १९७८ के आसपास, या शायद उससे भी पहले से लिखना शुरू कर दिया था, पर उनका पहला काव्य-संग्रह 'जनतंत्र का विक्रमशिला', सन् १९८१ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कविताओं का तेवर बाग़ी है, क्योंकि ये 'आपात्काल' के विरोध के गर्भ से निकली कवितायें हैं—

''मैं सत्ताधीश हूं
मैं किसी की परवाह नहीं करता
व्यक्ति में/समाज में/राष्ट्र में
अभी मेरी ही तूती है
सब मेरी बातों को मानने के लिये हैं
व्यवस्था क्या है
मेरे पैर की जूती है।''

इसी संग्रह की एक और इसी तेवर की कविता है- 'आदमी को मत

मारो', जिसमें पराधीनता के डंक से मनुष्य को बचाने का प्रयास शामिल है–

''क्या कभी तुमने यह भी सोचा है
कि जब आदमी ही नहीं होगा इस देश में
तो इतने बड़े संविधान का, आदमी की सुरक्षा के लिये
क़ानूनों के जाल का, पुलिस की भीड़-भाड़ का क्या मानी
सोचा, जब आदमी ही नहीं होगा
तो लोग किससे कहेंगे अपने एकान्त का दर्द...।''

इस संग्रह की कविताओं को देखने से आपात्काल पर लिखने वाले कई कवियों की कवितायें बरबस याद आ जाती हैं। मसलन, गोपीवल्लभ सहाय ने लिखा–

''जहां-तहां जुल्मों का गोल, बोल जवानों हल्ला बोल।
नेताओं के चिकने चोल, काला चेहरा, उजला खोल,
झूठे नारे, नकली ढोल, लम्बी कथनी, करनी गोल,
खुलती जाती सबकी पोल, बोल जवानों हल्ला बोल।''

सत्यनारायण ने लिखा–

''अजब हाल है, सबकुछ गोरखधंधा है
जनता की गर्दन, शासन का फंदा है
कसती जाती फांस कि क़ातिल अंधा है
होश करो, यह हिटलरशाही, कितने दिन... कितने दिन...।''

परेश सिन्हा ने लिखा–

''चमचों की चलती रही सूबेदारी,
आंखों में छा गयी मद की ख़ुमारी,
दांव-पेंच क्या जाने जनता बेचारी,
भूखों और नंगों की हुई रेल-पेल
खेल भाई खेल, खेल भाई खेल।''

रवीन्द्र राजहंस ने लिखा–

''अनशन शिविर में कुछ लोग
रेणु के हीराबाई के रचयिता समझ झांकने आये
कुछ को पता चला कि
नागार्जुन नीलाम कर रहे हैं अपने को
इसलिये उन्हें आंकने आये।''

स्पष्टतः उस समय के अन्य कवियों की भांति, डॉ. अमरेन्द्र के इस संग्रह

की कवितायें भी युगीन प्रभाव की उपज हैं, इसलिये इन कविताओं का मूल स्वर प्रतिरोध-प्रतिकार का है; मनुष्य को, मनुष्यता को बचाये रखने की चिन्ता का है, और निस्संदेह इस चिंता से झांकती विवशता का भी है। यही कारण है कि इन कविताओं में सरलता और सपाटपन है, बिना किसी लाग-लपेट के अपनी बात कहने का साहस है; किसी विशेष शिल्प या शैली का आग्रह इन कविताओं में नहीं मिलता।

लेकिन इसके बाद के, या लगभग इसके आसपास आये अन्य संग्रहों में नवगीत और हिन्दी ग़ज़ल-जैसी युगीन शैली को अपनाने के प्रयास के साथ-साथ, सपाटपन से गेयता की ओर, और सरलता से बांकपन की ओर जाने का आग्रह दिखाई देता है। 'देहरी पर दीया' अमरेन्द्र जी के नवगीतों का संग्रह है, जिसमें शृंगार का महत्वपूर्ण पक्ष—वियोग प्रायः मुखर रहा है—

''वर्षा की रात तुम्हारे बिन, ऐसी
जैसे अकेले में मुझको अटा कर
गुर्रा रही हो टीले पर बाघिन
नन्हीं फुहारों के संग
छू जाती है तन-मन को हवा
क्या कहूं तुमको
इस देह को कैसे लगे पुरबा....''

इस संग्रह के एक और गीत के वेदना-स्वर में ऋतुओं का बदलता स्वर भी सम्मिलित हो गया है—

''आख़िर चैत की पुरवाई को
छू ही गई जेठ की बेहाई लू
तुम्हें भी प्रीत बासी-सी लगती है
मेरा भी मन हो गया साधु।''

इसके विपरीत 'मन गोकुल का गांव' संग्रह की मूल भावना प्रणय और अनुराग है। स्पष्ट है कि इसके गीतों में प्रेमालस हृदयों में उठने वाली उन्मत्त तान भी होगी; मंद-मंद मलयानिल के साथ मुसकाता चांद भी होगा और निद्रालस-श्लथ बांहों में जागती प्रीत की दीपित मनुहार भी होगी—

''साथ तुम्हारे मैं ऐसे था,
नाग कुंडली में जैसे था।
होड़ा-होड़ी में अधरों के
रात-रात भर तन लहके थे।

रेशम की-सी रात लगी थी
क्षण-क्षण में मधुमास विपुल थे।
एक-एक कर सीअन सारे
संयम के जाते थे खुलते
सूनी-सी निस्तब्ध दिशा में
मिल कर सौ चिरई चहके थे।''

पर इस रोमानी और देहगंधी-मांसल प्रेम से अलग, प्रेम का एक उदात्त स्वर भी होता है जिसमें मादल के स्वर, पपीहे की 'पिउ-पिउ' और मुरली की तान शामिल रहती है—

''प्राणों में बजते हैं मादल
आओ, तुम्हें लगा दूं काजल।
फिर सूने-सूने से नभ में
बादल आये कजरारे हैं
फिर पपीहा की चीख़ें गूंजीं
मोर सुनाये मल्हारे हैं
जी चाहे मुरली पर गाऊं
पहले तुम्हें पिन्हा दूं पायल...।''

आगे चलकर डॉ. अमरेन्द्र के गीतों और ग़ज़लों में, शृंगार के संयोग और वियोग पक्ष के साथ-साथ, लोक की आदिम गंध और परछाईं भी आ समाई, जिसमें महुआ-जूही-कचनार-नीम भी गाते मिलते हैं; जहां मौसम की चुहल है तो प्रिया की शरारते भी हैं; वहां कोयल की कूक में भी संगीत है और मेढ़कों की 'टर्र.. टर्र' में भी—

''निमिया की छांव बोले, आज मेरा गांव बोले
पोखरों में खिल गये हैं श्वेत नीले दल कमल के,
खेत की पगडंडियों से चैत आया है संभल के,
आ गये हैं झुण्ड बांधे कील, हारिल संग पपीहा
फूल जैसे खिल पड़े हैं मुक्तली के बोल आहा
हां निपट जायें हमेशा काग ज्योंही कांव बोले।''

उनका ये गीत उनके संग्रह 'दीपक मेघ हिण्डोल' संग्रह में सम्मिलित है। ये गीत तथा इसके साथ कुछ और गीत-ग़ज़लें मैंने उनसे तब ली थीं, जब मैंने भागलपुर में 'स्वर निनाद' नाम से एक शृंखला का प्रसारण किया था। उस शृंखला में चुनिन्दा गीतकारों की रचनाओं पर संक्षिप्त टिप्पणी के साथ, उनके गीतों की

संगीतमयी प्रस्तुति की जाती थी। हालांकि इस शृंखला के अन्तर्गत मैं सिर्फ़ तीन रचनाकारों—डॉ. अमरेन्द्र, धनंजय मिश्र और डॉ. आभा पूर्वे पर ही काम कर पाया था कि मेरा स्थानान्तरण पटना हो गया और ये काम फिर दुबारा हो नहीं पाया।

इस रेडियो-शृंखला में अमरेन्द्र जी का एक और मधुर-मोहक गीत था, जिसे मैंने युगल-स्वर में गवाया था—

"एक पल का साथ दो तुम, सौ जनम का साथ दूंगा।
एक पल का साथ दो तुम, सौ जनम का साथ दूंगी।

तुम पपीहे-सी पुकारो एक सुर में एक लय में
तुम मुझे पाओगी चातक चकित खंजन के सगुन में
आज हौले से जरा तुम उंगलियां मेरी तो छूओ
बज उठेंगे प्राण काया में तुम्हारे एक क्षण में
तुम सजो दुल्हन तरह जो मैं तुम्हें बारात दूंगा।"

लेकिन इसी कार्यक्रम में, इससे बिल्कुल अलग धरातल का उनका एक गीत शाामिल किया था, जो छेड़छाड़ और चुहल से आरम्भ होकर, मनुष्य-जीवन के कठोर यथार्थ को उद्घाटित करता है, स्वप्न और सत्य के अन्तर को उद्भासित करता है—

"लोग मुझसे पूछते हैं जूही कचनार क्या है
मैं उन्हें अब क्या बताऊं, दो दिलों का प्यार क्या है।

नींद में दुनिया लगे क्यों झील बनके गीत गाती
और जब आंखें खुलीं तो एक मरघट छोड़ जाती।
फूलों की घाटी में ख़ुश्बू का ये हाहाकार क्या है
मैं उन्हें अब क्या बताऊं, दो दिलों का प्यार क्या है।..."

इसी प्रकार उनके इस गीत में संतप्त हृदय की जो अनुरागमयी पुकार है वो किसे आहत न कर देगी; हालांकि मुझे नहीं पता, ये तीनों गीत उनके किसी संग्रह में हैं या नहीं—

"नागफनी-सी रात हो गई बिन तेरे।
अनहोनी-सी बात हो गई बिन तेरे।
यूं तो बहती हवा बसंती, रेशम चीर से आती छनती
आज अकेले देख मुझे पर,
कुलिश-कठिन सी बात हो गई बिन तेरे।
नागफनी-सी रात हो गई बिन तेरे।"

डॉ. अमरेन्द्र के गीत जहां रसीले, देहगंधी और मोहक हैं; इनके विपरीत, ग़ज़लों का स्वर तीक्ष्ण और बेधक है, जो सामाजिक विद्रूपताओं को अपने पैने शब्दों की घार से काटता चलता है। ये ग़ज़लें समाज में फैली विद्रूपताओं, विडंबनाओं और विसंगतियों की तस्वीर बड़े सधे ढंग से प्रस्तुत करती हैं—

''कोई तो फ़ाकों पे दिन-रात गुज़र करता है,
और एक वो भी है जो अन्न का घर करता है।''

''रोको कोई जो घर से निकलता दिखाई दे,
मुझको ये शहर सारा पिघलता दिखाई दे।''

''अपने वतन का हिस्सा किसी ने हड़प लिया,
झंडा जगह-जगह पे उड़ाते ही रहे तुम।....

आपने जो भी कहा था वो कहां बनता गया,
दर्द उठ-उठ कर यहां हिन्दोस्तां बनता गया।''

लेकिन डॉ. अमरेन्द्र की वो ग़ज़लें ज़्यादा प्रभावित करती हैं, जिनकी रचना उन्होंने बाद में की है और जो 'सोशल मीडिया' में काफ़ी लोकप्रिय हुई हैं, इसके चंद शेर देखे जा सकते हैं—

''मेरे घर के पिछवाड़े से ऊपर उठ के आए चांद,
माथे पर टिकुली-सा चमचम कितना आज सुहाए चांद।

हमदोनों की क़िस्मत ही ये जगने को हैं बनी हुई,
रात-रात भर तरह-तरह से मुझको ये समझाए चांद।

जितना कि तुम भी न मुझको तड़पाते हो रातों में,
उतना तेरी याद दिलाकर मुझको यह तड़पाए चांद।

मैंने तुमको कभी लगाया था सीने से अपने भी,
जैसे गगन फिरा करता सीने से आज लगाए चांद।

(रचना—८ सितम्बर, २०१९)

इसी प्रकार २ सितम्बर, २०१९ को उन्होंने एक ग़ज़ल पोस्ट की जिसमें प्रेम का लोकपक्ष अत्यंत सहजता और अनगढ़ता के साथ प्रतिबिम्बित हुआ है—

''तुमको चाहा तो मन ये अगहन हो गया,
धान सोने के हों जैसे, तन हो गया।

प्यार में मैंने अब भी और जो कुछ कहा,
लोग कहते हैं शेरो-सुखन हो गया।

प्रीति में मेरे जीवन का सारा समय,
कुछ जगन हो गया, कुछ रगन हो गया।

कामना मुक्ति की ले के अब क्या करूं,
मेरा जीवन तो होमो-हवन हो गया।''

ये तो निर्विवाद है कि साहित्य को जीवित रखने का काम उसका लोकपक्ष ही करता है। लोकपक्ष, जिसमें ऋतुएं हैं, राग है, रंग है। वहीं कुलिश-कठोर धरती का बदलता-बिगड़ता मिजाज़ भी है। वहां आम बौरा जाता है, अमड़े का जी खट्टा हो जाता है; मौलसिरी की मांग भर जाती है तो माधवलता दुल्हन बन सज उठती है; वहां मल्हार और कजरी के बोल हैं, बांसुरी की अनुगूंज है और 'फगुआ, चैता, कजरी, झूमर, शंकर देस, झिंझोटी' की आलाप-तानें भी।

डॉ. अमरेन्द्र के पूरे साहित्य को उठा कर देखें तो पायेंगे कि ये प्रवृत्ति उनके साहित्य—विशेषकर काव्य में एक प्रकार से परिपाक हो चुकी है। आगे चलकर उन्होंने 'सॉनेट', 'हाइकू'—जैसी काव्य-शैलियों में भी काफ़ी लिखा। उनके 'सॉनेट' का एक संग्रह भी प्रकाशित है—'साधो सुर का देश'। इसका प्रकाशन सन् २०१५ में हुआ। डॉ. अमरेन्द्र ने इस पुस्तक के समर्पण में बहुत विनम्रता, और मैं तो कहूंगा—दीनता से- लिखा है—''अपने ही जीवन को, जिसका न कोई अतीत रहा, न कोई वर्तमान है, और न भविष्य होगा।'' विनम्रता तो फिर भी स्पृहणीय है, पर दीनता क्यों? संग्रह की कविताओं को देख कर तो ऐसा नहीं लगता; क्योंकि यहां अतीत की स्मृतियां भी हैं, वर्तमान की विसंगति भी और भविष्यत् की पुकार के साथ उसकी अनुगूंज भी—

''क्या देखा है जो तुमने देखा दिल्ली की संसद को
बीस लाख की गाड़ी पर मंत्री को हाथ हिलाते।

मैंने तो देखा है फगुआ को ही धूम मचाते
रंगों को गाते देखा है होरी और जोगीरा

मैंने खेतों को देखा है सर पर लिये फ़सल को
बौरों को देखा है कोयल-शुक को ख़ूब नचाते।'' ('ध्रुवान्तर')

दरअसल जिस दीनता की बात मैं ऊपर कर आया हूं, संग्रह की अनेक रचनाओं में इस दीनता का प्रक्षालन हो गया है, जिसके बाद ये कवितायें प्रतिवाद की, प्रतिरोध की और पुकार की कवितायें बन गई हैं। व्यंग्य ज़रूर इन कविताओं का मूल स्वर है, पर व्यंग्य की विद्रूपता ही करुणा उपजाने में क़ामयाब होती है, जो उनके इस संग्रह की कविताओं में दिखाई देती है—'भय' कविता में उजड़ते खेत और उखड़ते किसान की दशा, व्यंग्य के भीतर से करुणा उपजाती है—

''कल तक अपने खेत का खाता जी भर अघा-अघा कर
अब वेतन के चक्कर में खेतों को बेच रहा है।
पहले तो कुछ अहा-अहा था, अब तो हहा-हहा है
भूल गया है अब तो रखना कुछ भी बचा-बचाकर।''

व्यंग्य और करुणा में बड़ी सूक्ष्म अन्तर्संगति होती है। व्यंग्य जीवन का एक पहलू है जिसकी व्यंजकता दिखाई देती है; पर उसका दूसरा पहलू स्वयं की परछाई होती है। कहते हैं न कि दूसरों पर हंसने से पहले, स्वयं पर हंसना चाहिए। स्वयं को नोचे, छिन्न-भिन्न किये बिना मारक व्यंग्य की प्राप्ति संभव नहीं। अपने को इस प्रकार छिन्न-भिन्न करने के बीच पाने-खोने, हारने-जीतने, लुटने-मरने के तमाम ऊहापोहों में छटपटाते सर्जक की चेतना का विस्फोट ही उसे वास्तविक काव्य-रस की ओर ले जाता है, जिसे इस संग्रह की कविता 'रेलयात्रा' और 'पिता का पत्र' में देखा जा सकता है—

''बेटी को एग्ज़ाम दिलाने पत्नी गई है पटना

हो सकता है अगले ही क्षण टूटी मिलें पटरियां
ट्रेन डकैती ही घट जाये दिन ढलने से पहले
या डब्बे में आग लगा दे, सोच-सोच मन दहले
क्यों न रोक दिया मैंने ही उसके जाते बेरियां।'' (रेलयात्रा)

''भीड़भाड़ से बचते रहना, कब बम ही फट जाये
घर ही कहां सुरक्षित होगा, जिस घर में रहते हो
देश छोड़ परदेश में पुत्तर कितना दुख सहते हो
यही मनाता, दुख के ये दिन सबके ही घट जाये।''
(पिता का पत्र)

''बचपन तो बस शहद-शहद था, पका हुआ कटहल था
और जवानी के दिन; जैसे, पके आम-जामुन हों

डम्मक-डम्मक मीठे अमरुद का यह स्वाद निराला
और बुढ़ापा क्या आ बैठा; कटा करेला मुंह में।'' (बुढ़ापा)

असल में आज का मनुष्य जीवन के मोर्चों पर अपने को अधूरा, अभावग्रस्त पाता है। इस भयानक और क्रूर समय में वो अपने सपनों की बुझी राख में चिन्गारी तलाश रहा है। आज की कविता वर्तमान सभ्यता की कोख से निकली है, इसलिये इसके विषबेल को भी अच्छी तरह पहचानती है, जिसका सहारा लेकर खोखली सामाजिक मर्यादायें और सत्ता एवं व्यवस्था के छद्म-क्षत्रप, इन्सान की गरिमा को घायल कर, वर्ण-वर्ग की दीवारों पर धर्म, जाति, भ्रष्टाचार के कीचड़-सने पगों से चढ़ते चले जा रहे हैं। आज की कविता इस बोझिल सभ्यता के संवेदनहीन जड़त्व से उबरने की कोशिश कर रही है; विगत की स्मृतियों को जगाकर, वर्तमान की ओर तर्जनी उठाकर वो भविष्य की ओर इशारा कर रही है—

''मन करता है रच दूं फिर से एक नया संसार
इस पत्थर को छील-छाल कर मूर्ति नई एक गढ़ लूं
किसके दिल में क्या हैं बातें एक-एक कर पढ़ लूं
माना कि मैं नहीं विधाता-विधि ही या अवतार।

मन करता है देश-देश को जोड़ूं, एक बना दूं
खाई को कंधे पर ले लूं, गिरि से उसे मिला दूं।''

दरअसल डॉ. अमरेन्द्र की रचनाओं की भावप्रवणता और अनायासता, उनके जीवन-संघर्ष और उसके बीच से उनकी स्वयं की बनाई पहचान के भीतर से उभरती है, जो हर क़दम पर उन्हें मौलिक और सरोकार में बने रहने की चुनौती पेश करती है। नहीं तो क्या कारण है कि आज जब साहित्य की एक विधा को पूरा साहित्य-जगत् 'लघु कथा' कहने और स्थापित करने में जुटा है; अमरेन्द्र जी उसे 'अणु कथा' कहते हैं (बल्कि वे दोनों विधाओं में अंतर भी करते हैं); वे 'सलेस भगत'—जैसा, अंगिका लोकगाथा पर आधारित उपन्यास लिखते हैं; दलित-जीवन पर केन्द्रित 'गेना' महाकाव्य रचते हैं; ('गेना' काव्य का बाद में स्वयं हिन्दी में काव्यानुवाद किया), अपने ही जीवन की कथा प्रस्तुत करता प्रबंध-काव्य 'आलाप संलाप' का सृजन करते हैं और अंग-प्रदेश की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक और समाजशास्त्रीय विवेचना प्रस्तुत करने वाला तेरह कड़ियों का रेडियो धारावाहिक 'अमृतदेश अंगप्रदेश' का लेखन तथा भास के तेरह नाटकों का रूपांतरण कर डालते हैं।

मैं ख़ुद को सौभाग्यशाली मानता हूं कि रेडियो धारावाहिक 'अमृतदेश

अंगप्रदेश' का मैं प्रस्तोता रहा। तेरह कड़ियों का ये धारावाहिक 'अंगदेश का अमृतमंथन' शीर्षक से १ फ़रवरी २०११ से २४ मई, २०११ के बीच आकाशवाणी, भागलपुर से प्रसारित हुआ तथा आगे चलकर इसके एक घंटे का संपादित नाट्यान्तर का प्रसारण, आकाशवाणी के राष्ट्रीय प्रसारण—'नाटकों के अखिल भारतीय कार्यक्रम' में, २७ अक्तूबर, २०१२ को दिल्ली से हुआ। उस वक़्त मैं पटना आ चुका था और इसका निर्माण आकाशवाणी, पटना में, पटना के कलाकारों को लेकर हुआ।

आकाशवाणी, भागलपुर से धारावाहिक 'अंगदेश का अमृतमंथन' के प्रसारित होने से पहले मेरे और डॉ. अमरेन्द्र के बीच 'स्क्रिप्ट' को लेकर अनेक बार मंथन हुआ। तेरह कड़ियां तो निश्चित थीं कि होंगी ही, पर उन कड़ियों में कथा का समायोजन किस प्रकार होगा कि सप्ताह में एक बार प्रसारित होने पर भी सुनने वाले पिछली कड़ी से कड़ी मिला लें और उन्हें कोई कड़ी छूट जाने के बाद भी ये न लगे कि वे पीछे कुछ छोड़ आये हैं। अमरेन्द्र जी ने इसके लिये वाचन-शैली का प्रयोग किया। प्रत्येक कड़ी में पहले वाचक द्वारा पिछली कड़ी की थोड़ी भूमिका दी जाती थी, ताकि श्रोता उससे संगति जोड़ सकें। मेरा आग्रह सिर्फ़ इतना था कि इसमें आये संदर्भों का नाट्यकरण हो; क्योंकि नाट्यशैली में चित्रबिम्ब बनता है जो सीधे- सीधे बात को कहने की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और अभिव्यंजक होता है। अमरेन्द्र जी ने वैसा ही किया और इसके बाद इसका जो रूप निखर कर आया, वो अपने-आप में एक इतिहास है। हां, इसका शीर्षक-गीत और बीच-बीच में संदर्भ से जुड़े कुछ गीत भी उन्होंने लिखे जो अंग की माटी और संस्कृति से पूरी तरह जुड़े हुए थे; बल्कि मुझे याद है कि कुछेक गीतों में लेखिका-कवयित्री और आकाशवाणी, भागलपुर में उद्घोषक-पद पर कार्यरत, डॉ. मीरा झा और सांत्वना साह ने अपना स्वर दिया था।

दुर्भाग्य की बात है कि सांत्वना साह का वर्ष—२०१८ में, उनके सेवाकाल के बीच ही असमय निधन हो गया। मैं समझता हूं, उनका असमय जाना, आकाशवाणी, भागलुपर की ही नहीं; पूरे प्रदेश की, वहां की संस्कृति की, संगीत की और समाज की अपूरणीय क्षति है।

इस धारावाहिक का सबसे मज़बूत पक्ष था, इसके सूत्रधार के रूप में अणिमा सिन्हा का सशक्त, उम्दा और प्रांजल स्वर के साथ वाचन। अणिमा के शुद्ध, प्रांजल और निर्दोष वाचन ने इस धारावाहिक 'अंगदेश का अमृतमंथन' को एक नई ऊर्जा से भरकर उसे श्रवणीय बनाया। इसका उल्लेख डॉ. अमरेन्द्र ने 'अमृतदेश : अंगप्रदेश' पुस्तक की भूमिका में कुछ इस प्रकार किया है-''....मैं

आभारी तो इस रेडियो रूपक में अभिनय करने वाले सभी कलाकारों के साथ डॉ. विजय कुमार मिश्र और अणिमा कुमारी का विशेष रूप से हूं, जिन्होंने सूत्रधार और वाचिका की भूमिका में अपने स्वर से जैसे अमृत-सागर ही मथ दिया हो।''

ऐसा उद्‌गार वही व्यक्त कर सकता है, जिसके पास लेने के लिये शायद कुछ न हो, पर देने के लिये बहुत-कुछ हो; जो सबल हो, समर्थ हो, सम्पूज्य हो, वही इस प्रकार की करुणा बरसा सकता है; वरना आजकल तो ज़्यादातर लोगों के मुंह से झूठी तारीफ़ भी नहीं निकलती, उनके मुंह से दूसरों की प्रशंसा के बोल तक नहीं फूटते; अपनी लेखनी में स्थान देकर उसे प्रशंसा के शीर्ष पर बिठाना, वही कर सकता है, जिसका हृदय विशाल हो, सच्चा हो, निर्मल हो और जो प्यार की अनुभूति से भीतर तक भरा हो—''पुरइन के पत्तों पर/ओस की बूंदें/जब भी मिले, ऐसा ही बोध हुआ/पल में सौ जन्मों के साथ का/अनुरोध हुआ...''। ऐसा वही करता है, जो दिल से अमीर होता है; ऐसा वो करता है, जो विचारों और संस्कारों से बड़ा होता है; ऐसा, जो अपने को बड़ा नहीं समझता, वो करता है। यही डॉ. अमरेन्द्र ने किया, ''बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोले बोल; रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मम मोल''। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी इस कृति को मुझे समर्पित कर जैसे उन्होंने मेरी देन मुझे ही लौटा दी—

''तुमने ही तो यही किया है, अमरेन्दर; हो भावक
कहीं किसी पर बर्फ़ बने हो, कहीं किसी पर पावक
यह भी तुमसे नहीं हुआ कि किसी वाद से बंध लूं
चर्चा में रह यश को पाऊं; जहां सधे न, सध लूं
तुमने सोचा, अलग-थलग ही रहूं, भीड़ से बचकर
दिखलाऊंगा फिर कबीर और दादू का पथ सच कर...।''

(आलाप संलाप)

या कि कर्ण की तरह उन्होंने अपने मन का दान दे दिया—''लौटूं मैं किसलिए भला फिर, व्यर्थ मुकुट और मान, मां, मैंने दे दिया तुम्हें है अपने मन का दान।'' यही कारण था कि हमारे मन एक थे, जीवन-संघर्ष एक थे, सोच की धरातल एक थी, वह आज भी उतनी ही मज़बूत है।

यों तो डॉ. अमरेन्द्र के विपुल और वैविध्यपूर्ण साहित्य-भंडार में रत्नों की कोई कमी नहीं है; और ये भी सच है कि उनकी रचनाओं का मूल्यांकन दस-बीस क्या, हज़ार पृष्ठों में भी संभव नहीं। उनकी कुछ मौलिक प्रवृत्तियों और उद्‌दाम रचना-धारा के थोड़े-बहुत जल अंजुरी में उठाये-भर जा सकते हैं, भरे नहीं जा सकते; उसके भीतर से मोती-माणिक्य लाना उन शोधार्थियों के लिये ही संभव है,

जो डॉ. अमरेन्द्र के रचना-सागर में डुबकी लगा सकते हैं; ये मुझ-जैसे अकिंचन के वश की बात नहीं।

फिर भी, मैं डॉ. अमरेन्द्र की तीन कृतियों का उल्लेख प्रमुख रूप से करना चाहूंगा—'आलाप संलाप' (काव्य-संग्रह), 'मधुशाला' (अनुवाद) और 'कर्ण' (प्रबंध- काव्य)।

'आलाप संलाप' में शामिल उनकी कुछ स्वतंत्र कविताओं को छोड़ दें तो ये उनके तीन प्रबंध-काव्यों—'आलाप संलाप', 'गेना' और 'वेणुवंशी' का संकलन है। 'आलाप संलाप' का आरम्भ जिन पंक्तियों से होता है, उसी से इस काव्य की पूरी भूमिका स्पष्ट हो जाती है-

''सोच रहे हो क्या अमरेन्दर, अपनी कथा लिखूं
आगे-पीछे, वर्तमान की अपनी व्यथा लिखूं
वह भी छंदों की ही लय पर, रगण-जगण के साथ
सौघ बनाने निकले हो, और ख़ाली दोनों हाथ...''

निराला ने भी 'सरोज स्मृति' में यही कहा था-

''दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूं आज जो नहीं कही....।''

पर निराला की कविता उनके जीवन के अभावों और संघर्षों की छाया से ग्रसित होने के बावजूद उनकी पुत्री- सरोज को लेकर थी, जबकि 'आलाप संलाप' डॉ. अमरेन्द्र के कवि-चरित्र और व्यक्ति-चरित्र के बीच प्रश्नाकुल संवादों की एक कड़ी बनाती चलती है, जिसमें कवि और व्यक्ति अपने बाहर और भीतर के अंतर्द्वन्द्वों, घात-प्रतिघातों, संघर्ष, वेदना और आत्म-परवशता से जूझता रहता है। दरअसल ये पूरा काव्य-खंड निरन्तर अभावों, कष्टों, संघर्षों और प्रहारों से लड़ते उस रचनाकार की व्यथा का आर्तनाद है, जो इसे निराला की 'राम की शक्तिपूजा' और 'सरोज स्मृति', प्रसाद की 'आंसू' और मुक्तिबोध की 'अंधेरे में'-जैसी कविताओं के समकक्ष लाकर खड़ा कर देती है-

''धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।''

('राम की शक्तिपूजा')

''बजने दो सांकल
उठने दो अंधेरे में ध्वनियों के बुलबुले,
आप चला जायेगा आया था जैसा।
खड्ड् के अंधेरे में मैं पड़ा रहूंगा

पीड़ायें समेटे।

('अंधेरे में')

''रो-रोकर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी।''

('आंसू')

डॉ. अमरेन्द्र में आत्मवेदना का यही आर्तनाद है जो रुदन की करुण रागिनी बन कर सुनाई देता है-

''फोटू मुझे दिखाता है वह मां की हिलती ठठरी
छोटी-सी खटिया पर जैसे बंधी हुई हो गठरी
और हवन से उठा हुआ ज्यों धुआं चिता का धू-धू
बहने लगता घोर भयावह भय मन में है हू-हू...।''

इसमें आत्मव्यथा तो है, पर मानवीय सरोकार से परखने की कोशिश करें तो यह आम जन के जीवन-संघर्ष, उसके स्वप्न-भंग और उसकी पीड़ा के परिष्कार की कविता बन जाती है। निराला में भी यही द्वन्द्व है—''एक साथ जब शतघात घूर्ण/आते थे मुझपर तुले तूर्ण/देखता रहा मैं खड़ा अपल/वह शरक्षेप, वह रण-कौशल।''

(सरोज स्मृति)

इस कविता में रचनाकार की सृजन-दृष्टि बार-बार अपनी परंपरा, संबंधों और अपनी उस मिट्टी की ओर लौटती है, जिसमें बालपन की स्मृतियां हैं, घर का आंगन है, पोखर और नदी किनारे की बंसविट्टी है, देवी का थान है, मेले और तीज-त्योहार हैं; लेकिन इन स्मृतियों के बीच अनचाहे आ जाता है पीड़ा का सैलाब, जिसने लील लिया था अपनों को—

''कभी चीख़ती बहन चिता पर कभी चीख़ता भाई
मैंने आंखों से देखी है, जली हुई अमराई
जली हुई कोयल की काया, पंचम स्वर का शव
बस शृंगाल के और स्वान के व्यूहबद्ध हैं रव
और वही फिर जलावर्त्त है, उपलाता; फिर नीचे
आख़िर ऐसा स्वप्न भयावह, क्यों मेरे है पीछे।''

इस प्रकार के निजी संबंधों की कातर अभिव्यक्तियां वैसे तो पूरे काव्य में बिखरी पड़ी हैं; किन्तु इसके अतिरिक्त साहित्य में मठाधीशी, पूंजीवाद और

बाज़ारवाद का आम जीवन में पैठ, धर्म के आडम्बर, वर्ग-विषमता से लेकर प्रकृति और पर्यावरण की चिन्ता भी इसमें लयाश्रित है।

दरअसल मुझे लगता है कि डॉ. अमरेन्द्र के काव्य का मूल स्वर राग, रंग और ऋतु है। इनके यहां प्रेम में भी प्रकृति है, उदासी में भी; संयोग में भी है विछोह में भी; दुर्दिन में भी है, शोक की रात्रि में भी। इस संग्रह का 'गेना' खंड-काव्य मूल रूप से अंगिका में रचा गया था, पर हिन्दी रचनानुवाद मूल जितना ही सशक्त और प्रभावोत्पादक है- उतना ही सरस, सुन्दर, सौष्ठवपूर्ण।

नौ सर्गों का ये पूरा काव्य-खंड, डॉ. अमरेन्द्र की मूल प्रवृत्ति और प्रकृति के अनुरूप प्रयोगात्मक है, जिसका निदर्शन इसके सर्गों के नामकरण में ही हो जाता है—जन्म खंड, विपत खंड, ग्रीष्म खंड, वर्षा खंड, शरत् खंड, शिशिर खंड, नगर खंड, पतझड़ खंड और वसंत खंड। काव्य की विषयवस्तु के केन्द्र में 'गेना' नाम का, समाज के सबसे उपेक्षित तबके का वो चरित्र है, जिसके जीवन की कहानी उपेक्षा और अत्याचार की स्याही से लिखी गई है—

''जबकि एक ही देव जीव देते, पालते हैं
और एक देवता ही सबको विनाशते हैं
तब कैसे भेद हुआ आदमी-आदमी में ही
एक-दूसरे का क्यों ये उपहास करते हैं...?''

इस मूल विषयवस्तु को लेकर इस काव्य की कोशिश, अंचल-विशेष के तमाम सामाजिक संदर्भों को, उसकी संवेदना और अन्तर्विरोधों को, लोकतत्वों के माध्यम से समझने की है—

''रानी सुरंगा का, कमला का गीत वह
मरे हुए बाला से बिहुला की प्रीत वह
राजा सलहेस का वह सपना-जो मैया का
सुनते ही मथ जाता मन था सुनवैया का
जाने तो वे दिन कब लौटेंगे देश में
मंगरू दा मोहेंगे भतृहरि के भेष में....''

वास्तव में, 'गेना' चरित्र-प्रधान होकर भी, लोक के व्यापक संस्पर्श से जुड़ा लोकजीवन का काव्य है, जो अंचल-विशेष के व्यापक स्वरूप का चित्रण करने में पूरी तरह समर्थ है, इसलिये अपने कलेवर में ये 'महाकाव्य' की पात्रता रखता है। फिर भी, मैं इसे 'आंचलिक कथा-काव्य' कहना चाहूंगा।

संग्रह का आख़िरी खंड 'वेणुवंशी' है जिसके बारे में स्वयं डॉ. अमरेन्द्र का कथन है कि ये उनके कवि-जीवन की प्रारम्भिक रचना है, और जैसी लिखते

समय थी, वैसी ही है। इस स्वीकारोक्ति की वैसे कोई आवश्यकता थी नहीं, क्योंकि कई बार लेखक की पहली या शुरुआती दौर की रचनायें सशक्त और सफल सिद्ध हो जाती हैं और निरंतर लिखने के बाद भी कोई-कोई रचना पहले की अपेक्षा कमज़ोर लगने लगती है। एक पाठक या समीक्षक की दृष्टि में रचना का जो वैशिष्ट्य है, वही उसे लोकप्रिय, सशक्त या कमज़ोर बनाता है।

बहरहाल, 'वेणुवंशी', कृष्ण के ब्रजभूमि छोड़ने और उनके कर्मशील जीवन में उतरने की कथा है। वैसे भी, मुझे लगता है कि संसार-भर के साहित्य को यदि खंगाला जाये तो कृष्ण-प्रसंग पर आज तक जितना लिखा गया है, उतना किसी और पर नहीं। हिन्दी साहित्य में तो भक्तिकाल के सूर, मीरा, रसखान से लेकर रीतिकालीन बिहारी, पद्माकर, मतिराम, घनानन्द से होते हुए आधुनिक और उत्तर-आधुनिक काल तक में दिनकर, धर्मवीर भारती और वसंत देव—यहां तक कि उर्दू के कवि नज़ीर अकबरावादी तक, कृष्ण सबके उपजीव्य विषय रहे हैं। इसके बावजूद ऐसी क्या बात थी, जिसने कवि को 'वेणुवंशी' लिखने के लिये प्रेरित किया....?

मुझे लगता है कि कृष्ण का गोपियों के संग जो सखा-भाव है, जो कृष्ण के ब्रजभूमि छोड़ते समय गोपियों की विरह की पीर बन कर, बेकल हृदयों को ही नहीं, वरन् पूरी प्रकृति को आंसुओं में डूबो देना चाहती है; पर कृष्ण इतना निरपेक्ष, आत्मस्थ, कर्तव्यपरायण कि उनपर गोपियों की वेदना का कोई असर ही नहीं होता; वही कवियों-रचनाकारों को प्रेरित करता है लिखने के लिये। डॉ. अमरेन्द्र ने विरह की पराकाष्ठा का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है—

''उदित है चांद नभ तारिकावली के साथ
नीचे अवनि-शिशु को चांदनी खेलाती है
चांद चांद चांद चांद, चांद ये नहीं है सखी
आग का ही पिंड, बात मन में समाती है।''

पर जहां धर्मवीर भारती के कृष्ण वापिस नहीं लौटते—

''सुनो कनु, सुनो
क्या मैं सिर्फ़ एक सेतु थी तुम्हारे लिये
लीलाभूमि और युद्धक्षेत्र के
अलंघ्य अंतराल में...!'' ('कनुप्रिया')

वहीं डॉ. अमरेन्द्र के कृष्ण उद्धव को मथुरा ले चलने को कहते हैं—

''उधौ मुझे साथ लिये चलो मथुरा की ओर
प्रेम के प्रतीक जहां गोपी ब्रजवासिनी

पापी हूं, अधम-सा मैं, दुनिया में अन्य कौन
हो सके तो माफ़ मुझे करना सुहासिनी।''

फिर भी, सम्पूर्णता में यदि हम डॉ. अमरेन्द्र के संपूर्ण काव्य को देखें तो पायेंगे कि उनके काव्य में प्रकृति और मन के भावों-अनुभावों में गहरी एकरंगता और एकतानता है। इनके यहां प्रकृति एक ओर जहां मादक, मोहक, मनोहारिणी है—

''पुष्प को आई हंसी क्या, बिछ गये मकरंद खुलकर;
चीर कर नभ नील गिरती रेशमी यह धूप झर-झर;
कूक से अमराइयों को कर रही बेचैन कोयल;
कोहबर में जग लगे यह ज्यों सरोवर-स्वर्ण उत्पल।
क्या यहां उद्धव करेगा, गोपियों का रास आया।''

वहीं मायावी और मदोन्मत्त भी—

''इस तरह पहले कहां था, सृष्टि का यह रूप अद्‌भुत;
दोपहर, ज्यों माधवी निशि, ये कुसुम, ये गंध अच्युत;
भोर का शृंगार, छवि का इस तरह हैं प्राण पुलकित,
जिस तरह पुरबा, सघन घन, कोहबर में स्वप्न सुरभित।
मन तो वश में ही नहीं है, क्या सुनूं मैं, क्या कहे दिन।''

'मधुशाला', डॉ. हरिवंश राय बच्चन की 'मधुशाला' का अमरेन्द्र जी द्वारा, अंगिका में किया गया अनुवाद है। वैसे ये रचना स्वयं बच्चन जी के लिये चुनौती पेश करती रही है; एक तो उनकी 'मधुशाला' उमर ख़ैय्याम की रूबाइयों वाले 'मधुशाला' के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं थी; दूसरे, इस काव्य का असर देखने के लिये बच्चन जी को बहुत बेबसी और इंतज़ार जीना पड़ा। वे स्वयं लिखते हैं, ''मधुशाला' से मेरे चेतन, अवचेतन, अतिचेतन, संस्कार, अनुभूति में संचित स्मृति-कल्पना, भय-आशा-निराशा, वेदना-संवेदना, हर्ष-विमर्श-संघर्ष, सम्मोह-व्यामोह- विद्रोह—सबका बड़ा क्षरण हुआ...।''

इस कठोर संवेदना के बीच से निकली बच्चन की 'मधुशाला' का अनुवाद, वो भी एक जनभाषा में—अमरेन्द्र जी के लिये भी आसान नहीं रहा होगा। इसीलिये इसकी भूमिका की जगह वे ख़ामोशी जीते रहे हैं। पर कहना होगा कि हिन्दी के पदों में जो सौन्दर्य बच्चनजी ने उकेरा है, डॉ. अमरेन्द्र ने उन्हीं पदों को अंगिका-जैसी सुमधुर और ध्वन्यान्त्मक, रससिक्त जनभाषा में इतना गेय, पठनीय और संवेदनपूर्ण बना दिया है कि दोनों 'मधुशालायें' बहनों की तरह गलबहियां करती दिखती हैं। ये इन दोनों के उदाहरण से और स्पष्ट होगा—

''मुसलमान औ' हिन्दू हैं दो, एक, मगर, उनका प्याला,
एक, मगर, उनका मदिरालय, एक, मगर, उनकी हाला;
दोनों रहते एक न जबतक मंदिर-मस्जिद में जाते;
बैर बढ़ाते मंदिर-मस्जिद, मेल कराती मधुशाला।''

इसका अंगिका-रूप, जिसमें पदों का लालित्य देखते ही बनता है–

''मुसलमान आ हिन्दु-दू छै, एक मतर, हुनकों प्याला,
एक मतर हुनकों मदिरालय, एक मतर, हुनकों हाला;
जब तक एक रहै नै दोनों, मंदिर-मस्जिद में गेलों;
वैर बढ़ाबै मंदिर-मस्जिद, मेल कराबै मधुशाला।''

इसी प्रकार इन पंक्तियों में शब्दों की ध्वन्यात्मकता देखिये, जो एक अलग आनन्द की सृष्टि करता है–

''हमरों 'ठठरी' पर ऊ कानै, जेकरों लोरों में हाला;
आह भरें ऊ जे छै सुरभित, मदिरा पीबी मतवाला;
वैं ही कंधा दी जेकरों कि गोड़ निशांव सें डगमग-डग;
जलौं वही ठां जैठां कहियो, रहलों छेलै मधुशाला।''

इन काव्य-खंडों के अलावा, डॉ. अमरेन्द्र की सम्पूर्ण साहित्य-यात्रा का एक बेहद महत्वपूर्ण पड़ाव सन् २०१८ में प्रकाशित प्रबंध-काव्य 'कर्ण' है। भारतीय पुराकथा में कृष्ण के बाद, कर्ण ही ऐसा चरित्र है, जिसे लेकर आज तक हिन्दी ही नहीं, तमाम भारतीय भाषाओं–यहां तक की अंग्रेज़ी, रूसी और स्पेनिश-जैसी विदेशी भाषाओं में भी, रचनायें हुई हैं। निस्संदेह, विभिन्न रचनाकारों के समक्ष कर्ण के चरित्र का आधार, महाभारत ही रहा है; किन्तु वेदव्यास-रचित महाभारत के बाद में किये अनेक भाष्य भी मिलते हैं, जिनमें इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भाष्यकार द्वारा कर्ण या अन्य चरित्रों के प्रति मोहग्रस्त हो या उससे प्रभावित हो, कोई अतिरेकपूर्ण व्यंजना न की गई हो। दूसरे, भाष्य के अलावा अनेक साहित्यकारों ने कर्ण के जीवन को लेकर उपन्यास, काव्य-कथायें, मुक्तक–यहां तक कि 'कर्ण की जीवनी' तक लिख डाली है। भले ही इन सारी पुस्तकों का उपजीव्य 'महाभारत' रहा हो, पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि लेखक ने अपनी-अपनी श्रद्धा अथवा अश्रद्धा (?) के अनुरूप ही कर्ण के चरित्र को गढ़ा होगा और तदनुसार वास्तविकताओं के साथ-साथ निस्संदेह कल्पना का आश्रय भी लिया ही होगा।

'महाभारत' (व्यास जी ने अपने द्वारा रचित ग्रंथ को 'भारत' नाम दिया था।) के रचयिता वेद व्यास ने सर्वप्रथम अपने पुत्र, शुकदेव जी को इसका

पारायण कराया; तत्पश्चात् अपने अन्य शिष्यों- वैशम्पायन, पैल, जैमिनी, असित-देवल आदि को। शुकदेव जी से इसका पाठ गंधर्वों, यक्षों और राक्षसों तक गया। इसी प्रकार देवर्षि नारद ने देवताओं को, असित-देवल ने पितरों को और वैशम्पायन ने मनुष्यों को इसका प्रवचन दिया। इसके बाद प्राचीन वाङ्मय की यदि हम बात करें तो 'शतपथ ब्राह्मण' (११०० ईसा पूर्व) तथा 'छांदोग्य उपनिषद्' (१००० ईसा पूर्व) में महाभारत के पात्रों का उल्लेख मिलता है। पाणिनी के 'अष्टाध्यायी' (६००-४०० ईसा पूर्व) में तो 'महाभारत' तथा 'भारत'—दोनों नामों का उल्लेख मिलता है।

जहां तक साहित्य-रचना का संबंध है, महाभारत के किसी पात्र को लेकर सर्वप्रथम भास ने नाटक लिखा—'कर्णभारम्'। संभवतः ये 'महाभारत' के किसी चरित्र को लेकर लिखी गई—विशेषकर कर्ण को लेकर लिखी गई—पहली नाट्यकृति है। हिन्दी में तो महाभारत के पात्र साहित्यकारों के मुख्य उपजीव्य बने ही रहे— विशेषकर काव्य-साहित्य में—और निस्संदेह उन पात्रों में कर्ण का चरित्र सर्वाधिक प्रिय और चुनौतीपूर्ण रहा। रामधारी सिंह दिनकर की 'रश्मिरथी' और केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' के 'कर्ण' काव्य को ख़ूब ख्याति मिली। इसके अलावा शिवाजी सावंत लिखित मराठी उपन्यास 'मृत्युंजय' भी कर्ण के चरित्र पर आधारित प्रसिद्ध और पुरस्कृत उपन्यास है, जिसकी पर्याप्त चर्चा हुई।

डॉ. अमरेन्द्र का 'कर्ण' खंड-काव्य इसी परंपरा की कड़ी के रूप में समादृत होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। इस काव्य में भी अनेक स्थानों पर, मूल 'महाभारत' से अलग हटकर, कई मौलिक उद्भावनायें देखने को मिलती हैं। सबसे पहले तो इसके सर्गों में ही मौलिकता है। इस काव्य में कुल तेईस सर्ग रखे गये हैं, जिन्हें कवि द्वारा 'पर्व' कहा गया है। हालांकि 'महाभारत' में कुल मिलाकर अठारह 'पर्व' ही हैं और मुझे लगता है कि कुछ 'पर्वों' का समाहार काव्य के दूसरे 'पर्वों' में किया जा सकता था; यथा- 'भंवर पर्व' का 'प्रज्ञा' में; 'प्रमदवन' का ''प्रबोध' में; 'स्वप्न' का 'प्रतिज्ञा' में; 'वृष' का 'आवर्त्त' में और 'गिरिडीह' का 'प्रत्यूष' में। इस प्रकार 'महाभारत' की भांति इसमें भी अठारह 'पर्व' हो जाते। पर, जैसा कि कवि को मौलिक और प्रयोगवादी बने रहने में अधिक रुचि रही है, इसलिये मुझे लगता है सर्गों के नामकरण में भी उनके द्वारा 'महाभारत' से इतर नवीन और मौलिक उद्भावनायें की गईं। इस मौलिकता का दर्शन इस काव्य के प्रथम सर्ग—'जनुष् पर्व' के नाम से ही हो जाता है, जहां 'जनु'—जन्म से 'जनुष्' शब्द का आशय लिया गया है।

कुन्ती नवजात कर्ण को मंजूषा में रखकर नदी की धार पर, उछलती-बलखाती लहरों के हवाले कर तो आयी है, पर उसके जीवन की चिंता भी

उसे सता रही है, इसलिये उसे देखने के लिये उसने अपने प्रहरी को भेजा, जो आकुल कुन्ती को आकर कर्ण को अज्ञात पुरुष द्वारा लहरों से निकालने तक की पूरी कथा सुनाता है–

"भोर की बेला भले वह, दिन लगा था,
नींद से जैसे अचानक मैं जगा था!
उस पुरुष के वाम में ही संगिनी थी,
अप्सरा ही सामने; अर्द्धांगिनी थी...?"

इस सूचना से कुन्ती के हृदय को जैसे अवलंब मिल गया था, उसके चित्त को शांति मिल गई थी। वह आभार-रत थी उस दंपत्ति के लिये, जिसने कर्ण को संभाला था। पर अन्दर से अपने किये पर उसे क्लेश भी हो रहा था। उस क्षण उसकी अनुभूति में सूरज देवता की वाणी जैसे प्रकम्पित होने लगी–

"दुख नहीं करना पृथा अपने किये पर,
कुछ नहीं इस्थिर यहां, सब भाव गत्वर;
कर्ण दोनों के प्रणय का पुण्य फल है,
पंक के ऊपर खिला उज्ज्वल कमल है।"

यहां से लेकर कर्ण के महाप्रस्थान तक की कथा इस प्रबन्ध काव्य में अनुस्यूत है। महाभारतकार ने कर्ण को बावजूद उसकी शूर-वीरता और दानशीलता के, प्रायः दुष्ट, परित्यक्त, त्याज्य और निकृष्ट ही बताया है। संभवतः उसका मूल कारण उसका दुर्योधन-जैसे पतित और दुष्ट का साथ देना रहा हो। पर 'कर्ण' काव्य में ऐसा नहीं है। यहां कर्ण पांडवों का प्रबल विरोधी और दुर्योधन के प्रति क्यों निष्ठावान् है, इसका वो तर्कसंगत उत्तर देता है। कथा उस समय की है जब पांडवों को छल से वरणावत् के मेले में भेजने के बहाने लाख के घर में ठहराया जाता है और फिर उसमें आग लगाकर उन्हें जला कर मारने का प्रयास किया जाता है। पांडवों को इस षड्यंत्र का पता चल जाता है और वे एक गुप्त मार्ग से निकलकर महर्षि वेदव्यास की सलाह पर एकचक्रा नगरी में साधु-वेश बनाकर रहने लगते हैं।

उन्हीं दिनों पांचाल-नरेश की कन्या द्रौपदी के स्वयंवर की तैयारियां हो रही थीं। पांडव भी इसमें भाग लेना चाह रहे थे पर समस्या ये थी कि माता कुन्ती से कैसे कहें। कुन्ती ने उनकी इस दुविधा को भांप कर उनसे स्वयं पांचाल चलने के लिये कहा और वे वहां पहुंचकर स्वयंवर वाले दिन राजसभा में जा पहुंचे। जब प्रतियोगिता में सारे शूर-वीर एक-एक कर असफल हो गये तो कर्ण की बारी आई। उसने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ानी शुरू ही की थी कि धनुष का डंडा उसके हाथ से

छूट गया और उसके मुंह पर ज़ोर से लगा। ऐसा क्यों हुआ, इसका जवाब महाभारत में नहीं, 'कर्ण' में मिलता है—

''मैं जब उठा लक्ष्य वेधने कृष्णा बढ़ी उठाये हाथ,
'अरे, सुत से कैसे होगा मेरा आजीवन का साथ।
छूट गया था धनुष हाथ से लक्ष्य साधना कोसों दूर,
स्वप्न सजाये जो आया था, टूट गिरा वह चकनाचूर।
समझ नहीं पाया मैं कुछ भी आखिर हेय बना क्यों सूत?
लेकिन देर लगी न मुझको, समझ गया था मैं अकूत।''

कर्ण को वहां उपस्थित अन्य राजाओं के सम्मुख अपनी असफलता से भी अधिक कष्ट पांचाली की दृष्टि में ख़ुद के प्रति उपेक्षा देख कर हुआ; पर इसके अलावा और भी बहुत कुछ था जो कांटे की तरह उसके हृदय में चुभा हुआ था—

''कृपा, द्रोण आंखों में जो झलका था वह पांडव का मोह,
गुरु की मुझपर क्रोध-घृणा वह, कहां भूलता मैं, ओह !

और कृष्ण की भेदभरी वह मानसरोवर की मुसकान,
चाहूं सब कुछ भूल चलूं, पर वहीं लौट जाता है ध्यान।
भीष्म पितामह की आंखों में मेरे लिये घृणा का भाव,
और विदुर क्या कम रखते हैं, मुझसे दूरी, भेद, दुराव ?

असल में, पुराकथाओं की एक विशेषता ये होती है कि वहां कोई भी घटना या क्रिया बिना शापों या वरदानों के सम्पन्न नहीं होती। महाभारत भी इससे अछूता नहीं है। कर्ण का जीवन और मृत्यु भी, किसी-न-किसी शाप या वरदान से बंधी हुई है। लेकिन महाभारत का कर्ण अपने लिये किसी प्रकार की करुणा नहीं जगा पाता, जबकि 'कर्ण' काव्य का नायक कर्ण मानवीय करुणा से ओतप्रोत है; क्योंकि पांडवों के विरोध में खड़ा रहने के बावजूद वह पांडवों के हित की ही कामना करता है—

''मैं ही कहां चाहता हूं यह, पांडव के हित का अवसान,
लेकिन जहां टिका था मेरा, वहीं टिका है अब भी ध्यान।''

दुर्योधन ने छल से पांडवों को रहने के लिये खांडव-जैसा बीहड़ वन दिलवाया। पर कर्ण को प्रसन्नता है कि इससे पांडवों को दर-दर भटकने से मुक्ति मिली है; विशेषकर कुन्ती और द्रौपदी को—

''किसी से कम नहीं संतोष है राधेय के मन में,
सुयोधन को मनाया, तो कहीं राजी हुआ है वह;

मिली है पांडवों को मुक्ति अब वनवास के दुख से,
खुले सीपी के मुंह में स्वातिरस जैसे चुआ है अब।''

''भटकती थी वनों में द्रौपदी-कुन्ती उठाये दुख,
मिलेगी अब दुखों से मुक्ति, वह वन-वन भटकने से;
दिखेगा नील नभ का रूप अब तक जो छुपा सबसे,
खुलेंगे इन्द्रधनु के रंग सातो, मेघ छटने से।''

पर वह ये भी नहीं चाहता कि उनके जीवन में ऐसा कष्ट दुबारा आये–

''लेकिन यह अनुनय है मेरा, लुंठित न हो पाये,
पांडव की जननी न फिर से वन का विपद उठाये!
झेल चुकी है बहुत दुखों को एक अकेली नारी,
क्या समझेगा राजभोग से लिपटा जो संसारी।''

''पांडव की माता गंगा-सी मन से मुझे लगी है,
अंगभूमि से बहकर जो हस्तिनापुर में उतरी है।
सुधि उसकी आते ही मेरा मन चानन बन जाता,
वही मेघवन, ज्येष्ठ-गौड़, मंद्राचल मुझे बुलाता।''

पर दूसरे ही क्षण वो वन में रहने वाले नागों और वनवासियों की चिन्ता भी करने लगता है कि यदि खांडव वन को साफ करने के लिये पांडवों ने इसमें आग लगाई तो इनका क्या होगा! दरअसल यहां कवि ने खांडव वन और उसे जलाने को, आधुनिक समय की ज्वलंत समस्या के प्रतीकात्मक बिम्ब के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया है। आज बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें बनाने के लिये वनों का विनाश किया जा रहा है; राजमार्ग और मेट्रो का निर्माण करने के लिये जंगल काटे जा रहे हैं, जिससे वहां सदियों से रहते आये वनवासियों को विस्थापित होना पड़ रहा है। इतना ही नहीं, वन्य-प्रदेशों में बढ़ती आबादी के कारण वन्य-पशु भी विचलित होकर शहर की राह पकड़ ले रहे हैं। कर्ण द्वारा व्यक्त उसकी चिंताओं के बहाने आज की भयावह समस्या की ओर इशारा किया गया है–

''वनों को पूजते जो और वन ही घर-बिछौना है,
कुसुम के देश के ये नील श्यामल आदिवासी हैं;
कभी समझा न खांडव वन को भूमि यह पराई है,
भले मंदार-वन से ये यहां आये प्रवासी हैं।''

उसी खांडव विपिन में आग की बारिश करेंगे ये,
जला जो वन, कहां जायेंगे ये जीवन-सुरक्षा में।
कहां जायेंगे, क्या होगा बेचारे नागवंशी का ?
सभी जल जायेंगे, मर जायेंगे अपनी मुमुक्षा में।''

प्रकृति जो निर्व्याज-भाव से हम मनुष्यों को जीवन देती है और हमीं उसे नष्ट करने पर आमादा हैं; काव्य में अभिव्यक्त ये चिन्ता पाठकों को अनेक स्तरों पर छूती है–

''जो विनाश करता है वन के भोले जीव-मनुज का,
धरती क्या, नभ का भी कोई हो सकता है उसका ?
वसुन्धरा पर बिखरा वन-वैभव देवों का वर है,
कुंज धरा का, आत्मज्योति है ऋषियों का यह घर है।''

ये चिन्ता कर्ण को धनुष उठाने को प्रेरित करती है, पर अगले ही क्षण उसे अपने कर्तव्य का स्मरण हो आता है–

''यहां चम्पा में मेरा तन, वहां है हस्तिपुर में मन,
न जाने कौन सा संकट उठाये पंख आ जाये,
सुयोधन साथ में रहना उचित है, छोड़ चम्पा को,
वही तो है मनुज जो धर्म संकट में बचा जाये।''

''क्षमा हे अंगमाता, दो विदा, कर्तव्य करने को,
मुकुट के मान रखने में, संवरने या बिखरने को;
नहीं मैं छोड़ सकता बन्धु-बान्धव यूं हहरने को,
यहां तैयार है जब शीश मेरा ही उतरने को।''

लेकिन होनी को तो कोई नहीं जानता। पांडवों को तेरह वर्षों का वन-गमन मिलता है तो विरोधी होने के बावजूद, कर्ण का हृदय इस अन्याय को देख विचलित हो उठता है–

''कहोगे तुम 'मिला वन पांडवों को, न्याय है क्या ?
अगर न हाय है यह, तो कहो फिर हाय है क्या ?
मुझे भी दुख बहुत है पांडवों के वनगमन का,
सभी ढंग से व्यवस्थित राज के ऐसे पतन का।

उठाती द्रौपदी होगी बहुत ही कष्ट वन में,
कहीं वह टूटती होगी बहुत अपने यतन में,

कभी घनघोर वर्षा, तेज आंधी, डर निशा का,
विपद का अंत भी है क्या मनुज पर उस कशा का ?''

इतना ही नहीं द्रौपदी को लेकर कर्ण की चिन्ता वर्तमान युगबोध से जुड़कर, आज की नारी की स्थिति को विमर्श में लाकर खड़ा कर देती है–

''वहां धन-धान्य ही क्या, नारी-रक्षा भी असंभव,
व्यसन तो सिद्ध होता है हलाहल, घोर आसव;
विकट यह रोग है जिसको लगा छुटता नहीं है,
जमा तो जम गया गिरि-सा ही, फिर उठता नहीं है।''

''सिंहासन की रक्षा में हो जहां नारी का मोल,
जो विष का है, होगा कैसे वह अमृत का घोल !
धरती की शोभा, ममता का, करुणा का शृंगार,
धर्मराज के आगे ही कीचक का अत्याचार।''

''नारी की इज्जत जाए तो जाए, पर न राज,
मुकुटों की छीना-झपटी में सिकुड़ी-सहमी लाज।
छत्रधारी को ज्ञात सभी कुछ, फिर भी उसका रक्ष,
दंड हाथ में लिये हुए लेता अनीति का पक्ष।''

''किसी लोभ या भय से जो नारी का करे न मान,
वह कैसे हो सकता उसका स्वामी या भगवान् ?''

ये राजधर्म और सत्ता-सिंहासन का विषय है कि सब सुखी रहें, कमज़ोरों पर अत्याचार न हो, सबको समान न्याय मिले। आज की प्रजातांत्रिक शासन-व्यवस्था की ये प्रमुख शर्तें हैं। कर्ण की वास्तविक चिंता इन प्रजातांत्रिक मूल्यों के टूटने-बिखरने को लेकर भी है कि यदि ऐसा होता है तो सिंहासन हिलने में भी देर नहीं लगती–

''राज्य हितों में भोले जन का हित कुचला जो जाये,
राजसिंहासन सम्राटों का भला ठहर कब पाये ?
और नीति जब यही राज की, सीमा बढ़े, बढ़े धन,
ज्वालाओं के बीच भले ही जलते रहें अकिंचन।''

कर्ण को ज्ञात है कि दुर्योधन के लिये सत्ता सर्वोपरि है और उसे पाने के लिये वह किसी भी सीमा तक जा सकता है। इसलिये वो दुर्योधन को भी

सावधान करता है कि ग़लत उपायों से प्राप्त की गई सत्ता सिर्फ़ आतंक और विनाश को जन्म दे सकती है, इसलिये सत्ताधीशों को अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रखना होगा–

''सच में जब सत्ता आती है लोभी, क्रूर करों में,
क्षय विनाश का छा जाता है भय-आतंक नरों में;
तब नारी की शील-प्रतिष्ठा ख़तरे में हो जाती,
हर क्षण एक भयावह चिंता उसको बहुत डराती।''

''उस मदांध ढोंगी शासक को कौन सहन कर पाये,
जो समाज पर भूत-प्रेत की छाया-सा मंडराये।
मित्र ! युधिष्ठिर-इच्छाओं पर बांध लगाना होगा,
भोगों के करका घन पर अब बाण चढ़ाना होगा।''

'कर्ण' काव्य का 'प्रज्ञा पर्व' एक विशेष खंड है जो महाभारत की मूल कथा से थोड़ा हटकर है। इस खंड में आई कथा, महाभारत के साथ-साथ अनेक प्रबंध- रचनाओं का मुख्य आधार बनी है। ये कथा है कर्ण का परशुराम से अपना परिचय छिपा कर शिक्षा प्राप्त करना और भेद खुलने पर परशुराम द्वारा कर्ण को श्राप दिया जाना। निस्संदेह इस श्राप की बहुत बड़ी भूमिका थी, जिसके कारण कर्ण अंत समय में अपना बचाव नहीं कर पाया; क्योंकि श्राप के कारण वह गुरु द्वारा प्रदत्त सारी शिक्षा भूल चुका था।

आश्चर्यजनक रूप से इस सर्ग में कवि ने कर्ण की पहचान छिपाने का कोई प्रयास नहीं किया। एक तो इसमें अधिरथ को अंग-प्रदेश का नृप बताया गया है, जबकि वह सारथी-मात्र था। दूसरे, अधिरथ ने भी कर्ण का परिचय देते हुए उसे क्षत्रिय ही कहा–

''वेदों का ही नहीं, अस्त्र का मेरा सुत हो ज्ञाता,
निज भविष्य और बाहु-भाग्य का अब से बने विधाता!
क्षत्रिय है तो क्षात्र-धर्म भी इसमें दिखे अनल-सा,
दान-दया के साथ-साथ ही हो शरदेन्दु विमल-सा।''

इसी प्रकार परशुराम भी उसे 'क्षत्रिय-पूत' कहकर संबोधित करते हैं–

''इसी परशु का भय दिखलाकर बल का शमन किया है,
ज्ञान और भय दोनों से धरती को त्राण दिया है।'
फिर कहते हैं 'कर्ण एक तुम क्षत्रिय पूत अमल हो,
और विप्र के श्रेष्ठ गुणों से उज्ज्वल-शुभ्र-धवल हो।''

यदि एक स्थान पर ऐसा होता तो मुझे लगता कवि की तरफ़ से तथ्यात्मक भूल हुई है; पर दो-दो स्थानों पर कर्ण को 'क्षत्रिय' घोषित करना, विशेषकर स्वयं परशुराम द्वारा—कवि से स्पष्टीकरण की अपेक्षा रखता है; जबकि महाभारत में ये स्थापित तथ्य है कि जिस क्षण परशुराम को ये ज्ञात हुआ कि कर्ण ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय है, उसी क्षण उन्होंने श्राप देकर कर्ण का त्याग कर दिया था। कीड़ा काटने वाले प्रसंग में भी परशुराम का वह क्रोध नहीं दिखता, जिसके लिये वे प्रसिद्ध थे, बल्कि उनके क्रोध की अग्नि यहां तरल और शीतल हो गई है—

''गुरु की पीठ लहू से लथपथ थी, जंघा भी मेरी,
उतरी थी आंखों में मेरी कैसी रात घनेरी;
चमक रहे थे नेत्र उधर खिलते पलाश-से, गुरु के,
हर लेने को प्राण तुरत ही छुटे पाश-से, गुरु के।''

''छू कर मुझको निकल गया था; जैसे, यम ही औचक,
नदी, दिशायें, पर्वत, वन, नभ सब के सब थे भौचक;
उतर गये गुरु की आंखों में फिर तो मेघ सजल थे,
रुके हुए पलकों के कोरों पर कितने ढलमल थे।''

अंत में परशुराम कर्ण को आशीर्वाद-सहित विदा करते हैं और उस समय उनके द्वारा कर्ण को दिया गया श्राप, श्राप की जगह, अत्यंत कोमल, शीतल, स्निग्ध आचमन जान पड़ता है—

''देव-आचरण से ही होगा और प्रखर यह सिद्ध,
और नहीं तो लौट आयेगा मुझसे हुआ समिद्ध;
कर्ण, आज से लोक-हितों में विचरो, जागे सोए,
मुझसे प्राप्त शक्ति से कोई देव-वंश न रोए।''

महाभारतकालीन समाज मूलतः वर्ण-वर्गाधारित था। क्षत्रिय थे तो वे साम्राज्य-लिप्सा में आपस में लड़ते रहते थे। रही-सही कसर उनके घोर दुश्मन, परशुराम-जैसे ब्राह्मण योद्धा पूरी कर देते थे। दूसरी ओर वनों-उपत्यकाओं, पर्वतों-कंदराओं में रहने वाले आदिवासियों के साथ-साथ, पिछड़ी हुई जनजातियों तथा विकसित समाज में त्याज्य समझी जाने वाली अनेक प्रजातियों का अस्तित्व था। तब के सभ्य और विकसित समाज ने उनकी कोई परवाह नहीं की। इसके उलट उस समाज ने उनके ऊपर सदैव अमानुषिक अत्याचार और जुल्म किये। यही कारण है कि कर्ण बार-बार खांडव वन में नागवंशियों को जला कर मार डालने के लिये अर्जुन को दोषी ठहराता है; यहां तक कि स्वप्न में भी उसे

दीन-हीनों का आर्तनाद सुनाई देता है—

''कर्ण ने देखा खड़ा अर्जुन लिये गांडीव,
दूर तक जलता विपिन में मर रहे हैं जीव;
नागवंशी नारी-नर का हो रहा है शोर,
कर्ण ने पकड़ा विजय को देख उसकी डोर।''

ऐसे निर्दोषों के अपमान और अत्याचार के विरूद्ध कर्ण बार-बार अपनी आवाज़ उठाता है—

''तेजहीन होकर जीना भी क्या जीना है,
कालकूट को यह तो जीते जी पीना है।
प्राणहीन हूंगा लेकिन प्राणों में हूंगा,
दीन-हीन को नई प्रेरणा से भर दूंगा।''

उस काल में इस प्रकार के संघर्ष आम तौर से होते रहते थे। यही कारण है कि इस प्रकार की जातियों और वंशियों को अपने अधीन रखने के उद्देश्य से, क्षत्रियों-ब्राह्मणों ने उनसे वैवाहिक संबंध बनाये। इसीलिये द्रौपदी के होते हुए भी युधिष्ठिर ने देविका को, भीम ने वनवासी हिडिंबा और बलंधरा को, अर्जुन ने सुभद्रा, चित्रांगदा और आदिवासी समाज की कन्या, उलुपी को, नकुल ने करेणुमती को और सहदेव ने विजया को अपनी पत्नी बनाया।

जो ये कहते हैं कि महाभारत-काल का समाज वर्ग-वर्ण विहीन था, वो पूरी तरह सत्य नहीं है। वो समाज वैसा दिखता अवश्य था, पर था नहीं। वास्तव में, तब का पूरा समाज नीति और न्याय से च्यूत और साम्राज्य-विस्तार की घोर लिप्सा में रत था, जो बल-प्रयोग के बिना संभव नहीं था; और जहां वो बल-प्रयोग में सफल नहीं होता था, वहां छल से काम लेता था।

कहा जाता है कि कौरव का पक्ष अनीति-अन्याय, छल-प्रपंच, ईर्ष्या-द्वेष पर आश्रित था; पर उसी पक्ष में नीति और न्याय के—भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य-जैसे पक्षधर भी खड़े थे, जिन्होंने कभी अनीति-अन्याय के विरूद्ध आवाज़ नहीं उठाई, भले ही वो किसी विवशता के कारण हो।

पांडवों के पक्ष में तो स्वयं लीलाधारी कृष्ण खड़े थे, फिर भी क्या छल-प्रपंच नहीं हुए; बल्कि कौरव-पक्ष से कहीं अधिक ही हुए—और लगभग इन सभी के जनक कृष्ण ही रहे—जरासंध का वध, नियमों के विपरीत दुर्योधन की जंघा पर गदा-प्रहार, 'अश्वत्थामा हतो हतः' के छल द्वारा द्रोणाचार्य की हत्या, शिखंडी की आड़ लेकर भीष्म के ऊपर शरों की वर्षा—जैसे न जाने कितने प्रसंग हैं, जो पांडव-पक्ष की छल-कथा के गवाह हैं। ऐसे ही छल-छद्म का चरम कर्ण के

वध के समय दिखाई देता है।

इन सब महारथियों में कर्ण ही एकमात्र ऐसा था, जिससे तीनों लोकों में कोई भी ऐसा नहीं था, जो इससे जीत सकता था। इसलिये सर्वाधिक छल-प्रपंच भी कर्ण के साथ ही हुए। पहले अर्जुन-पिता इन्द्र ने कर्ण से उसका रक्षक—जन्मजात कवच-कुंडल मांग लिया और पश्चाताप-बोध से जो 'शक्ति' अस्त्र दिया भी, वो एकबार ही प्रहार करने में सक्षम था। इसके पश्चात् कुन्ती ने उससे पांडवों का वध नहीं करने का वचन प्राप्त कर लिया; भीष्म ने उसे युद्ध से दूर रखने के लिये उसे 'अर्धरथी' कह दिया, जिससे खिन्न होकर उसने प्रतिज्ञा कर ली कि जबतक भीष्म युद्ध में रहेंगे, वो इसमें भाग नहीं लेगा।

इससे पूर्व भी जब हस्तिनापुर के राजकुमारों की शस्त्र-परीक्षा में अपने शौर्य-प्रदर्शन और अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध की इच्छा लेकर कर्ण पहुंचा तो भीम ने उसकी खिल्ली उड़ाते हुए कहा था कि ''सारथी के बेटे, धनुष छोड़कर हाथ में चाबुक लो, वही तुम्हें शोभा देगा। तुम भला कब से अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध करने के योग्य हो गये।''

इस प्रकार बार-बार कर्ण को लांछित-अपमानित किया गया तथा उसके शौर्य को क्षीण-कमज़ोर करने के सारे उपाय किये गये, जिसमें उसके सारथी के रूप में शल्य का होना एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण था। यदि कोई चोर नहीं है और बार-बार उसे 'चोर' कहा जाये तो उसका मन खिन्न होगा ही। सारथी का काम सर्वाधिक विश्वास का होता है; रथ की और एक प्रकार से युद्ध की भी—दिशा, वही तय करता है। एक कुशल सारथी संकट में प्राणों का रक्षक भी सिद्ध हो सकता है, पर वही सारथी यदि योद्धा की वीरता पर बार-बार उंगली उठाये, उसे भला-बुरा कहे, उसका ध्यान-भंग करने की चेष्टा करे तो योद्धा के चेतन-अचेतन मन पर इसका नकारात्मक असर पड़ना स्वाभाविक है। शल्य ने कर्ण के सारथी के रूप में रहते हुए उसके मनो-मस्तिष्क पर इस प्रकार का नकारात्मक प्रभाव डालने का प्रयास किया जिससे उसके तप-तेज और शौर्य का क्षय हुआ। स्वयं कर्ण ने शल्य से युधिष्ठिर को कहते सुना—

''रुका नहीं जो युद्ध कहीं, बस इतना करिए,
तात, कर्ण का बनें सारथी; मेरी सुनिए,
और सारथी बन कर ही अपनी बातों से,
उसके मन को बेधे रहिये आघातों से।

''अपमानित हो हृदय कर्ण का विचलित होगा,
रण में अस्त्रकला विद्या से वंचित होगा;

समरभूमि में छिन जायेगा उसका लाघव,
और विजय पाना तब उस पर कहां असंभव ?''

'कर्ण' काव्य की ये विशिष्टता है कि कर्ण के मन की सारी कड़वाहटें, कलात्मक भाषा का संस्पर्श पाकर उदात्त बन गई हैं। वो ईर्ष्या और अहंकार की क्षुद्रता से ऊपर उठकर सूर्य की-सी शुभ्र लालिमा से अपने चरित्र का एक नया इतिहास लिखता है–

''धर्मराज का धर्म वहां पर टिका हुआ है,
न्याय-नीति का पुण्य जहां पर झुका हुआ है।
धर्मराज को ज्ञात नहीं, क्या मैं हूं ? रवि हूं,
परशुराम के विजय धनुष से निकला पवि हूं।''

इतिहास, जो उसके बारे में औरों ने दर्शाया है, वो उसके चरित्र का अंश नहीं है, इसलिये उसे स्वीकार्य भी नहीं है–

''इतने-इतने लोगों की हत्यायें, जो निर्दोष,
सजा रखे हैं तीरों से मैंने तरकश का कोष।
क्षमा चाहता हूं अम्बे मैं, लगी अगर हो चोट,
मैं अर्जुन-सा नहीं पालता मन में कोई खोट।''

इस काव्य में कर्ण के माध्यम से आधुनिक जीवन के प्रश्नों का भी चिंतन किया गया है। इसमें कर्ण एक ऐसे संवेदनशील योद्धा का मूर्त रूप है जो आत्मग्लानि के अतिरेक में कई घटनाओं के लिये स्वयं को उत्तरदायी मानता है; इसप्रकार ये वैयक्तिकता से अलग हटकर समग्रता से जुड़ाव का काव्य बनजाता है–

''लगता है, यह शक्ति व्यर्थ है, और कवच-कुंडल भी,
दे न सका उस भरी सभा में कृष्णा को संबल भी।

चेत हुआ था, तब कृष्णा को कृष्ण बचा ले निकले,
इसका कुछ अवकाश नहीं था, बुद्धि जरा भी संभले।''

''अगर बैर मुझको, पार्थ से था, जानते हो,
नहीं विध्वंस ऐसा लोक का मैं चाहता था;
कहीं कुछ चूक तो मुझसे हुई है, मानता हूं,
धरा नृपहीन होगी इस तरह से, क्या पता था।''

इस आत्मग्लानि में घटोत्कच और अभिमन्यु की मृत्यु पर करुणार्त होता है, तो कुंती को लेकर आहत भी–

''मां, तुमने लहरों पर रखकर मुझे बनाया शक्त,
भाग्य, सिंहासन से भी मैं तो कोसों दूर विरक्त;
लौटूं मैं किसलिए भला फिर, व्यर्थ मुकुट और मान,
मां, मैंने दे दिया तुम्हें है अपने मन का दान।''

कर्ण सामाजिक चेतना का प्रतीक है; क्योंकि उसके जीवन-दर्शन की जड़ें अतल गहराइयों में जमी हैं, जो परिस्थितियों की भयंकरता से भयभीत नहीं होता—

''क्या हुआ जो कवच-कुंडल से रहित हूं,
मैं अभी भी वह कि जिससे कांपता है काल;
हैं अभी भी मुट्ठी में सारी दिशाएं,
कांपते नरपति दिशा के, कांपते दिक्पाल।''

आज जबकि पूरे विश्व में चारों ओर शोषण, विषमता, अन्याय और अत्याचार व्याप्त है, कर्ण के माध्यम से आज के समाज के वैषम्य, विसंगति और भयानक विरूपता को उद्घाटित करते हुए व्यापक मानववाद की प्रतिष्ठा की गई है—

''केशव, जब तक श्रेष्ठ वंश का अहंकार जग ढोए,
जब तक दीन-दुखी का मन भी इस धरती पर रोए;
राज्य सुखों की ख़ातिर जब धरती के रोम जलेंगे,
वहीं-वहां पर एक कर्ण क्या, सौ-सौ कर्ण मिलेंगे।''

देखा जाये तो कर्ण एक त्रासदी चरित्र है। उसकी वज्र-समान इच्छा-शक्ति पर निरंतर प्रहार होते रहते हैं; उसे तथाकथित कुलीन-जनों की उपेक्षा, दुत्कार और तिरस्कार तक सहना पड़ता है; इसके बावजूद वो हारता नहीं, टूटता नहीं। इन परिस्थितियों में भी वो प्रकृति में, सृष्टि में डूबता है—डूबता है, क्योंकि उसे मानवीय सौन्दर्य को पहचानना है; जो एक देश की अखंडता और एकता के भीतर ही संभव है। इस तरह देखें तो एक प्रकार से कर्ण एक उदात्त की सृष्टि करता है—

''बराबर में विभाजित हों सभी सुख, दुख तलक भी,
सभी का देश भारत हो, न शासक और शासित;
नहीं वह मर सका है भाव मेरा आज तक भी,
नहीं मैं चाहता अपना ये भारत हो विभाजित।

हमारा पूर्व, पश्चिम, और उत्तर और दक्षिण
बने यह सिंधु-सा विस्तृत, कहीं पर रोक न हो;
हिमालय-सा उठा हो शीश, अम्बर की सतह तक,

कभी भी दीप्त इसके भाल पर कुछ शोक न हो।''

'कर्ण' काव्य डॉ. अमरेन्द्र के दीर्घ और तीक्ष्ण जीवनानुभवों का प्रतिफल है, रूपाकार है। जहां उनका चेतन-मन ऊपर धड़कता है वहीं भीतर अचेतन मन की छाया एक मूर्त जीवन रचती रहती है। उस जीवन में वही मन धड़कता है, ध्वनित होता है खांडव-वन की तरह। इसलिये काव्य में खांडव-वन का रूपक बार-बार आता है और जिसके ब्याज से निर्बलों-बेबसों पर अत्याचार के विरूद्ध कर्ण का आक्रोश फूट-फूट पड़ता है–

''तो क्या साथ दिया न तब भी सुरपति ने ही आकर,
नागों को उस घोर विपद में, संकट में भी पाकर ?
यह तो मित्रता के संग छल है, गला दबाना नय का,
दोषी तब सुरपति भी होंगे, इस विनाश, इस क्षय का।''

अकेलापन और उसमें किसी अपने जैसे की तलाश, डॉ. अमरेन्द्र में है– निराला में भी थी। कर्ण का पूरा प्रयास भी इसे ही लेकर है, पर उसकी तलाश की विवशता ये है कि वो परिणति तक नहीं पहुंचती। सचेतन मन उसे दुर्योधन के पास ले जाता है और अचेतन संज्ञा उसे विवेक के मार्ग से लुंठित होने से रोकती है–

''मित्र, मुझे प्रस्तुत ही समझो, पीछे नहीं हटूंगा,
जो सौगंध अभी लेता हूं, कभी नहीं विसरूंगा।
मुझको अगर डिगाना चाहे नर क्या नारायण भी,
संभव नहीं, भले छिड़ जाये महाकाल का रण भी।

लेकिन यह अनुनय है मेरा, लुंठित न हो पाए,
पांडव की जननी न फिर से वन का विपद उठाए।''

असल में, कर्ण के चरित्र का सबसे बड़ा अन्तर्विरोध भी यही है –कि वो सोचता है कि यदि द्रोण पांडवों को द्रुपद से जीता राज्य दे देते तो युद्ध की नौबत ही नहीं आती; पर वो ये नहीं जानता कि अपने बाहुबल पर भरोसा करने वाले पांडव क्या दान-स्वरूप दिया ये राज्य स्वीकार करते ?

''जो पांडव पर दया द्रोण को बढ़ कौरव से,
दे देते क्यों नहीं, लिया जो राज्य द्रुपद से ?''

–कि कर्ण को लगता है, दुर्योधन की पांडवों के प्रति ईर्ष्या-द्वेष की भावना व्यर्थ है, राजपाट ही सबकुछ नहीं होता; पर वो ये नहीं जानता कि वो इस राजनीति की बिसात पर दुर्योधन का एक मोहरा-मात्र है–

''तब भी अगर सुयोधन की मति बनी हुई है भ्रांत,
रश्मि-वलय को समझ रहा है चक्कर खाता ध्वांत;

तो समझो कुरुवंश-श्रेष्ठ का भाग्य नहीं अनुकूल,
करता रहा सुयोधन ही क्यों बार-बार है भूल।''

—कि उसे ज्ञात है कि युधिष्ठिर ने उसके तेजोबल को कम करने और उसे लक्ष्य से विचलित करने के उद्देश्य से ही शल्य को उसका सारथी बना कर भेजा है; पर इसके बावजूद वो इस षड्यंत्र को गले लगाने को तैयार है—

''अपशब्दों का अनल दीन को भले जलाये,
उसको क्या, जो हंसता इसको गले लगाये''

अपमान, आत्मग्लानि, पश्चाताप, त्रास और इन सबके साथ चल रहे स्वप्न-दुःस्वप्न; फिर चरम मृत्यु से साक्षात्कार, अन्तर की टूटन, व्यक्तित्व का विघटन—ये सब कर्ण देखता है, अनुभव करता है—

''मैं अपने ही मान-हानि में उलझा रहा समय पर,
रुककर पल भर सोच न पाया लज्जा, शील, विनय पर;
यह भी भार हृदय पर अपने लेकर अब जीना है,
माहुर है प्राणों का घातक, जिसको ही पीना है।''

''कैसे-कैसे लांक्षण मुझ पर सभी लगाते आए,
जिससे कि यह कर्ण धरा पर पतित सदा कहलाये।''

ये स्वप्न-दुःस्वप्न डॉ. अमरेन्द्र के, खुद के भी हैं। कर्ण के ऊपर के घात-प्रतिघातों, उसकी उपेक्षा और अपमान, उसकी अन्तर्वेदना, उसकी कमज़ोरियां, उसका पश्चाताप, उसका दुख, उसकी करुणा—सब उसी प्रकार, जिस प्रकार निराला में। कर्ण के मन का जो अंधेरा है, वही निराला के राम का 'नैशान्धकार' है; जो राम को चारों ओर से व्याप्त किए है। आशा के तारे कहीं हैं भी, तो बहुत दूर...

''दृढ़ जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल,
फैला पृष्ठ पर बाहुओं पर वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकती दूर ताराएं ज्यों हों कहीं पार...''

(राम की शक्तिपूजा)

एक अंधेरा है जो कर्ण के भीतर है, उसके अभ्यंतर में खरगोश की तरह दुबका हुआ—

''किया आदेश था उसने दुशासन को अहितकर,
सिंहासन के सभी नय धर्म को पल में ही चित कर;

कभी क्या क्षम्य होगा, जो किया है घोर पातक?
मनुजता, नीति, नय पर वज्र-सा यह अस्त्र घातक।''

कर्ण के अंदर का अंधेरा अधिक प्रकाशित है; क्योंकि वो उसके खुद का बनाया हुआ है—अनीति-अन्याय को देख कर भी चुप रह जाने का अंधेरा, सच को जानकर भी इसका समर्थन न कर पाने की विवशता का अंधेरा। ये कर्ण का ही मन है जो धिक्कारता है—

''मुझे तो दुख इसी का, तुम वहां पर थे उपस्थित,
निरख कर क्यों नहीं तुम हो गये थे कर्ण मूर्च्छित!
रहे कैसे वहां पर तुम बहुत निष्कंप, अविचल,
उठी थी क्यों नहीं मन में तुम्हारे शांत हलचल!''

पर एक अंधेरा उसके बाहर भी है—नीति-अनीति के द्वन्द्व का, राजनीतिक छल-छद्म का; ये स्वार्थी अंधेरा अधिक विचलित करता है—

''मरना तो मरना ही सबको, सबको प्राण गंवाना,
उसी मृत्यु की ख़ातिर क्यों ये छल का ताना-बाना !
केशव, सब पर काल खड़ा है, अलग-अलग नामों से,
अभिधा ही है सत्य यहां पर सौ-सौ उपमाओं से।''

कर्ण के सामने जो अंधकार है, उसमें दूर कहीं कोई रौशनी भी टिमटिमा नहीं रही; पर वो उस अंधेरे को पार करना चाहता है; विजय-लक्ष्य से नहीं; बल्कि विनीत-भाव से—

''यह अगति है, मोह में बंध कर तड़पना,
अंधकारा को मुझे होगा छड़पना;
अन्यथा मुझको यही अब लील लेगा,
मोहगंगा है तो क्या सरसिज खिलेगा ?''

लेकिन 'आलाप संलाप' के कवि का अंधेरा अधिक घना और डरावना है—

''आदिम युग से ऊपर उठने की कोशिश क्या करते
अंधकार में और भी नीचे देखा तुम्हें उतरते
ठेठी का उद्धार करोगे, क्या अपनी बलि देकर
व्यंग्य और उपहास के सिवा क्या जाओगे लेकर
नये समर में नया शस्त्र ही हितकर होता, सच है
देख तुम्हारा ढंग समर का, जो भी दिखा, अकच है।''

दिनकर के 'रश्मिरथी' में ये अंधेरा और भी अधिक प्रकाशित है—

''थी विश्रुत यह बात, कर्ण गुणवान् और ज्ञानी हैं,

दीनों के अवलम्ब, जगत् के सर्वश्रेष्ठ दानी हैं।
जाकर उनसे कहो, पड़ी जिस पर जैसी विपदा हो,
गो, धरती, गज, वाजि मांग लों, जो जितना भी चाहो।''

(चतुर्थ सर्ग)

डॉ. अमरेन्द्र के खंड-काव्य में कर्ण का चरित्र आत्मविजय, आत्मनियंत्रण और आत्मानुभूति का आख्यान है। दुर्बलतायें अनेक हैं उसमें, पर वो उनसे लड़ता है, जूझता है और विजय-पथ पर आगे बढ़ जाता है—यहां तक कि अपनी प्रेयसी-पत्नी वृषाली के साथ के गहनतम क्षण भी उसे रोक नहीं पाते—

''पर तुम्हीं से कुछ छुपाना क्या, सुनो सब बात,
मित्र मेरा अब सुयोधन चाहता है साथ;
साथ वह भी इसलिये, श्यामा हो उनकी नार,
क्या नहीं नर से कराता भोग का संसार।''

''चाहता कब हूं वृषाली, छोड़ जाऊं अंग,
मेघवन में यह तुम्हारा कल्पतरु-सा संग!
पर विवश हूं, आ रही है जैसे कोई हांक,
मैं खड़ा कर्तव्य-पथ पर मन लिये दो फांक।''

दरअसल, डॉ. अमरेन्द्र कर्ण के संघर्ष को चेतना के स्तर पर लाकर मनुष्य की जिस मुक्ति की कामना करते हैं, वो मात्र सांस्कृतिक नहीं है, बल्कि ये उदात्त चेतना से युक्त एक विराट् पुरुष की सायुज्य-मुक्ति भी है—

''केशव, कभी दलित कुल में भी लेकर के अवतार,
यह भी जानिए कुलिन कुलों का क्या है अत्याचार!
तब कहियेगा, क्या अधर्म था और धर्म क्या मेरा,
आंखों के आगे यह केशव कैसा घोर अंधेरा।''

''कर्ण का यह शीश-छेदन; प्रश्न का क्या अंत है ?
वन-जनों का जो विरोधी, क्या वही कुलवंत है ?''

''जन्म फिर होता अगर हो, देश में हो कामना,
कर्ण दीनों के दलित के भेष में हो, कामना !''

'कर्ण' पर आश्रित किसी भी रचना पर जब भी बात होगी तो स्वाभाविक तौर पर उसकी तुलना रामधारी सिंह दिनकर की कृति 'रश्मिरथी' और केदारनाथ

मिश्र 'प्रभात' के खंड काव्य—'कर्ण' से अवश्य की जायेगी; क्योंकि 'रश्मिरथी' और 'प्रभात' के खंड काव्य 'कर्ण'—दोनों में, कर्ण के चरित्र और व्यक्तित्व के अनेक जाने-अनजाने पक्षों को उद्‌घाटित किया गया है; दोनों काव्यों की कविता के शिल्प में भी एक अद्‌भुत, मौलिक संयोजन और प्रयोगधर्मिता देखने को मिलती है।

'रश्मिरथी' में भी कर्ण को महाभारतीय कथानक से अलग नैतिक मूल्यों के पक्ष में तर्क और प्रश्न करते दिखाया गया है। इसमें सामाजिक और पारिवारिक संबंधों की पड़ताल नये दृष्टिकोण से और उसकी व्याख्या आधुनिक संदर्भों में की गई है। इसका संदेश यही है कि जन्म वैध या अवैध नहीं होता, न ही उससे कर्म की वैधता पर प्रश्नचिह्न लगाया जा सकता है। यानी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके वंश से नहीं, उसके कर्मों, उसके आचरण से होना चाहिए। 'रश्मिरथी' का कर्ण कहता है—

''मैं उनका आदर्श, कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे,
पूछेगा जग, किन्तु, पिता का नाम न बोल सकेंगे,
जिनका निखिल विश्व में कोई कहीं न अपना होगा,
मन में लिये उमंग जिन्हें चिर-काल कलपना होगा।''

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की रचना 'कर्ण' में यही पीड़ा कुछ दूसरे ढंग से अभिव्यक्त हुई है—

''मत कहो मुझे कौन्तेय
बड़ी दया होगी, रहने दो
मुझे नीच राधेय।''

'रश्मिरथी' में कथा के केन्द्र में कर्ण अवश्य है, पर उसके शिशु-जीवन, उसके कैशोर्य से जुड़ी घटनायें या पात्र अनुपस्थित हैं। वो जहां आते भी हैं तो पूर्वदीप्ति के बहाने या 'परोक्ष कथन' के माध्यम से। इस काव्य के 'प्रथम सर्ग' में कर्ण का पदार्पण ही सीधे रंगभूमि में राजकुमारों के शस्त्र-ज्ञान की परीक्षा और दुर्योधन द्वारा, कर्ण को 'अंग प्रदेश' का राजा बनाने से होता है।

जबकि 'कर्ण' काव्य आरम्भ से मानवीय संवेदना को पकड़ कर चलता है; जो न सिर्फ़ एक विवश माता कुन्ती की व्यथा, चिन्ता को उभारने में सफल होता है, बल्कि उसने गौण पात्र—'प्रहरी' के मुख से कर्ण के सकुशल, सूत अधिरथ और उसकी पत्नी—राधा के हाथों में पहुंचने का आंखों देखा विवरण सुनवाकर, अपने कल्पना-लाघव से उस गौण चरित्र को भी महत्वपूर्ण बना दिया है।

'रश्मिरथी' के दूसरे सर्ग में परशुराम की कुटिया दिखती है, जहां कर्ण की जंघा पर सिर रख मुनि सोए हैं। उस समय कर्ण गुरु के प्रति मोहासक्त हो रहा है। उनकी कृशकाय देह को देख उसे ग्लानि हो रही है कि उसे ज्ञानदान देने के कारण उनका ये हाल हुआ है, तब भी उसपर वे दिन-रात अपनी ममता लुटाते रहते हैं–

''वृद्ध देह, तप से कृश काया, उसपर आयुध-संचालन,
हाय, पड़ा श्रम-भार देव पर असमय यह मेरे कारण।
किन्तु, वृद्ध होने पर भी अंगों में है क्षमता कितनी,
और रात-दिन मुझपर दिखलाते रहते ममता कितनी।''

जबकि ये विवरण 'कर्ण' काव्य के चौथे सर्ग के 'चन्द्रातप पर्व' में आता है, जहां कर्ण को परशुराम के पास छोड़ने के पहले उसके पालक अधिरथ और राधा की चिन्तायें, उनका अन्तर्द्वन्द्व–सब, उनके बीच के लम्बे विमर्श में प्रकट होता है। ये स्वाभाविक भी है और ये संदर्भ आज के मानव-मन के सरोकारों से जुड़ता भी है। आज क्या माता-पिता अपने बच्चों के भविष्य की गति तय करने की दृष्टि से आपस में परामर्श नहीं करते; उनके लिये घर की ज़िम्मेदारी संभालना ज़रूरी है या शिक्षा प्राप्त करना; उनकी 'प्रायोरिटी' क्या है आदि-आदि। इस दृष्टि से अधिरथ के मन की चिंता काल-समय की सीमा पार कर आज के सरोकार से जुड़ जाती है–

''कर्ण का कुछ आचरण मुझको डराता,
एक भय उठता है, मन को बेध जाता;
बात करता वृक्ष से यूं, ज्यों सगा है,
इस समय में रोग यह कैसा जगा है!''

ये चिंता एक पिता की चिंता-मात्र नहीं है, बल्कि इसके माध्यम से कर्ण की उस समय की मनःस्थिति का भी पता चलता है। इसीलिये वो चाहता है कि कर्ण राजगद्दी संभाले और प्रजा को देखे। लेकिन उसकी पत्नी, राधा की सोच उससे अलग है। उसका मानना है कि ज्ञान के बिना राजकाज विष-समान होता है, ज्ञान के बिना भाग्य भी साथ नहीं देता–

''ज्ञान से वंचित सिंहासन मात्र आसव,
शोर को बनना अभी है भोर-कलरव;
ज्ञान है तो शक्ति का साम्राज्य विस्तृत,
उस किरण, आलोक के बिन भाग्य विरमित।''

'रश्मिरथी' का 'तृतीय सर्ग', पांडवों के अज्ञातवास के पूर्ण होने, कृष्ण

का समाधान के लिये दुर्योधन के पास जाने और दुर्योधन द्वारा उन्हें बंदी बनाने की चेष्टा करने के पश्चात् अपना विराट् स्वरूप दिखलाने तथा उसके बाद लौटते हुए कर्ण को अपने रथ पर चढ़ाकर उसे समझाने तक की कथा कहता है। कर्ण अपनी माता कुंती से विक्षुब्ध है कि उसने क्यों उसके जन्म के साथ उसका तिरस्कार कर दिया, इसलिये वो उसे नागिन, सर्पिणी, पत्थर-तक कह डालता है—

''सेवती मास दस तक जिसको, पालती उदर में रख जिसको,
जीवन का अंश खिलाती है, अन्तर का रुधिर पिलाती है;
आती फिर उसको फेंक कहीं, नागिन होगी, वह नारी नहीं।''

शास्त्रों में कहा गया है—''मदीयोयं त्यागः समुचित्मिदं नो तव शिवे कुपुत्रो जायते क्वचिदपि कुमाता न भवति''—अर्थात् जिस कारण मेरा त्याग किया है, वह मां के स्वभाव की दृष्टि से उचित नहीं है; क्योंकि संसार में कुपुत्र हो सकता है, पर माता कुमाता नहीं हो सकती। माता पुत्र के साथ चाहे जैसा भी व्यवहार करे, पुत्र दुखी हो सकता है, कुंठित भी; पर तब भी वो अपनी माता के लिये ऐसे अपशब्दों का इस्तेमाल नहीं करेगा, जैसा कर्ण ने यहां किया है। इसलिये यहां ये चित्रण थोड़ा अस्वाभाविक और अतार्किक लगता है।

'कर्ण' में ऐसा नहीं है। यहां कर्ण माता की उपेक्षा से दुखी है, पर माता के प्रति विनत भी; कुंती के यूं त्यागने पर क्षोभ तो है, पर उसके प्रति कटुता का लेशमात्र भाव नहीं; बल्कि कुंती द्वारा उसे लहरों पर बहा देने को भी अपने लिये वरदान ही मानता है। कर्ण के चरित्र का ये अत्यंत उदात्त स्वर है, जो न तो महाभारत में मिलता है, न ही बाद की किसी रचना में—

''मां, तुमने लहरों पर रखकर मुझे बनाया शक्त,
भाग्य, सिंहासन से भी मैं तो कोसों दूर विरक्त;
लौटूं मैं किसलिये भला फिर, व्यर्थ मुकुट का मान,
मां, मैंने दे दिया तुम्हें है अपने मन का दान।''

तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो 'रश्मिरथी' में अनेक स्थलों पर कर्ण के चरित्र के अलावा अन्य चरित्रों के चित्रण का कोई बहुत अधिक प्रयास नहीं किया गया है; जबकि 'कर्ण' में गौण पात्रों को भी तरज़ीह दी गई है—विशेषकर कर्ण की पत्नी वृषाली को। कर्ण की पत्नी के बारे में बहुत कम लिखा-सुना गया है और जहां उल्लेख हुआ भी है तो प्रसंग को पूरा करने के उद्देश्य-मात्र से। लेकिन 'कर्ण' काव्य में वो एकसाथ अनुरागमयी, उत्कंठित प्रेयसी; सांसारिक कामकाज से लेकर कूटनीतिक महत्व के विषयों पर संवाद करने वाली और पति का व्यथा-भाग बनने वाली अनुरक्ता पत्नी, पुत्रों के साथ किल्लोल करने वाली ममतामयी माता

और पति की अनुपस्थिति में राजकाज संभालने वाली वीर नारी है। कर्ण-पत्नी, वृषाली का ऐसा चित्रण किसी साहित्य में देखने को नहीं मिलता।

हां, 'कर्ण' में दो स्थल ऐसे हैं, जो समग्र चित्रण की दृष्टि से अपेक्षाकृत कमज़ोर दिखाई देते हैं—एक, कुन्ती-कर्ण प्रसंग में, जहां 'रश्मिरथी' की कुन्ती की ममता, उसकी विवशता और वेदना चरम पर दिखाई देती है—''कुरुकुल की नारी नहीं, कुमारी नारी—/वह दीन, हीन, असहाय, ग्लानि की मारी!/सिर उठा आज प्राणों में झांक रही है,/तुझ पर ममता के चुम्बन आंक रही है''; जबकि 'कर्ण' में कुन्ती की वेदना मुखर नहीं हो पाती—''पोंछ पृथा ने अपने आंसू स्वयं को लिया सम्हाल,/बोली इतना, ''सचमुच तुम ही लाल मेरे हो लाल...''।

दूसरे, युद्ध का दृश्य जहां-जहां आया है, 'रश्मिरथी' के वे स्थल, श्रव्य के स्थान पर 'दृश्य काव्य' का अनुपम उदाहरण बन गये हैं। नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों के संचालन के साथ, युद्ध की विभीषिका का अद्‌भुत दृश्य वहां उपस्थित है—''हेशा रथाश्व की, चक्र-रोर, दन्तावल का वृंहित अपार,/टंकार धनुर्गुण की भीषण, दुर्मद रणशूरों की पुकार/खलखला उठा ऊपर खगोल, कलमला उठा पृथ्वी का तन/सन-सन कर उड़ने लगे विशिख, झनझना उठीं असियां झनझन''; जबकि 'कर्ण' में युद्ध का दृश्य, व्यूह-रचना और आक्रमण के आह्‌वान तक सीमित है—''रणभेरी का नाद उठा, तो गूंजे गगन-दिशाएं/पर्वत-वृक्ष लगे; अभिनन्दन में ज्यों हाथ हिलाएं/एक दिव्य रथ वहीं खड़ा था, कर्ण तुरत चढ़ आया/धवल चंद्र-सा शंख उठाकर, घन-सा उसे बजाया।''

मुझे लगता है कि दिनकर की 'रश्मिरथी' और 'प्रभात' के 'कर्ण'—दोनों में संदेश, समग्रता से आरंभ होकर वैयक्तिकता तक जाता है; जबकि डॉ. अमरेन्द्र के 'कर्ण' की उन्मुखता, वैयक्तिक पहचान से ऊपर उठकर, सार्वभौम सत्य तक जाने की है, जो आज के वैश्विक परिदृश्य की दृष्टि से सामयिक, संगत और समीचीन भी है। 'प्रभात' का 'कर्ण' भी, 'रश्मिरथी' के कर्ण की भांति मर्यादा से, मूल्यों से कई बार च्युत होता है—''दुःशासन मत ठहर वस्त्र हर ले कृष्णा के सारे/वह पुकार ले रो-रोकर चाहे वह जिसे पुकारे।'' (प्रभात का 'कर्ण') और 'रश्मिरथी' में, ''मर गई नहीं वह स्वयं, मार सुत को ही/जीना चाहा बन कठिन, क्रूर, निर्मोही/क्या कहूं देवी, मैं तो ठहरा अनचाहा/ पर तुमने मां का खूब चरित्र निबाहा''; जबकि डॉ. अमरेन्द्र का कर्ण अपनी मर्यादा से कभी स्खलित होता नहीं दिखाई देता।

हां, प्रभात जी के 'कर्ण' खंड-काव्य के दो दृश्य ऐसे हैं, जो 'रश्मिरथी' अथवा आलोच्य पुस्तक—दोनों में ही नहीं हैं; एक, द्यूत-क्रीड़ा और द्रौपदी का

चीर-हरण तथा दूसरा, काव्य का अंत, जहां युधिष्ठिर युद्ध-समाप्ति के पश्चात् सगे-संबंधियों को जलदान करते हैं और कुन्ती उन्हें कर्ण के लिये स्मृति-तर्पण करने के लिये कहती हैं। वहीं पहली बार पता चलता है कि कर्ण युधिष्ठिर के अग्रज थे— ''मानव को मानव न मिल सका/धरती को धृति धीर/भूलेगा इतिहास भला/ कैसे यह गहरी पीर।'' ये दोनों दृश्य कर्ण के चरित्र के दृष्टिकोण से देखें तो उसमें कुछ जोड़ते प्रतीत नहीं होते; शायद इसीलिये 'रश्मिरथी' और 'कर्ण'—दोनों में इनका परहेज़ दिखाई देता है।

काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से देखें तो ये साफ़ पता चलता है कि 'कर्ण' की कथा-धारा में काफ़ी प्रवाह है, इसके काव्य-बिम्ब गत्यात्मक, चाक्षुष तथा लोकधर्मी हैं और डॉ. अमरेन्द्र ने पहले की अपनी रचनाओं में मिथक और लोककथात्मक प्रतीकों का धड़ल्ले से जो प्रयोग किया है, यहां वे उससे बचे रहे हैं।

डॉ. अमरेन्द्र शब्दों को, उनकी श्रुति और ध्वनि के साथ पकड़ते हैं, प्यार करते हैं। ये उनकी सांगीतिक और रंग-चेतना के कारण संभव हुआ है; क्योंकि वे संगीत-सुघड़ भी हैं और रेखाओं-रंगों से खेलने वाले भी। यही कारण है कि ध्वनि और नाद का वे अपना एक 'देसी सौन्दर्यशास्त्र' और ऐसा मुहावरा गढ़ने में क़ामयाब होते हैं, जो उन्हें आजकल के सपाट और एकरस कविता-समय से उन्हें बिल्कुल जुदा रखता है; उन्हें 'इमिटेट' करना आसान नहीं है।

बोल उट्ठी, तड़पना-छड़पना, अवसाद अनचोके विरह, झलकते लोर, जैसे चुआ है अब, हहरने को, केतकी गमगम, नाच रही है छमछम, आजा-बाजा-गाजा, अनचोके, रजकण, महमह-गमगम, औन-न-पौन, जल अचोके, उजड़ा-पुजड़ा-सा, तमतोम फेरा, टुकुर-टुकुर ताकेगी, अट्ठा-गोटी खेले आदि अनेक शब्द और शब्द-युग्म, कवि की भाषागत सर्जनात्मक क्षमता का परिचय देते हैं।

काव्य-सौन्दर्य में मिथक और लोकतत्वों का समावेश इस काव्य को वैदिक-पौराणिक देवकथाओं से अवश्य जोड़ता है; किन्तु इन प्रयोगों की प्रचुरता सामान्य पाठकों और सहृदयों को इन संदर्भों तक पहुंचाने में नाकाम रहती है; कारण कि महाभारत में एक-एक कथा की कई-कई अन्तर्कथायें-उपकथायें हैं, जो प्रायः बहुश्रुत नहीं हैं और पाठक बिना महाभारत पढ़े इन मिथकीय प्रतीकों और बिम्बों का अर्थ-संधान नहीं कर सकता; जैसे—श्वेतकी के यज्ञकुंडों, कंक, वृहन्नला, कीचक, सैरंध्री, ऋषि जह्नु, द्वैपायन की बात, शाप गौतम का, बर्बरीक, श्रवा, अलम्बुस, अश्वसेन की माता आदि मिथकीय संकेत, अलग से व्याख्या की मांग करते हैं।

फिर भी, सम्पूर्णता में देखा जाये तो 'कर्ण' प्रबंध-काव्य, युद्ध की

विभीषिका, वन एवं पर्यावरण की समस्या, दीनों-दलितों का सम्मान, नारी विमर्श, सिंहासन और सत्ता की विसंगतियों आदि विषयों पर ढेर सारे सामयिक और युगीन प्रश्न तो खड़े करता ही है; कर्ण की अन्तश्चेतना और अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से समस्याओं का तार्किक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करता है। इस रूप में, मुझे लगता है कि कर्ण के ऊपर अब तक लिखी गयी काव्य-रचनाओं के बीच डॉ. अमरेन्द्र का ये खंड-काव्य 'कर्ण', एक सुसंगत, सुगठित और सौन्दर्यात्मक काव्य-रचना के रूप में प्रतिष्ठ होगा।

पर देखें तो साहित्य-अनुरागी होने के अलावा, अमरेन्द्र जी दोस्तों का ख़्याल रखने वालों में से भी हैं और मित्रों के लिये वे कुछ भी करने को तैयार रहते हैं। वे औरों के बीच कभी विषय बनने की चेष्टा नहीं करते। अव्वल तो वे किसी को छेड़ते नहीं, पर कोई उन्हें छेड़े तो उसे छोड़ते भी नहीं; भले ही वो उनका कितना भी अभिन्न क्यों न हो। फिर तो बुद्धि और तर्क के सारे तीर एक-एक कर उनके तूणीर से निकलने लगते हैं, जिससे वो अपने आलोचकों को धराशाई करने में कोई कोर-क़सर नहीं छोड़ते। इस संबंध में एक प्रसंग का ज़िक्र यहां अवश्य करना चाहूंगा, इसलिए कि उसका संबंध आकाशवाणी से है, भागलपुर से है। ये प्रसंग डॉ. अमरेन्द्र के ऊपर डॉ. श्वेता रानी द्वारा, उनकी पी-एच. डी. उपाधि हेतु लिखित और सन् २०१० ई. में प्रकाशित शोध-प्रबंध में, पूरा-का-पूरा संकलित है।

१८ नवम्बर, १९९० को डॉ. अमरेन्द्र द्वारा किये गये 'कामायनी' के रेडियो नाट्य-रूपांतरण का प्रसारण आकाशवाणी, भागलपुर से हुआ; जिसके बाद उनके एक अभिन्न मित्र ने केन्द्र निदेशक के नाम पांच पृष्ठों का एक पत्र भेजा, जिसमें उक्त रूपांतरण पर उन्होंने अनेक आरोप लगाये। इन आरोपों में उन्होंने पूछा था कि डॉ. अमरेन्द्र ने मनु का वासनामय रूप और कामायनी की विकृत प्रस्तुति क्यों की। इसके अलावा उस पत्र में विस्तार से अन्य प्रश्न भी उठाये गये थे; मसलन नौ शास्त्रों में 'कामायनी' भी एक है, जिसकी विकृत प्रस्तुति नहीं की जानी चाहिये; रूपांतरण में अनेक सर्गों को चलताऊ ढंग से समेटा गया है; मनु के संवादों में प्रभावात्मकता नहीं है; आदि-आदि। इतना ही नहीं, उन महोदय ने केन्द्र निदेशक को भेजे पत्र की ढेर सारी प्रतिलिपियां करा के कुछ-कुछ ख़ास जगहों पर वितरित भी कराईं थीं।

इस पूरे पांच पृष्ठों के आलोचनात्मक पत्र का जवाब जिस विवेक और विद्वता से डॉ. अमरेन्द्र ने दिया, वो अद्‌भुत और प्रशंसायोग्य है। यहां पूरा प्रकरण शामिल करना संभव नहीं, पर उसकी एक बानगी अवश्य देना चाहूंगा।

डॉ. अमरेन्द्र ने पत्र का उत्तर कुछ इस प्रकार दिया—

''प्रतिक्रिया-लेखक ने पत्र के प्रारम्भ में ही यह जानना चाहा है कि मनु का वासनामय रूप, उसके द्वारा यज्ञ में पशु बलि देना, श्रद्धा को अकारण त्यागना, इड़ा पर आकर्षित होना, मदिरा-पान करना, अंत में पश्चाताप करना, क्या यही 'कामायनी' है...! मैं कहूंगा, हां। कामायनी की यही मूल कथावस्तु है। 'कामायनी' पढ़ कर समझ में नहीं आये तो बाज़ार से कोई नोट ही ख़रीद कर पढ़ लें। प्रतिक्रिया-लेखन के लिये यही रास्ता उपयुक्त होगा।...''

''यहां यह जानकारी भी प्रतिक्रियाकार को दे देना आवश्यक होगा कि जहां विषय दृश्यांकन द्वारा संभव नहीं, वहां कथन-समावेश ही उपयुक्त होता है। पंक्तियों के स्थान-परिवर्तन से रूपांतर का उद्देश्य और शीर्षक दोनों ही अपने चरम को छू सके हैं। ऐसा अनुभव पूर्वाग्रह से मुक्त होकर ही समझा जा सकता है। आलोचक महोदय, नासमझी के कारण जिस परिवर्तन को 'लेखकीय अपराध' कहते हैं, वह वास्तव में रूपांतर का स्थापत्य-कौशल है।''

डॉ. अमरेन्द्र की भाषिक व्यंजना-शक्ति की ये तीक्ष्णता ही है, जो बड़े-से-बड़े आलोचक को न केवल करारा जवाब देने में सक्षम है; बल्कि उसे ध राशाई करने में भी पूर्णतया सफल है। मुझे लगता है कि उनके और मेरे स्वभाव तथा जीवन के बीच की ये एक समान 'रणभूमि' रही है, जिस पर हमारी मित्रता का वटवृक्ष खड़ा हुआ। मुझे याद है, उन्होंने एक बार मेरे बारे में कहा था, ''आप बहुत साहसी हैं...।'' हां, मैं हूं.... और यही बात मैं डॉ. अमरेन्द्र में भी पाता हूं।

विचित्र बात है, अभी जब मैं डॉ. अमरेन्द्र के खंड-काव्य 'कर्ण' से जुड़े प्रसंगों को लिख चुका हूं तो जैसे मुझे मुक्ति का अहसास हो रहा है; वरना तो सोते-जागते जैसे कर्ण मेरे सामने प्रत्यंचा ताने खड़ा रहता था—जरा भी कहीं रुका, तो लगा, कर्ण के बाण की नोक मेरी ओर है। उसके धनुष की टंकार हर समय मुझे अपने भीतर गूंजती महसूस होती रही है और मेरे चारों ओर से एक ही आवाज़ आती सुनाई दी है—कर्ण... कर्ण.... कर्ण...।

डॉ. अमरेन्द्र की इस कृति ने मुझे बहुत उद्वेलित किया है। ये पुस्तक उन्होंने मुझे १६ जून, २०१८ को दी थी। सच्चाई ये है कि उस समय मैंने सरसरी तौर पर देख कर इसे रख दिया था कि इस पर इत्मिनान से लिखूंगा। वो इत्मिनान आते-आते डेढ़ साल लग जायेगा, ये मैंने कभी नहीं सोचा था।

मैं आकाशवाणी के अपने संस्मरण लिखने के क्रम में एक लंबा काल-खंड तय कर जब अपने भागलपुर-प्रवास की कथा लिखने बैठा, तो वहां के कुछ साहित्यकारों की चर्चा भी करने की सोची। तब यही सोचा था कि संक्षेप में उनके

लेखन पर बात कर मैं आगे बढ़ जाऊंगा। जब बात डॉ. अमरेन्द्र के लेखन पर आई तो जैसे किसी ने रास्ता रोक लिया। मुझे लगा कि मैं इस शख़्स के लेखन के बारे में क्या लिखूं। इनके लेखन का फलक इतना विशाल, विहंगम है कि उसमें मेरी कोई समाई नहीं हो सकती। बहुत प्रयास किया कि कुछ ज़रूरी बातों का उल्लेख कर मैं आगे निकल लूं, पर मेरे पांव जैसे किसी ने बांध रखे थे। मैं जितना छूटने का प्रयास करता, बंधन और मज़बूत होता जाता—कभी ''आलाप संलाप' और 'गेना' मेरा रास्ता रोकते तो कभी 'दीपक मेघ हिण्डोल'; उनकी पकड़ से छूटता तो 'अमृतदेश : अंगप्रदेश' और 'साधो सुर का देश' सामने आ खड़े होते।

सबसे अधिक परेशान किया 'कर्ण' ने। वो टस-से-मस नहीं हो रहा था। वो प्रत्यंचा-खिंची चेतना की तरह मेरे ऊपर सवार था। अंततः मुक्ति का कोई रास्ता न देख मैंने अपने पांव बांध लिये और 'कर्ण' को पढ़ने में जुट गया—एक बार, दो बार, तीन बार... और लिखने, दृष्टांत रखने के क्रम में बार-बार...। मेरे पास 'रश्मिरथी' पुस्तक थी, पर जो मांग कर ले गया, उसने लौटाया नहीं। इसलिये मैंने पुस्तक 'ऑन लाइन' मंगवाई। इसके अलावा केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' की पुस्तक 'कर्ण' की याद आई, जो कहते हैं कि 'रश्मिरथी' से पहले लिखी गई थी, पर छपी उसके बाद। कर्ण के ऊपर लिखने के लिये मुझे इस पुस्तक की ज़रूरत थी, पर ये कहीं उपलब्ध नहीं थी। तभी मुझे उनकी पुत्रवधू, डॉ. नम्रता की याद आई जिन्होंने, और पूरे परिवार ने अभी-अभी बहुत परिश्रम से, 'प्रभात' जी के तीन खंड-काव्यों की एक 'ज़िल्द' प्रकाशित कराई है।

मैंने जब उन्हें मंशा बताई तो वे बड़े संकोच से बोलीं कि ''प्रति तो है, पर एक ही है; और चूंकि आगे 'दूसरी ज़िल्द' प्रकाशित करानी है तो उसमें इसकी ज़रूरत पड़ेगी।'' मैंने कहा, ''कोई बात नहीं, आप जहां कहें, मैं आ जाता हूं और आवश्यक अंश के फ़ोटो खींच लूंगा... मेरा काम उतने-भर से हो जायेगा।'' उन्होंने कहा, ''नहीं, मैं ही आपके घर आ जाती हूं.... आप आराम से पुस्तक को देख लीजिये।''

फिर वो अपनी अस्वस्थता के बावजूद अपने बेटे, वंश प्रभात के साथ मेरे यहां आईं और मैंने उस पुस्तक को जल्दी-जल्दी पढ़कर उसके आवश्यक अंशों की तस्वीरें खींच कर रख लीं। मैंने इस प्रसंग का उल्लेख यहां इसलिये किया कि दुनिया में साहित्य लिखने वाले तो हज़ारों-लाखों मिल जायेंगे, पर साहित्य जीने वाले कम ही मिलते हैं। हमेशा जो रचा जाता है, वही साहित्य नहीं होता, न ही लेखक एकमात्र उसका निमित्त; उसे प्राणपण से संजो कर रखने और उसके दीर्घजीवी होने की कामना करने वाला भी रचना के उतना ही निमित्त होता

है—और डॉ. नम्रता उनमें से एक हैं, इसलिये उनके प्रति आभार।

अब मुझे ये भी ध्यान आ रहा है कि मैं पिछले पांच-छः दिनों से घर से बाहर नहीं निकला हूं; इन दिनों न खाने की सुध रही है, न किसी और चीज़ की; कई बार तो सोते-सोते कुछ पंक्तियां दिमाग़ में घूमने लगी हैं तो रातों में उठ-उठ कर भी लिखा है। ऐसा मेरे साथ अक्सर होता है; अगर तुरत लिख नहीं लिया तो पक्का है कि सुबह कुछ याद नहीं आयेगा। इसलिये आजकल एक छोटा डिजिटल रिकॉर्डर रखा हुआ है। रात में जो भी मन में आता है, उसे आंख बंद किये-किये बोल के रिकॉर्ड कर लेता हूं। ये आधुनिक तकनीक की देन है। मैंने इसे 'एक्सप्लोर' से ज़्यादा 'एक्सप्लॉयट' किया है। अब कागज़ और कलम से यदा-कदा का नाता रह गया है। उसका स्थान 'लैपटॉप' ने ले लिया है। सीधे उसी पर लिखता हूं। इसमें काफ़ी सुविधा है। पांडुलिपि को लिख कर 'टाइप' कराने की ज़रूरत नहीं होती। एक बार में ही मूल पांडुलिपि तैयार हो जाती है; श्रम और साध ान की बचत अलग से। इसमें सबसे बड़ा लाभ ये है कि आप किसी भी 'पैराग्राफ़' को अपनी सुविधा से आगे-पीछे, ऊपर-नीचे कर सकते हैं; साथ-साथ कभी भी संशोधन; और अगर आपकी टाइपिंग अच्छी है तो आपको पांडुलिपि में झांकने की भी ज़रूरत नहीं होगी।

भागलपुर का इस बार का सेवा-काल मेरा बेहद संक्षिप्त—दो वर्षों का रहा। मेरी, भागलपुर से पटना वापस आने की तारीख़ लगभग मुकर्रर हो चुकी थी। डॉ. सरिता शर्मा के सेवानिवृत्त होने के बाद उनके स्थान पर मुझे पदभार ग्रहण करना था। उससे पहले मेरी बहुत दिनों की एक दबी इच्छा थी कि भास के नाटकों का रेडियो-रूपान्तर प्रसारित हो। पहले मैं ख़ुद इस काम को करना चाह रहा था, पर समयाभाव के कारण सफल नहीं हो सका। मैंने डॉ. अमरेन्द्र से निवेदन किया कि यदि वे इस काम को करें तो एक बहुत बड़ा अध्याय आकाशवाणी, भागलपुर के इतिहास में जुड़ेगा। उन्होंने सहर्ष इस चुनौती को स्वीकार किया, प्रकाशक का नाम-पता ढूंढ़कर, पत्र लिखकर भास के नाटकों का पूरा सेट मंगवाया और रूपांतर तैयार भी कर लिया; पर तबतक मेरे पटना जाने का समय निकट आ गया और मेरी भास के नाटकों का प्रोडक्शन करने की इच्छा धरी की धरी रह गई। हालांकि मेरे पटना आने के बाद उन नाटकों का निर्माण भागलपुर में हुआ, पर मैं उसे पटना में अपने तरीक़े से करना चाह रहा था। इसके लिये मैंने अमरेन्द्र जी से उन नाटकों के आलेख भी मंगवाये, लेकिन जबतक मैं उनकी सुध लेता, तबतक तलवार की भांति लटकी दुश्चिंताओं के बीच मेरी सेवानिवृत्ति की घड़ी आ गई। ■

समकालीन साहित्य के प्रखर आलोचक की, मेरी एक हिंदी गजल के बहाने हिंदी गजल पर बहस का एक अंश

—ललन चौधरी

साहित्य की अपनी गति है और इतिहास का अपना सच भी । मनुष्य साहित्य इतिहास में यथार्थवादी विचारधारा को स्थापित करने हेतु जीवन मूल्यों की खोज में जहां तक पहुंच पाया, वही तक साहित्य का सच नहीं है...साहित्य प्रेम के पांखों पर सवार मनुष्य को वह दृष्टि देता है, जहां गीत, गजल और कविता की सुमधुर तान सुनाई पड़ती है...

गजल काव्य की बहती वह धारा है जहाँ कवि अपनी खामोशियों में गुमसुम होकर अंदर-अंदर दिल के नकाब को हटा देता है...और एक मुस्कुराता, हँसता, रोता, गाता और गुनगुनाता कवि अंदर से जाग उठता है...

इधर हिंदी गजल लेखन की विकसित होती परंपरा को देखकर यह सवाल उठता है कि गे आने वाव समय में कविता की जगह गजल पूर्ण रूप से ले लेगी! गजल में दिल बोलता है और कविता में मन ज्यादा और दिल कम। कहना यह है कि कविता जब गीत की काया में गजल बन ढलने लगती है, तो उसकी सुदंरता और बढ़ जाती है...

हजारों-हजार बरसों में शब्द-दर-शब्द जब प्रेम को परिभाषित करने में कविता कमजोर पड़ने लगी तो गजल अपनी नाजुक और कोमल कंधों पर कुछ ऐसे शब्दों के भार को सहन करती दर्द और घुटन के बीच जिंदगी से रू-ब-रू होने लगी...यहीं आकर कविता गजल की सहगामिनी हो गई....

हिंदी काव्य की पुष्ट होती काव्यधारा के रूप में गजल इस काव्य जगत में प्रेम की गहरी अनुभूति और दर्द को लेकर आई.....गजल में इश्क की बुखार और प्रेम की कुर्बानियां की हजारों कहानियों के स्वर हिंदी पद्य रूप में सुनाई पड़ते हैं.....उत्तरोतर यह आम आदमी के जिंदगी के दर्द, घुटन और पीड़ा में हो रहे इजाफा का बखान करने में सबसे सशक्त भूमिका को अदा करने में गहरी अर्थवत्ता का पर्याय बन चुकी.....शब्द जब कविता में कमजोर पड़ने लगे तो गजल इस संवेदनशून्यता को दूर करने का सबसे सफल और सशक्त माध्यम बनी.... गालिब के शेर से लेकर अदम गोंडवी और दुष्यंत तक आते आते इश्क की खुमार

गजल की काया से हट चुकी थी....राहत इन्दौरी और मुनब्बर राणा जैसे गजलकार ने बड़ी जीवंतता और गहरी संवेदना की बदलती मिजाज के बीच गजल की मिजाज और नब्ज को पकड़ कर हिंदी उर्दू गजल के स्वरूप में जो गति दी, वह सराहनीय और अतिप्रशंसनीय है...

लेकिन हिंदी की खुशबू और सुगंध को बरकरार रखते हुए जिन लोगों ने गजल को नयी दिशा दी, उसमें अदम गोंडवी और उससे पहले दुष्यंत कुमार के साथ साथ डॉ. अमरेन्द्र की गजल को भी देखने और समझने की आवश्यकता है...

अंगजनपद की साहित्यिक उपलब्धियों पर अगर गहराई से विचार करें तो अस्सी के दशक में डॉ. अमरेन्द्र की गजल संग्रह 'पीर का पर्वत पुकारे' एक बड़ी उपलब्धि मानी जा सकती है। यह अलग सवाल है कि उस समय के तथाकथित आलोचक और समीक्षक की दृष्टि इस पर क्यों न पड़ी!

डॉ. अमरेन्द्र के गजल में भाषा और भाव की मिली-जुली संस्कृति से हिंदी की खुशबू लौट आती है, और गजल अपनी नयी काया में हमारे बीच एक नव नवेली दुल्हन की तरह दिखाई देती है....

प्रेम गजल की आत्मा है और दर्द उसकी नियति....ठीक ऐसा ही अमरेन्द्र जी के गजल में बहती संगीत की अविरल धारा है, जहाँ सुख की अनुभूति के साथ दुख की मीठी आंच पर धैर्य और विश्वास पलते हैं...जीवन भी यही है और गजल तो प्रेम के आगोश से ही संभव है....

समय की मांग और कविता के प्रति उदासीनता के भाव के बीच गजल का काव्य विधा में प्रवेश एक नयी धारा और वाद को जन्म देता है।

कभी दृष्टिसंपन्न कवि अज्ञेय ने तारसप्तक के संपादन में जिन कवियों की कविता को शामिल न कर पाया और इसके प्रत्युत्तर में उनका यह जबाव कितना समीचिन था कि आनेवाल समय में नयी कविता का दौर जब अवसान पर होगा तो कविता दूसरे रूप में आ चमकेगी....बेशक यह ईशारा उनका इसी ओर था..

डॉ. अमरेन्द्र की गजलों को पढ़ते हुए जिस विशुद्ध हिंदी गजल की संभावनाएं भविष्य के लिए सुरक्षित दिखने लगीं, वह बेशक हिंदी उर्दू की सांस्कृतिक चेतना की ऊपज है....

गजल को डॉ. अमरेन्द्र ने हिन्दी कविता के भाव में तो सजाया, लेकिन उसकी आत्मा प्रेम की रखी...काया गीत की और मन मीत की....

आगे जारी..

डॉ. अमरेन्द्र के जन्मदिवस के बहाने

—अविनाश कुमार सिंह 'अमेय'

बंदऊँ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु बचन रवि कर निकर ।। (मानस)

कविकुलगुरु कालिदास ने कहा है—-प्रतिबध्नाति हि श्रेयः पूज्य-पूजा व्यतिक्रमः ।' जो पूज्य हैं, उनका सम्मान न किए जाने पर कल्याण का द्वार बंद हो जाता है । डॉ. अमरेन्द्र एक ऐसे पूज्य साहित्यकार हैं, साहित्यसाधक हैं, सरस्वती-पुत्र हैं जिन्होंने अपनी कृतियों में ऐसा मणि-दीप धर दिया है जो महाकाल के देहली-द्वार पर निरंतर प्रज्ज्वलित रहकर भूत, वर्तमान और भविष्य को एक संग प्रकाशित करता है । हिंदी साहित्य के कंठहार इस साहित्यकार ने जीवन का सारा रस साहित्य-देवता के चरणों में निवेदित कर दिया । यह ठीक है कि कुछ लोगों ने उनके रचना संसार पर लिखा है पर वह अपर्याप्त है । उनके समस्त रचना-कर्म की विशद सम्यक समीक्षा/मूल्यांकन की दिशा में कार्य किये जाने की जरूरत है।

'साधो सुर का देश', 'गेना', 'मन गोकुल का गाँव', 'काँटे कुछ कचनार', 'काव्य और कसौटी', 'जटायु', 'नीली झील की आँखें', 'अमृतदेश : अंगप्रदेश', 'द्वार के पार', 'भाषा और साहित्य' प्रभृति सत्तर से अधिक प्रकाशित रचनाएँ जिनकी थाती हैं और जो फेसबुक को भी निरंतर अपनी नव कविताओं से समृद्ध बनाए रहते हैं, वे डॉ. अमरेन्द्र सितार की झंकार हैं, एक तरल संगीत हैं और आज उनका सत्तरवाँ जन्मदिवस है। अपनी एक हालिया कविता में संवत्सरों के संधिस्थल पर खड़े होकर वह कहते हैं :—

सृष्टि उसको याद रखती
आग पर जो मुस्कुराता
इसलिए तो जा रहा हूँ
वेदना को मैं हँसाता
यह नहीं संभव समय से
कि मुझे वह भूल जाए ।

सच में यह संभव है भी नहीं है कि सत्तर वर्ष की आयु में भी काल

के कपाल पर काव्य रचनेवाले अमरेन्द्र को समय भुला सकने का दुस्साहस करे । जीवन के कर्मपथ पर अनवरत रचनाशील रहने वाले कर्मवीर अमरेन्द्र में अब भी थकावट के कोई लक्षण नहीं दिखते । अब तक जिजीविषा अक्षुण्ण है और मुझे ऐसा लगता है कि मेरे गुरु डा. सकलदेव शर्मा के इस सखा के जीवन की यह जिजीविषा ही उनके काव्य की, उनके समस्त रचनाओं की अंतरात्मा है ।

कवि-कर्म एक साधना है, एक वैराग्य है जो अपने अन्दर न जाने कितने दर्द छुपाकर भी सतत जीवन के श्रेष्ठतम सौन्दर्य की रचना करने को आतुर रहता है, जो संसार त्यागकर नहीं जीता बल्कि संसार के साथ जीते हुए स्वयं को भी त्याग देता है, लेकिन यह भी सच है कि आशा-निराशा के द्वन्द्व के बीच चाहे एक सृजनकर्ता को कितनी भी पीड़ा झेलनी पड़े, परन्तु एक-न-एक दिन वह समय जरूर आता है जब सकल विश्व उसकी भावनाओं को हृदय से नमन करता है।

अपने इस ७०वें जन्मदिवस पर एक कविता में अमरेन्द्र कहते हैं :–

कहीं नहीं कुछ भी बदला-सा, सब कुछ वही पुराना
गीली मिट्टी में भारी पत्थर का धसना जारी
ग्राहदन्त के बीच हस्ति की लगातार लाचारी
खड़ी फसल पर पालों का, बादल का आना-जाना ।

००

लेकिन घर में धूम मची है, जन्म-दिवस है मेरा
चन्दन-टीका, उपहारों पर हँसी मिठाई की है
जहाँ तेल से काम चलेगा, वहाँ कड़कता घी है
जन्म-दिवस पर मंगल-मंगल के स्वर का है फेरा ।

सन्नाटे में गीत-नाद का चलता रहे सफर यह
धरती पर लघु जीवन क्या है ? चौत-शिशिर का घर यह ।

निराला की तरह अमरेन्द्र भी एक अनगढ़ पारस के विशाल शिलाखंड हैं। न तो मुकुट में जड़कर कोई उनका भार उठा सकता है और न तो उन्हें पदत्राण बनाकर उनकी गुरुता को संभाला जा सकता है। माँ शारदा उन्हें ज्ञान का गर्व नहीं देती । सहजता ही उनकी वाणी है। यही सहजता उनकी कविताओं को लोकमानस तक पहुँचाती है। उनकी काव्य यात्रा में दुरुहता के लिए कोई स्थान नहीं है । वह तो कबीर की तरह 'भाषा बहता नीर' है। यह तो गोमुख-गंगोत्री से निकलनेवाली वह गंगा है जो पाषाण-खंडों को अपने साथ बहा ले जाने का बोझ नहीं सहती वरन बड़ी सहजता के साथ उनके ऊपर से होकर गुजर जाती है। पीड़ा

के गरल को पीकर काव्यरूपी सुधा का सृजन करने वाले महाप्राण निराला के लिए जीवन का संघर्ष कितना कठिन, कितना दुष्कर रहा होगा, इसका अनुमान सरल नहीं है । पर अपने हृदय में असंख्य पीड़ा को छुपाए रहकर भी निराला संभलते गए । इस निराला पर अमरेन्द्र कहते हैं :–

राग अमर अम्बर का अनहद, नव लय-गति का धारक
सूरज-सा ही रहा दीपता मध्य निशा का तारक
एक हाथ में कलश सुरभि का एक हाथ में ज्वाला
विष को पीकर छोड़ गया है जो अमृत का प्याला
सूर्यकांत ही कहें उसे क्यों, काव्यकांत भी वह था
एक साथ वरदाई भूषण, उस पर और सरह था

अंगिका भाषा के उत्थान-विकास और संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान दिलाने को लेकर सतत संलग्न और तल्लीन रहने वाला यह साहित्यकार अपनी रचना- यात्रा में उस लक्ष्य को छूने का प्रयास करता है जहाँ लोकमानस की संवेदना ही काव्य की आत्मा है, और काव्य लोकमानस की संवेदना को मुखरित करने वाली वाणी ।

बालगीत अब कम ही लिखे जाते हैं । अंगिका भाषा में कवि द्वारा रची इस बाल कविता की मासूमियत देखिए:–

उल्लू तें घुघुआवै छै
मुर्गा बाँग लगावै छै
हिनहिनावै घोड़ा छै
गड़-गड़-गड़-गड़ सौढ़ा छै
मूसों करै छै चूँ-चूँ-चूँ
कुत्ता भूकै भूँ-भूँ-भूँ
भले कबूतर गुटरू-गूँ
कुत्ता बच्चा कूँ-कूँ-कूँ
बेंग सिनी टर्रावै छै
बाघ मतुर गुर्रावै छै
सिंह दहाड़ै बड़ा गजब
झिंगुर झन-झन जेना अजब
गदहा रेंकै रेंकले जाय
बकरी संग भेंड़ा मिमियाय
सुग्गा रटै छै टें-टें-टें

बत्तख जेना कें-कें-कें
बैल डकारै, गाय रंभावै
मक्खी भिन-भिन करलें आवै
चिघ्घाड़ै हाथी की जोर
कूजै वन-वन बत्तख-मोर
कानै गीदड़, अहि फुँफकारै
कौआ काँव-काँव गल्लों चीरै
बिल्ली मौसी बोलै म्याऊँ
नै पूड़ी तें मूसे खाऊँ ।

निर्भया कांड के विरोध में उठी आवाज पर जब सत्ता खूनी हो गयी थी, तब कवि ने लिखाः—

जहाँ न्याय पर लाठी बरसे, वह शासन क्या शासन
अश्रु-गैस के गोले छूटे, पानी की बौछारें
लोकतंत्र जब ऐसा खूनी, किसको कहाँ पुकारें
अगहन की जब जले दामिनी, जल जाए सिंहासन !
सिंहासन के सम्मुख नारी की है खींचा-तानी
यह तो काल महाभारत को आमंत्राण है देना
कोई शेष रहेगा कैसे, जिसकी भी हो सेना
समय लिखेगा यह भी कलि की ऐसी क्रूर कहानी !
दिल्ली, तुम किसकी हो, बोलोय सत्ता की, नारी की
बहू-बेटियाँ घर में भी क्यों ऐसी हैं भयभीत
कानों में शीशे-सा गलता सत्ता का संगीत
कहो राजपथ, तेरे घर में कैसी यह तारीकी !
न्यास माँगते बच्चे-युवती पर प्रहार हो स्वाहा !
लोकतंत्र का गला दबोचे, वह सरकार हो स्वाहा ।

अपने ही बुढ़ापे पर डॉ. अमरेन्द्र की हाल ही में लिखी यह भावप्रवण कविता देखिएः—

तुलसीचौरा पर टिमटिम-सा भकभक करता दीया,
छाँट रहा है आँगन का अँधियाला जैसे-तैसे,
एक बूँद ही स्नेह बचा है थरथर है किस भय से
शीश रास का झुका हुआ है, कहीं पूत न धीया ।
अनसाता लाठी की ठकठक, और उदासी का रोना,

नीतिवचन को तुलसी दल-सा मुँह में डाले रहना,
कुल की परिपाटी को, कुछ हो, हरदम पाले रहना
जीवन का अभिशाप ? किसी औघड़ का जादू-टोना ?
खुद ही नहीं समझ पाता जो, तृण है या फिर वट है,
गाँव से बाहर किसी देवता का ही थान अकेला,
वर्षों पहले इसी जगह पर लगता था एक मेला
अब मशान में पीपल से लटका मिट्टी का घट है ।
यह तेरह के चारो धाम पर जल का घोर प्रलय है,
शिव की गर्दन तक गंगा है, फिर तो सब कुछ लय है ।

नववर्ष-२०१८ पर कवि मंगलकामना करता है:—

सुप्त सोये प्राण जागो!
शुद्ध मन के ध्यान जागो !

बीज जागो, विटप जागो,
फूल जागो, गंध जागो !
हो पवन के पंख मधुमय
कोष के मकरन्द जागो !
क्षिति, सलिल, आकाश जागो!
अग्नि जागो, वायु जागो,
रूप जागो, रस-परम सब
विश्व भर की आयु जागो!
राग के संग रागिनी तुम,
मानिनी के मान जागो !

शरत् की शोभा जगी है
सामने देवी विहंसती,
चर-अचर जड़ और चेतन
स्नेह से सबको परसती;
छुट रहे हैं ताप तीनों
लोक, गुण औ देव त्रय से,
वत्सला बन अगम सम्मुख
झुक गये हैं सब विनय से;
देश जागो, काल के संग !

लोकहित विज्ञान जागो ।

डॉ. अमरेन्द्र का रचना-संसार राष्ट्र-समाज की संस्कृति और अस्मिता का दिव्य उद्‌घोष है तो उनका सादगी से भरा हुआ, गांधीवादी विचारधारा के मार्ग पर, यात्रा करता जीवन 'सादा जीवन उच्च विचार' का परिचायक है। वास्तव में साहित्यकार अमरेन्द्र का जीवन एक सम्पूर्ण मानव का जीवन है जो अपने कर्तव्य पथ पर चलता जा रहा है निष्काम, निःस्वार्थ, निरपेक्ष. मनुष्य जीवन की समग्रता को प्रमाणित करना जिसका एकमात्र लक्ष्य है।

धरती पर रहकर धरती की पीड़ा को समझने और उसका समाधान खोजने का प्रयास करने वाला कवि, जीवन के वास्तविक स्वरुप को देखने के प्रयास में जीवन के अमिट संघर्ष को उभरने देने वाला कवि, प्रगति और प्रवृत्ति का समन्वय करनेवाला समीक्षक-साहित्यकार, मन-बुद्धि और प्रेरणा को एक ही धरातल पर लाकर खड़ा कर देने वाला साहित्यसाधक, मानव-विकास की गत्यात्मक कथा कहने वाले वाचक डॉ. अमरेन्द्र का सम्पूर्ण साहित्य हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है ।

जगत के प्राण मिहिर की मरीचि के सप्त रंग होते हैं पर अमरेन्द्र के रचनाकर्म के अनंत रंग हैं । सत्तर वर्ष की आयु और सत्तर के करीब पुस्तकें । ये सब न तो इस छोटे से लेख में समा सकता है और न ही मेरी ऐसी योग्यता है कि मैं उनकी रचनाओं का मूल्यांकन या समीक्षा कर सकूं . मेरे गुरुवर के इस अनूठे सखा-भाई से निवेदन है कि इस लेख में मुझसे कोई त्रुटि हो गई हो तो मुझे क्षमा करेंगे क्योंकि न ही मेरे पास हिंदी साहित्य में कोई डिग्री है और न ही इसकी ज्यादा जानकारी. विज्ञान पृष्ठभूमि के इस छात्र की हिंदी साहित्य में मात्र गहन रूचि है और आप जैसे विद्वानों के प्रति श्रद्धा है जो मैं ५ जनवरी, २०१८ को १ बजे पूर्वान्ह में आपके जन्मदिन पर अपने हृदयोद्‌गार को अभिव्यक्त करने का प्रयास कर रहा हूँ। तुलसी की शब्दों में कहूँ तो : 'कबित विवेक एक नहीं मोरे। सत्य कहऊँ लिखि कागद कोरे ।।'

गुरु के सखा भी गुरु सम ही हैं। तो हे गुरूवर! आपके सखा 'दुर्वासा और दधीचि के सेतुबन्ध' Sakal Dev Sharma (संप्रति-संपादक, अंगिकालोक पत्रिका) ३१ दिसम्बर, २०१७ को अपनी अंगिका कविता 'हमरा नै चाही मोक्ष' में कहते हैंः—

तोंय मानहो, नै मानहो
मतरि, आब
हम्में आदमी नै,

गछपक्कू आम
भाय गेलो छियै !

हवा के महज
एगो सिहकी पर
काल–डाली से खिसैक के
कखनी कहाँ गिरबै, थौआ
भाय जैबै, नै जानै छियै ?

हे परमपिता !
हाथ-गोड़, नाक-मोंछ लेने
आपनो चिता पर दनदनैलो
चौढ़ जाऊँ, यहा हमरो प्रार्थना छै !
हमरा नै चाही कोनो अलबेला मोक्ष!

और आप अपनी 'बुढ़ापा' चतुर्दशपदी में कहते हैं:–

तुलसीचौरा पर टिमटिम-सा भकभक करता दीया,
छाँट रहा है आँगन का अँधियाला जैसे-तैसे,
एक बूँद ही स्नेह बचा है थरथर है किस भय से
शीश रास का झुका हुआ है, कहीं पूत न धीया ।

इन दोनों कविताओं ने इस भावुक शिष्य को बहुत रुलाया है। कृप्या आगे से हमारे भाव-प्रेम का भी ख्याल रखा जाय।

५ जनवरी १९४८ को बिहार में दानवीर अंगराज कर्ण की भूमि और शिव के नीलकंठ स्वरूप की साक्षी भूमि पर जन्मे साहित्यसाधक डॉ अमरेन्द्र को ७० वसंत पूरे करने पर हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं।

वे स्वस्थ-सुखी-सम्पन्न-निरोग रहें, उनकी उज्जवल धवल कीर्ति निरंतर वृद्धिमान रहे, वे जीवन के शतक लगाने के बाद भी हमारा मार्गदर्शन करने हेतु हमारे बीच मौजूद रहें, यही हरि-हर से मंगलकामना है।

ज्यादा नहीं मैं कह सकता, मैं नहीं कोई कवींद्र
सदा-सर्वदा सुखी रहें वे, जो हैं डॉक्टर अमरेंद्र
वे हिंदी साहित्य के रत्न, जिस पर हमें बहुत अभिमान
जन्मदिन हो तुम्हें मुबारक, तुम हिंदी-अंगिका की हो शान
भाव-प्रसून समर्पित करता, लेकर उस नीलकंठ का नाम
हिंदी की इस अनुपम निधि को, करता है अविनाश प्रणाम। ■